गेहूँ एवं जौ

स्वर्णिमा

तेरहवाँ अंक–2021

भाकृअनुप–भारतीय गेहूँ एवं जौ अनुसंधान संस्थान

करनाल–132001, भारत

ICAR-Indian Institute of Wheat and Barley Research

Karnal-132001, India

अनुज कुमार, राज पाल मीना, चन्द्र नाथ मिश्र, सोनिया श्योरन, चरण सिंह, रविन्द्र कुमार एवं ओम प्रकाश गुप्ता (2021) गेहूँ एवं जौ स्वर्णिमा, भाकृअनुप–भारतीय गेहूँ एवं जौ अनुसंधान संस्थान, करनाल– 132001
पृष्ठ संख्या– 170

गेहूँ एवं जौ स्वर्णिमा

तेरहवाँ अंक

सम्पादक मंडल

मुख्य सम्पादक : अनुज कुमार

सम्पादक : राज पाल मीना, चन्द्र नाथ मिश्र, सोनिया श्योरन, चरण सिंह, रविन्द्र कुमार एवं ओम प्रकाश गुप्ता

संरक्षक एवं प्रकाशक : ज्ञानेन्द्र प्रताप सिंह

निदेशक

भाकृअनुप–भारतीय गेहूँ एवं जौ अनुसंधान संस्थान

करनाल– 132001, हरियाणा

दूरभाष : 0184– 2267490 फैक्स : 0184– 2267390

वेबसाइट : www.iiwbr.icar.gov.in

प्रतियाँ : 25

छायाचित्र : राजेन्द्र कुमार शर्मा

मुद्रण : एरोन मीडिया

यू.जी. 17 सुपर मॉल, सैक्टर–12, करनाल

दूरभाष : 9896433225, 9996547747

प्राक्कथन

भारतीय कृषि में गेहूँ का प्रमुख स्थान है तथा सभी कृषकों, वैज्ञानिकों एवं नीति निर्धारकों के सामूहिक प्रयास से नित नए आयाम स्थापित किए जा रहे हैं। देश में गेहूँ उत्पादन एवं उत्पादकता वृद्धि में नवीन प्रजातियों एवं तकनीकों का महत्वपूर्ण योगदान रहा हैं। गत वर्ष हमारे प्रधानमंत्री श्री नरेंद्र मोदी जी ने विभिन्न फसलों की 35 नवीन किस्में देश को समर्पित की। ये किस्में आने वाले समय में नए आयाम स्थापित करेंगी। भाकृअनुप–भारतीय गेहूँ एवं जौ अनुसंधान संस्थान, करनाल की गेहूँ एवं जौ की प्रजातियों को किसानों द्वारा भरपूर सम्मान प्राप्त हुआ है। इस वर्ष बीज की मांग के अनुसार संपूर्ण देश में गेहूँ की करण वंदना (डीबीडब्ल्यू 187) और करण वैष्णवी (डीबीडब्ल्यू 303) क्रमशः प्रथम एवं द्वितीय स्थान पर है। जौ की किस्म डीडब्ल्यूआरबी 137 प्रथम स्थान पर है। इस सम्मान के लिए हम किसानों के आभारी हैं।

गेहूँ एवं जौ स्वर्णिमा का प्रस्तुत अंक कटाई उपरांत प्रबंधन एवं प्रसंस्करण द्वारा आए सृजन विषय पर आधारित है। इस अंक में फसलों के समुचित भंडारण, पराली प्रबंधन, गन्ना प्रसंस्करण, महिला कुटीर उद्योग द्वारा आय सृजन, डेरी प्रसंस्करण, मशरूम उत्पादन आदि विषयों पर पठनीय एवं सराहनीय लेख संकलित किए गए हैं। इससे हमारे किसान भाई–बहन एवं अन्य पाठक भी लाभान्वित होंगे।

इस पत्रिका के माध्यम से मैं सभी पाठकों को नव वर्ष की बधाई देता हूँ तथा आशा करता हूँ कि इस वर्ष भी हम गेहूँ में उच्चतम उत्पादन प्राप्त करेंगे।

मैं अपनी तथा संस्थान की तरफ से विभिन्न लेखकों को बधाई देता हूँ कि उन्होंने अपने लेख ''गेहूँ एवं जौ स्वर्णिमा'' में प्रकाशित किए साथ ही सम्पादक मंडल के सभी सदस्य भी पत्रिका के प्रकाशन हेतु बधाई के पात्र हैं। मुझे आशा है कि आने वाले समय में भी यह पत्रिका उत्कृष्ट लेखों का प्रकाशन अनवरत रूप से करती रहेगी।

जय किसान, जय विज्ञान।

ज्ञानेन्द्र प्रताप सिंह

निदेशक

भाकृअनुप–भारतीय गेहूँ एवं जौ अनुसंधान संस्थान, करनाल

संपादकीय

विश्व पटल पर आज भारत कृषि के क्षेत्र में नित नए आयाम स्थापित कर रहा है। कृषि तथा इससे सम्बंधित क्षेत्र पर आज भी देश की 72 प्रतिशत जनसंख्या निर्भर करती है तथा इसका सकल घरेलू उत्पाद में 20.2 प्रतिशत योगदान है। आज हम खाद्यान्न, दाल, फल, फूल, सब्जी, दूध, मांस, मछली, शहद आदि के उत्पादन में अग्रणी देशों की श्रेणी में है। कृषि के क्षेत्र में नई–नई प्रौद्योगिकियों जिसमें खासकर किस्में शामिल हैं, की वजह से आज हम आत्मनिर्भर है। घरेलू आवश्कताओं की पूर्ति के उपरान्त आज हम अनेक कृषि उत्पादों का निर्यात भी कर रहे हैं।

उत्पादन से जुड़े सभी पहलुओं पर हमारे किसान आज पारंगत हैं। अतः नई तकनीकों को अपनाकर उत्पादन प्रक्रिया को और अधिक प्रभावी बनाते हुए उत्पादन उपरान्त प्रबंधन की दिशा में काम करने की आवश्यकता है। सभी फसलों में कटाई उपरान्त हानि होती है फलों में यह 5.8 प्रतिशत से 18.10 प्रतिशत तथा सब्जियों में 6.9 से 13 प्रतिशत तक है। दलहनी फसलों में यह हानि 2.8 से 10.1 प्रतिशत तक है। इससे स्पष्ट है कि कटाई उपरान्त समुचित प्रबंधन के अभाव में देश को बहुत बड़ी मात्रा में राजस्व की हानि हो रही है। इस दिशा में संगठित प्रयास की आवश्यकता अभी भी है। भंडारण के दौरान होने वाली क्षति के लिए आधुनिक भंडारण संरचनाओं का विकास तथा पारंपारिक भंडारण संरचनाओं का वैज्ञानिक तरीके से संशोधित होना आवश्यक है।

आज कृषि के क्षेत्र में कई स्टार्ट अप इस दिशा में सराहनीय कार्य कर रहें हैं। जिनमें निंजाकार्ट एवं क्रो फार्म उल्लेखनीय हैं। जो ताजी सब्जियों और फलों के व्यापार में आधुनिक तकनीकों द्वारा कटाई उपरान्त नुकसान को 5 प्रतिशत तक कम करके किसानों को मुनाफा दे रहें है।

प्रसंस्करण आज की कृषि का आधार बनता जा रहा है और ऐसा अनुमान है कि लाभार्जन के लिए प्रसंस्करण और मूल्य संर्वधन एक सशक्त जरिया बन सकता है। आज यह क्षेत्र तेजी से प्रगति कर रहा है। सहउद्यमिता विकास द्वारा रोजगार सृजन और आय के नए स्रोत्रों की संभावना कृषि आधारित प्रसंस्करण में अपार है। इस दिशा में क्षमता निर्माण, संगठनात्मक ढांचा का विकास तथा सहयोगी नीतियों द्वारा नए आयाम स्थापित किए जा सकते हैं।

''गेहूँ एवं जौ स्वार्णिमा'' का वर्तमान अंक भी इसी उद्देश्य को ध्यान में रखकर संकलित किया गया है। मुझे आशा ही नहीं अपितु पूर्ण विश्वास है कि इससे हमारे पाठक लाभान्वित होंगे।

मुख्य सम्पादक
भाकृअनुप–भारतीय गेहूँ एवं जौ अनुसंधान संस्थान, करनाल

अनुक्रमणिका

क्र.स.	विषय	लेखक	पृ.स.
1.	फसलोत्तर प्रबंधनः क्यों और कैसे करें?	अनुज कुमार, रविन्द्र कुमार, राजपाल मीना, मंगल सिंह एवं चरण सिंह	1–4
2	गेहूँ के भंडारण प्रबंधन की संरचनाएं	मंगल सिंह, अनुज कुमार, सत्यवीर सिंह एवं अनिल कुमार खिप्पल	5–10
3	जौ का सुरक्षित भंडारण एवं संरचनाएं	रमेश पाल सिंह वर्मा, मंगल सिंह, अनुज कुमार, सत्यवीर सिंह, दिनेश कुमार एवं लोकेन्द्र कुमार	11–15
4	भण्डारित अनाज के कीट एवं उनका प्रबन्धन	अंजना ठाकुर एवं मधु पटियाल	16–19
5	बेहतर जेंडर एकीकरण के माध्यम से कटाई उपरांत नुकसान को कम करने की रणनीति	कुशाग्रा जोशी, श्याम नाथ एवं निशा वर्मा	20–22
6	परम्परागत तरीकों द्वारा अनाज का किफायती एवं सुरक्षित भंडारण	प्रीतम कुमारी, पूनम जसरोटिया, सिंधु श्योराण एवं भाल सिंह	23–26
7	जौ में प्रसंस्करण की सम्भावनाएं एवं माल्ट जौ प्रसंस्करण द्वारा आय सृजन	संतोष कुमार बिश्नोई, मधु पटियाल, दिनेश कुमार एवं रमेश पाल सिंह वर्मा	27–32
8	पराली प्रबंधन से करें संसाधन व आय सृजन	संजीव कुमार, अखौरी निशांत भानु एवं अर्पित सूर्यवंशी	33–35
9	अनुकूल पर्यावरण के लिए फसल अवशेष प्रबंधन	अक्षिता चड्ढा, वाई एस जादौन एवं जसविंदर सिंह	36–37
10	पराली की समस्या का नई तकनीकों से हल	प्रतिभा पूनिया एवं सोनिया श्योरान	38–40
11	भारत के उत्तर–पश्चिमी मैदानी क्षेत्र में गेहूँ की महत्वपूर्ण रोग–व्याधियाँ और उनका प्रबंधन	रविन्द्र कुमार, सुधीर कुमार, प्रेम लाल कश्यप, वैभव कुमार सिंह, पूनम जसरोटिया, ईश्वर सिंह एवं ज्ञानेन्द्र प्रताप सिंह	41–49
12	गन्ना प्रसंस्करण एवं आय सृजन	सुरेन्द्र सिंह, मंगल सिंह, रेखा मलिक, अनुज कुमार, आलोक शिव एवं मुकुन्द कुमार	50–52
13	गेहूँ में रतुआ रोग प्रबंधन	दिनेश चौधरी, ओपी गंगवार, प्रमोद प्रसाद, चारुलता एवं स्नेहा अधिकारी	53–55
14	प्रेरित उत्परिवर्तन के माध्यम से गेहूँ में सुधार	सुमन बक्शी, संजय जे जाम्भुड़कर एवं टी आर गणपति	56–57
15	गेहूँ में स्पॉट ब्लॉच रोग के लक्षण एवं उसकी रोकथाम	शुभम राज, अनिल कुमार, ईश्वर सिंह, चरण सिंह, उमेश काम्बले, सुनील कुमार एवं रविन्द्र कुमार	58–60
16	भारत में फॉल आर्मी वर्म का बढ़ता प्रकोप एवं प्रबंधन	कनिका नागपाल, पूनम जसरोटिया, रोबिन सिंह एवं भाल सिंह	61–63
17	उत्तर पश्चिमी मैदानी क्षेत्र में गेहूँ के पोषण प्रबंधन की समस्याएँ एवं समाधान	सुभाष चन्द्र गिल, नीरज कुमार, राजेन्द्र सिंह छोकर, एससी त्रिपाठी, राजपाल मीना, अजीत सिंह खरब, नीधि कम्बोज, विकास जुन, अनिल कुमार खिप्पल एवं संदीप कुमार	64–66
18	बायोफोर्टिफाइड फसलेंः स्थिति और भविष्य	काजल नागरे, लोकेन्द्र कुमार, सोनिया श्योरान एवं दीप्ति शर्मा	67–71
19	जैविक फसल उत्पादनः गुणवत्ता दृष्टिकोण एवं महत्ता	निशा वर्मा, पीयूष पुनिया, ललिता कुमारी, कुशाग्रा जोशी, पूनम कश्यप एवं आजाद सिंह	72–77
20	कुपोषण को दूर करने के लिए बायोफोर्टिफाइड खेती की भूमिका और उनके पोषण का गठन	सुजाता एच टी, दीक्षा गुप्ता, सत्यप्रिय, सीताराम बिश्नोई, सत्य प्रकाश एवं वी संगीता	78–81
21	कृषि और पोषाहार पद्धतियों के माध्यम से कुपोषण से बचाव की तकनीकियाँ	दीक्षा गुप्ता, सुजाता एच टी, सत्यप्रिय, सीताराम बिश्नोई, सत्य प्रकाश एवं वी संगीता	82–83
22	फसल प्रसंस्करण से किसानों की आय बढ़ाने की एक पहल	धर्मेंद्र सिंह एवं योगेश कुमार	84–86
23	खाद्य अपमिश्रण : मिलावट का ज़हर करे स्वस्थ्य पर कहर	मोहिनी नागपाल एवं पूनम जसरोटिया	87–89

क्र.स.	विषय	लेखक	पृ.स.
24	कृषि सम्बन्धी एवं कृषि सहायक कुटीर उद्योगों द्वारा महिला सशक्तिकरण	अंजना ठाकुर एवं मधु पटियाल	90–92
25	हमारे स्वास्थ्य पर कीटनाशकों के प्रभाव और इनसे बचाव	हनीफ खान, ओम प्रकाश, चंद्र नाथ मिश्र, गोपालरेड्डी के, सुनील कुमार एवं ज्ञानेंद्र प्रताप सिंह	93–95
26	जैवप्रौद्योगिकी– जीवन की तकनीक : तब से अब	चारुलता, स्नेहा अधिकारी, प्रमोद प्रसाद, ओ पी गंगवार, सुबोध कुमार, रतन तिवारी, दिनेश चौधरी एवं एस सी भारद्वाज	96–101
27	अधिक लाभ के लिए वैज्ञानिक विधि से खेती करें	उत्तम कुमार एवं राकेश कुमार	102–103
28	स्थायी कृषि के लिए आवश्यकः सिंचाई के पानी का परीक्षण और सिंचाई के लिए खराब गुणवत्ता वाले पानी का प्रबंधन	किरण खोखर, रूही एवं अंकुश कम्बोज	104–106
29	उत्तराखंड में घटते जल स्रोतों का पर्वतीय कृषि पर प्रभाव	इन्दु रावत, राजेश बिश्नोई, सुरेश कुमार, के आर जोशी, अम्बरीश कुमार एवं बांके बिहारी	107–108
30	डेरी प्रसंस्करण द्वारा मूल्य संवर्धन	चित्रनायक, प्रशांत मिंज, अमिता वैराट, खुशबू कुमारी, प्रियंका एवं हिमा जॉन	109–111
31	दुधारू पशुओं में आहार प्रबंधन	रोहित गुप्ता, योगेंद्र सिंह जादौन एवं संजीव कुमार कटारिया	112–113
32	अनाजों की रानी मक्का की कहानी	शिव मंगल प्रसाद, निकीता कुमारी, पंकज कुमार सिंह, हंसराम मीना एवं विभाष चन्द्र वर्मा	114–118
33	अमरूद की खेती किसानों के लिए लाभदायक	दीपक चंद मीना, अक्षिता चड्ढा, बी एस मीणा संचिता गराई एवं संजीत माइती	119–121
34	डेयरी अपशिष्ट एवं प्रबंधन	वाई एस जादौन एवं विमला सारण	122–123
35	चमत्कारी फलः ड्रैगन फ्रूट	ज्योति सिंह, जोगिन्द्र सिंह एवं विकास कुमार	124–125
36	केसर : सघन पौध रोपण द्वारा आय सृजन	प्रदीप कुमार सिंह	126–129
37	शिक्षा एवं कृषिः महिला सशक्तिकरण के स्तंभ	मधु पटियाल, रूचि चौहान एवं के के प्रमाणिक	130–134
38	जैवईंधन और हम	रेनू सिंह	135–137
39	गन्नाः कैसे पायें अधिक आय	सुरेन्द्र सिंह, रेखा मलिक एवं मंगल सिंह	138–140
40	मशरूम के मूल्य संवर्धित उत्पाद : सेहत एवं रोजगार	फूलकुमारी एवं मो मुस्तफा	141–146
41	क्या हमारी थाली सुरक्षित हैं?	रमेश चन्द, अनुज कुमार, पूनम जसरोटिया एवं महा सिंह	147–149
42	कदन्न : पोषण से भरपूर स्वास्थ्यवर्धक अनाज	आलोक कुमार सिंह	150–153
43	पशुपालन और वीगेनिज्म	शालिनी शुक्ला	154
44	पशुपालन से प्राप्त पंचगव्य एवं अन्य उत्पाद	खुशबु राज एवं नेहा सिंह	155–157
45	किसानों का सम्मानः पीएम किसान	आनन्द कुमार ठाकुर	158–159
	राजभाषा खण्ड		
46	हिन्दी कार्यक्रमों पर रिपोर्ट		162–167
47	मिट्टी करें पुकार	विकास जुन	168
48	काँटों पर तुम भी चलों	प्रीतम कुमारी	169
49	मैं अंकित हूँ	अंकित कुमार सिंह	170

फसलोत्तर प्रबंधनः क्यों और कैसे करें ?

अनुज कुमार, रविन्द्र कुमार, राजपाल मीना, मंगल सिंह एवं चरण सिंह
भाकृअनुप– भारतीय गेहूँ एवं जौ अनुसन्धान संस्थान, करनाल, हरियाणा

भारत एक विशाल देश है तथा यहां पर अनेकों प्रकार की फसलें, फल, फूल एवं सब्जियां उगाई जाती हैं। आज हमारा देश खाद्यान्न उत्पादन में नित नए आयाम स्थापित कर रहा है। जहाँ एक तरफ खाद्यान्न के क्षेत्र में हमने आत्मनिर्भरता एवं संप्रभुता स्थापित की है वहीं फल और सब्जियों के उत्पादन में भी बेहतरीन प्रगति हुई है। जैसे–जैसे उत्पादन का स्तर बढ़ता जा रहा है वैसे–वैसे फसलोत्तर प्रबंधन की चुनौतियां भी बढ़ती जा रही हैं। उत्पादित अनाज फल और सब्जियों का बहुत बड़ा हिस्सा समुचित परिवहन, भंडारण एवं कटाई उपरांत प्रबंधन के अभाव में बर्बाद हो जाता है। अतः उत्पादन में बढ़ोत्तरी के साथ–साथ उनका प्रबंधन आज की प्राथमिकता है ताकि किसानों के प्रति ईकाई क्षेत्रफल से लाभार्जन को और अधिक बढ़ाया जा सकता सके।

फसलोत्तर प्रबंधन के मुख्य उद्देश्य

1. खाद्य उपलब्धता को बढ़ाना
2. खाद्य एवं पोषण सुरक्षा सुनिश्चित करना
3. आपातकालीन स्थितियों में भोजन उपलब्ध कराना
4. रोजगार सृजन
5. मूल्य संवर्धन
6. निर्यात द्वारा आय की प्राप्ति
7. ग्रामीण औद्योगीकरण को समर्थन
8. निर्माताओं और उपभोक्ताओं के लिए लाभ बढ़ाना

कटाई प्रबंधन

हमारे देश में विभिन्न प्रकार की फसलों की कटाई के लिए भिन्न–भिन्न प्रकार की विधियाँ अपनाई जाती हैं। परंतु मोटे तौर पर इन्हें दो वर्गों में बांटा जा सकता है; पहला हाथ से कटाई तथा दूसरा मशीनों से कटाई। तकनीकी क्षेत्र में विकास की वजह से कटाई के कार्यक्रम को सरल, सुगम, त्वरित एवं दक्षता पूर्ण बनाने के लिए आज मशीनों का अधिक प्रयोग किया जा रहा है। यही कारण है कि हाथ से कटाई की जगह अब मशीनों से कटाई को प्राथमिकता दी जाने लगी है। खेतीहर मजदूरों की अनुपलब्धता ने भी मशीनों के प्रयोग को बढ़ाया है। धान–गेहूँ जैसी महत्वपूर्ण खाद्यान्न फसलों में अब अधिकांश क्षेत्रों में कंबाइन हार्वेस्टर से कटाई का कार्य संपन्न किया जा रहा है। धान–गेहूँ फसल–चक्र में धान की कटाई के बाद गेहूँ की बिजाई के लिए समय की कमी की वजह से मशीनी कटाई का प्रचलन अधिक बढ़ा है। साथ ही मौसम की अनियमितता की वजह से भी मशीनों द्वारा कटाई का कार्य किसान सम्पादित करते है और बहुत हद तक जोखिमों का प्रबंधन भी करते हैं। कंबाइन हार्वेस्टर की उपयोगिता एवं

दक्षता की वजह से आजकल छोटे–छोटे किसान भी किराए पर अपनी फसलों की कटाई मशीनों से संपादित कर रहे हैं। आजकल तरह–तरह के हार्वेस्टर उपलब्ध हैं जो छोटे एवं बड़े सभी आकार में आते हैं। परंतु कंबाइन हार्वेस्टर से कटाई के साथ–साथ मढ़ाई का भी कार्य संपन्न होता है जिसकी वजह से इस मशीन की उपयोगिता और अधिक बढ़ जाती है तथा कटाई प्रबंधन बहुत आसानी से हो जाता है। अगर गेहूँ की कटाई की बात करें तो देश के मध्य भाग तथा पश्चिमी भाग में फरवरी के अंत से ही फसल पककर कटाई के लिए तैयार हो जाती है और उत्तरी भारत से बहुत बड़ी संख्या में कंबाइन हार्वेस्टर इन क्षेत्रों के लिए कुच कर जाते हैं और मार्च के अंत तक इन क्षेत्रों के कटाई कार्य को संपादित कर उत्तर भारत में वापस आ जाते हैं । यह परंपरा विगत दो दशकों से लगातार देखने को मिल रही है। उत्तरी भारत में गेहूँ की कटाई अप्रैल के प्रथम सप्ताह से प्रारंभ होती है और मध्य अप्रैल से अप्रैल के उत्तरार्द्ध तक काफी जोर पकड़ लेती है। इसी समय मौसम में अनेकों प्रकार की विसंगतियां जैसे आंधी, तेज हवा के साथ बारिश आना, ओलावृष्टि आदि प्रमुख हैं का भी सामना किसानों को करना पड़ता है और कई बार बहुत बड़ी क्षति भी उठानी पड़ती है। किसान इन परिस्थितियों से निपटने के लिए हर संभव प्रयास करता है और यहीं कारण है कि कंबाइन हार्वेस्टर का प्रयोग बहुत बढ़ा है। इसकी मुख्य वजह एक ही बार में कटाई एवं मडाई का कार्य शीघ्रता से संपादित करना है और किसान बहुत आसानी से अपने अनाज को मंडियों में भेज पाता है या फिर उन्हें भंडारित कर लेता है। आज भी देश में छोटी जोत वाले किसानों की संख्या बहुत अधिक है ऐसा अनुमान है कि देश में करीब करीब 85–86 प्रतिशत किसान छोटी जोत वाले हैं और उनके खेत अलग–अलग होने के कारण कंबाइन हार्वेस्टर से कटाई करना कई बार संभव नहीं हो पाता है या फिर अपने पशुधन के लिए अच्छी गुणवत्ता के चारे तथा बढ़िया पराली की

चाह रखने वाले किसान अक्सर हाथ से कटाई करते हैं फिर बंडल बनाकर उन्हें तीन–चार दिनों तक सुखाते हैं जब कटा हुआ अनाज सूख जाता है उसके बाद गहाई का कार्य संपादित किया जाता है।

परिवहन

गहाई तथा मडाई के बाद अनाज, फल, सब्जी तथा अन्य कृषि उत्पादों को भंडारण एवं विपणन स्थल तक पहुंचाने के लिए समुचित परिवहन साधनों की आवश्यकता होती है। जहां अनाजों को मंडियों तक ले जाने के लिए ट्रॉली, ट्रक आदि साधनों की आवश्यकता होती है वही फल और सब्जियों को भी इन्हीं ट्रकों और ट्रोलियों के माध्यम से पहुंचाया जाता है। परंतु कुछ फल और सब्जियों के लिए बोरो की जगह बक्से या क्रेट आदि का इस्तेमाल किया जाता है। शीघ्र खराब होने वाले उत्पादों के लिए रेफ्रिजरेटेड वाहनों का भी इस्तेमाल किया जाता है। भारत सरकार द्वारा किसान रेल की शुरुआत इस दिशा में एक सराहनीय कदम है जिसके माध्यम से देश के विभिन्न हिस्सों में किसानों द्वारा उत्पादित कृषि उत्पादों को लक्षित बाजार तक पहुंचाया जा रहा है और सरकार की कोशिश है कि इस तरह के और भी प्रयास किए जाएं डेडीकेटेड फ्रीट कॉरिडोर के माध्यम से भी इस कार्यक्रम को अंजाम दिए जाने की व्यवस्था की गई है। इसी प्रकार से रेल द्वारा देश के विभिन्न राज्यों में उत्पादित दुग्ध को भी समुचित बाजार तक पहुंचाने की व्यवस्था की जा रही है। आधुनिक परिवहन के साधनों तथा पथ निर्माण द्वारा कटाई उपरांत हानि को कम करने के लिए भारत सरकार द्वारा बहुत सारी योजनाओं पर कार्य किया जा रहा है। इसका एकमात्र उद्देश्य घरेलू व्यवस्था को सुदृढ़ करना तथा सामानों को बंदरगाहों तक शीघ्रता से पहुंचाना है। निर्यात की जाने वाली कृषि उत्पादों की गुणवत्ता को सुनिश्चित करने के लिए उनका शीघ्र अति शीघ्र परिवहन करना बहुत आवश्यक है। आज कृषि क्षेत्र में लगातार प्रगति हुई है और हमारी दक्षता में बढ़ रही है और कृषि संबंधित उत्पादों के निर्यात में भी काफी बढ़ोत्तरी हो रही है जिससे बहुत बड़ी मात्रा में राजस्व की प्राप्ति हो रही है। अनाजों, फलों व सब्जियों के समुचित प्रबंधन द्वारा पूरी आहार श्रृंखला की दक्षता एवं क्षमता को लगातार बढ़ाया जा रहा है जिसकी वजह से किसानों की कमाई भी बढ़ रही है।

भंडारण

भारत में भंडारण के लगभग सभी तरीके प्रयोग में लाए जाते हैं। गाँव और सुदूर इलाकों में आज भी कृषक तथा महिला किसान अनाजों, दालों एवं बीजों का भंडारण पारंपरिक तरीके से बनाई गई संरचनाओं में करते हैं। वहीं छोटे स्तर पर भंडारण के लिए धातु की बनी बिन्स का प्रयोग भी ग्रामीण इलाकों में बहुत प्रचलित है। प्रायः देखा गया है कि किसान अपने घरेलू खपत तथा अगले वर्ष की बिजाई के लिए अनाज के साथ–साथ बीज का भंडारा करते हैं। आधुनिक व बड़े पैमाने पर भंडारण के लिए भारतीय खाद्य निगम, केंद्रीय भंडारण निगम, राज्य

भंडारण निगम द्वारा एक सुव्यवस्थित ढांचा तैयार किया गया है जो धान और गेहूँ के भंडारण का दायित्व एक लंबे अरसे से निभा रहा हैं। भंडारण के क्षेत्र में निजी एवं सरकारी क्षेत्र की भागीदारी सुनिश्चित करने तथा ग्रामीण एवं शहरी क्षेत्रों एक सुदृढ़ भण्डारण के ढांचागत विकास के लिए सरकारी अनुदान पर बड़े पैमाने पर निजी गोदाम बनाए गए हैं जिनको किराए पर लेकर के भंडारण से संबंधित सारी सरकारी संस्थाएं अनाजों का भंडारण कर रही हैं। भण्डारण के क्षेत्र के बहुत सारे उद्यमी और व्यवसायी यहां तक कि किसान एवं किसान संगठन भी बड़े–बड़े भंडारों के निर्माण में लगे हुए हैं जहां पर बड़ी मात्रा में अनाजों का भंडारण किया जा रहा है। आधुनिक भंडारण में साइलो का निर्माण एक महत्वपूर्ण पहल है जिसमें अनाजों का भंडारण काफी लंबी अवधि तक किया जा सकता है। इसमें कुछ निजी कंपनियों ने निवेश किया है तथा भारत में भंडारण से संबंधित संस्थाएं इनको किराए पर लेकर अनाजों का भंडारण कर रही हैं। भारत सरकार की पहल पर देश में किसानों को किसान उत्पादन संगठन के माध्यम से संगठित करने का लगातार प्रयास किया जा रहा है ऐसा माना जा रहा है कि आज के समय में देश में 12000 से अधिक किसान उत्पादक संगठन काम कर रहे हैं। किसान संगठनों को बनाने का जो मुख्य उद्देश्य है वह है किसानों द्वारा उत्पादित कृषि उत्पादों का एकत्रीकरण उनका भण्डारण एवं विपणन ताकि किसानों को उनके उत्पादों का समुचित मूल्य मिल सके और उनके लाभार्जन को और अधिक बढ़ाया जा सके। यही कारण है कि आज मैदानी इलाकों में 300 किसानों को मिलाकर कृषि उत्पादक संगठनों को बनाया जा रहा है ताकि इतनी बड़ी संख्या में किसानों के उत्पादों को एकत्रित करने की वजह से उनका विपणन देश के किसी भी हिस्से की मंडी में किया जा सकेगा। पहाड़ी क्षेत्रों में 100 किसानों को संगठित कर कृषक उत्पादक संगठन बनाए जा रहे हैं। यहां भी वही उद्देश्य है कि कैसे किसानों द्वारा उत्पादित विभिन्न उत्पादों को एकत्रित किया जाए तथा जहां भी अच्छी कीमत मिले वहां तक उनका परिवहन कर उसका विपणन किया जाए और अंततः किसानों को लाभ अर्जन हो।

विपणन

विपणन कृषि उत्पादों का कटाई उपरांत प्रबंधन का एक महत्वपूर्ण पहलू है। इसी से किसानों की आमदनी तथा पूरी

उत्पादन प्रक्रिया का प्रतिफल निर्धारित होता है। प्रायः देखा गया है कि छोटे और मझोले किसान ग्रामीण स्तर पर ही अपने उत्पाद बेच देते हैं और इस प्रकार की व्यवस्था लगभग सभी ग्रामीण इलाकों में है। छोटी मात्रा में उत्पाद को लेकर अगर किसान दूर के इलाकों में जाते हैं तो उन्हें ढुलाई खर्च भी वहन करना पड़ता है जिसकी वजह से लाभार्जन नहीं हो पाता है। यही कारण है कि वह किसान ग्रामीण स्तर पर ही अपने उत्पादों को बेचने के लिए मजबूर हैं। सहकारी संगठनों एवं एफपीओ द्वारा ग्रामीण स्तर पर कृषि उत्पादों को इकट्ठा करना तथा फिर देश की विभिन्न मंडियों में उनको उचित दाम पर बेचना एक महत्वपूर्ण कार्य है जिसको आज बखूबी अंजाम दिया जा रहा है। आज देश की सभी मंडियों को डिजिटली जोड़ दिया गया है या फिर जोड़ा जा रहा है ताकि किसान किसी भी मंडी में अपने उत्पाद बेच सके। इ–नैम के माध्यम से देश का किसान अपने कृषि उत्पादों का विपणन देश की विभिन्न मंडियों में कर रहा है और उसे अपने उत्पादों का समुचित दाम भी मिल रहा है। आज हमारे देश में लगभग 1000 ए पी एम सी मंडियां है जिनमे 415 मंडियों को इ–नैम से जोड़ने की योजना है जो लगभग पूर्णता की ओर है। आज किसानों के समक्ष अपने उत्पादों को बेचने के लिए कृषि उत्पादों के विपणन के लिए सभी तरह के विकल्प उपलब्ध हैं। आज देश का प्रत्येक किसान कृषि उत्पादों के विपणन के महत्व को समझने लगा है और यही कारण है कि किसान संगठित होकर अपने उत्पादों को समुचित दामों पर देश की विभिन्न मंडियों में बेच रहे हैं। आजकल ऑनलाइन प्लेटफॉर्म के माध्यम से भी कृषि उत्पादों को आसानी से बेचा जा रहा है। बहुत सारे किसान इससे वाकिफ हैं और जुड़े हुए भी हैं। आज कई किसान किसान संगठन अमेजन, फ्लिपकार्ट जैसे डिजिटल मार्केटिंग के प्लेटफार्म से जुड़कर अपना सामान बेच रहे हैं। बहुत से किसान व्यतिगत स्तर पर या फिर संगठन बनाकर खुद से ऑनलाइन मार्केटिंग कर रहे हैं। आज बहुत से किसान उत्पादक संगठन कंपनी में तब्दील हो रहे है और कृषि उत्पादों के व्यपार में अपनी भूमिका को और मजबूत बना रहे है । आज कृषि क्षेत्र में कई बड़े स्टार्टअप हैं जो किसानों से जुड़े हैं और वे सीधे किसानों से सामान खरीदकर उपभोक्ताओं तक बिक्री कर रहे हैं और इनके माध्यम से बिचौलियों को निकाला भी जा रहा है। इस प्रकार लाभार्जन का बड़ा हिस्सा अब किसानों को मिल रहा है। ताजे फल और सब्जियों के क्षेत्र में निंजाकार्ट, क्रोफॉर्म जैसे स्टार्टअप आज कामयाबी की कई कहानियां लिख रहे हैं। बहुत बड़े–बड़े डिजिटल प्लेटफॉर्म है जिसमें 50000 से भी अधिक किसान अपने कृषि उत्पादों को इनके माध्यम से बेच रहे हैं। व्यक्तिगत स्तर पर भी बहुत सारे सफल उद्यमी किसान हैं जिन्होंने अपना ऑनलाइन प्लेटफॉर्म बनाया है जिसके माध्यम से अपने फार्म पर उत्पादित या अपने गांव में या अपने क्षेत्र में उत्पादित विभिन्न उत्पादों का विपणन कर रहे हैं। आज विभिन्न जैविक किसान भी इससे जुड़ गए हैं और जैविक उत्पादों का एक बहुत बड़े बाजार का निर्माण हुआ है। आज उपभोक्ता जैविक उत्पादों के लिए अच्छे पैसे देने के लिए तैयार है और उनको ऑनलाइन माध्यम से बहुत सारे विकल्प उपलब्ध हैं। आवश्यकता है इन उत्पादों की गुणवत्ता सुनिश्चित करने की, उसके लिए आवश्यक प्रमाण पत्र की साथ ही उनको अच्छे तरीके से उत्पादक कंपनी बनाकर प्रोत्साहित करने की और इस तरह से बहुत हद तक किसानो की आमदनी को निजी स्तर या फिर संगठन स्तर पर बढ़ाया जा सकता है।

प्रसंस्करण एवं मूल्य संवर्धन

कृषि उत्पादों का श्रेणीकरण/ग्रेडिंग एक बहुत ही आसान प्रक्रिया है जिसके माध्यम से विभिन्न कृषि उत्पादों के विक्रय मूल्य को बढ़ाया जा सकता है। ग्रेडिंग करना एक आवश्यक कार्य है जिसको संपादित कर किसान आसानी से मुनाफा को बढ़ा सकते हैं। सब्जी एवं फल के क्षेत्र में तो इसकी महत्ता बहुत अधिक है। आज फल उत्पादन के क्षेत्र में इस कार्य को मशीनों द्वारा संपन्न किया जा रहा है। बहुत सारे व्यापारियों ने मंडियों में ग्रेडर लगाया है जो स्वचालित है जिसके माध्यम से फलों की ग्रेडिंग बहुत आसानी से हो जाती है तथा आकार के हिसाब से फलों के अलग–अलग क्रेट अथवा बक्से बनाकर उनकी पैकिंग की जाती है और फिर उनका विपणन किया जाता है।

कृषि उत्पादों के प्रसंस्करण एवं मूल्य संवर्धन द्वारा लाभार्जन को कई गुणा बढ़ाया जा सकता है। प्रसंस्करण एवं मूल्य संवर्धन का समुचित ज्ञान तथा इस क्षेत्र में क्षमता विकास एक आवश्यक प्रक्रिया बनती जा रही है। कई किसान व्यक्तिगत स्तर पर प्रसंस्करण एवं मूल्य संवर्धन से जुड़े हुए हैं और उन्होंने स्थानीय एवं राष्ट्रीय स्तर पर अपनी एक अलग पहचान बना ली है। साथ ही उन्होंने अपने उत्पादों का एक संगठित बाजार भी स्थापित कर लिया है। किसान उत्पादक संगठनों के माध्यम से भी इस कार्यक्रम को बखूबी अंजाम दिया जा रहा है। आज यह एक बहुत बड़े बिजनेस मॉडल के रूप में उभरा है आशा है देश के अधिकतर किसान प्रसंस्करण एवं मूल्य संवर्धन के लाभदायक पहलुओं से वाकिफ होंगे और वे इस दिशा में अपना ज्ञान एवं दक्षता बढ़ाकर अधिक मुनाफा कमा सकते हैं। किसानों को तथा किसान उत्पादक संगठनों को कृषि उत्पादों का श्रेणीकरण, प्रसंस्करण एवं मूल्य संवर्धन की दिशा में सराहनीय कार्य करने की आवश्यकता है। कृषक उत्पादक संगठनों को किसान उत्पादक कंपनी बनाना होगा जिसे एफ पी सी भी कहते हैं अति आवश्यक हो गया है। कृषक उत्पादक संगठन जब उत्पादक कंपनी का रूप लेती है तो उस पर व्यापार से सम्बंधित सभी नियम कानून लागू होते हैं और यह एक बिजनेस का मॉडल होता है। देश के बहुत से किसान अपने उत्पादों को बिचौलियों या व्यापारियों को न बेचकर सीधे उपभोक्ताओं को बेच रहे हैं। किसानों की नई पीढ़ी इस क्षेत्र में

उद्यमिता विकास द्वारा, स्टार्टअप द्वारा तथा फार्मर प्रोड्यूसर कंपनी बनाकर सफलता की कहानियां लिख रही हैं। आवश्यकता है इन नवाचारों से सीखने की तथा किसानों को इन सफलता की कहानियों को प्रकाशित कर दूसरे किसानों और उत्पादक संगठनों को इस तरह की पहल के लिए प्रोत्साहित करने की तभी जाकर के देश के किसान आर्थिक रूप से और अधिक सशक्त बन पाएंगे तथा अपनी कृषि से और अधिक लाभ अर्जित कर पाएंगे। सरकार की बहुत सारी योजनाओं के माध्यम से सह–उद्यमियों का ज्ञान पोषण, वित्तपोषण, मार्गदर्शन एवं प्रशिक्षण आदि किया जा रहा है। अब धीरे–धीरे किसानों का नजरिया भी महज एक उत्पादक से विक्रेता और विक्रेता से व्यापारी बनने की तरफ बढ़ रहा है। यह भारतीय कृषि को नई दिशा देने के लिए तथा किसानों को आर्थिक दशा सुधारने के लिए बहुत अच्छा संकेत है।

निष्कर्ष

देश के किसानों ने खाद्यान्न सुरक्षा प्रदान की है और अब हम धीरे–धीरे पोषण सुरक्षा की ओर अग्रसर हो रहे हैं। परन्तु किसानों की आर्थिक स्थिति में सुधार उतना नहीं हो सका जितनी अपेक्षित था। सह–उद्यमिता विकास द्वारा किसानों का कृषि के क्षेत्र में दृष्टिकोण बदला है और नई–नई पहल के द्वारा आज किसान अपने लाभार्जन को बढ़ाने में सफल हो रहा है। आवश्यकता है कृषि उत्पादों के विपणन को अपने हाथ में लेने की, संगठित होने की तभी जाकर किसान आर्थिक रूप से और सुदृढ़ हो पायेंगे।

गेहूँ के भंडारण प्रबंधन की संरचनाएं

मंगल सिंह, अनुज कुमार, सत्यवीर सिंह एवं अनिल कुमार खिप्पल
भाकृअनुप–भारतीय गेहूँ एवं जौ अनुसंधान संस्थान, करनाल

भारतवर्ष में उगाई जाने वाली खाद्यान्न फसलों में उत्पादन एवं क्षेत्रफल की दृष्टि से गेहूँ दूसरी महत्वपूर्ण फसल है। देश में गेहूँ का उत्पादन उत्तरी मैदानी क्षेत्र (लगभग 70 प्रतिशत), मध्य भारत (लगभग 20 प्रतिशत) एवं अन्य क्षेत्रों में (लगभग 10 प्रतिशत) किया जाता है। फसल–सत्र 2020–21 के दौरान हमारे देश में 109.52 मिलियन टन गेहूँ का उत्पादन हुआ, जो अब तक का सर्वाधिक उत्पादन है। जैसे–जैसे उत्पादन का स्तर बढ़ रहा है, वैसे–वैसे इसके भंडारण प्रबंधन के लिए बड़ी–बड़ी संरचनाओं की आवश्यकता हो रही है, ताकि, गेहूँ का सुरक्षित भंडारण हो सके। प्रायः देखा गया है कि किसान अपने उपभोग एवं बीज के रूप में उपयोग के लिए पारम्परिक विधियों का उपयोग करते हुए घरों में कुल उत्पादन के लगभग 65 प्रतिशत हिस्से का भंडारण करते हैं, जबकि सरकारी संस्थाएं सार्वजनिक खाद्य आपूर्ति के लिए खरीदे गए गेहूँ का भंडारण आधुनिक वैज्ञानिक विधियों द्वारा करती हैं।

भारत में पारम्परिक एवं आधुनिक भंडारण की विधियों का विकास विविध जलवायु परिस्थितियों, उपलब्ध संसाधनों एवं जरूरतों के अनुसार हुआ है। ये संरचनाएं जलवायु क्षेत्रों के अनुरूप अलग–अलग डिज़ाइन, सामग्री एवं क्षमताओं की होती हैं। यह किसी भी प्राकृतिक आपदा के समय खाद्य आपूर्ति प्रणाली को मजबूती प्रदान करने के अतिरिक्त, अखिल भारतीय स्तर पर खाद्यान्न भंडारण को सक्षम और सुदृढ़ बनाती हैं। खेतों से उत्पादित गेहूँ में नमी का स्तर 12 प्रतिशत से अधिक, कटे हुए, अविकसित, बीमारी से ग्रसित एवं अन्य अवांछनीय पदार्थ जैसे फसल के तनों के टुकड़े, पत्तियाँ, पत्थर व मिट्टी के कण, खरपतवारों के बीज एवं अन्य अशुद्धियाँ होती हैं। इनके कारण भंडारण के समय गेहूँ अनाज/बीज में कीड़ों एवं बीमारियों के लगने की संभावना बनी रहती है। इसलिए भंडारण से पहले बीजों को अच्छी तरह से साफ करके धूप में सुखाना अत्यन्त आवश्यक है। भंडारण के समय गेहूँ अनाज/बीजों में नमी की मात्रा 10–12 प्रतिशत से अधिक नही होनी चाहिए।

चित्र 1. अनाज को भण्डारण पूर्व सुखाना

गेहूँ के भंडारण की संरचनाएं

गेहूँ का उचित एवं सुरक्षित भंडारण देश की अर्थव्यवस्था में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। देश की खाद्य आपूर्ति श्रृंखला के सुदृढ़ीकरण, मानव उपयोग के लिए विभिन्न उत्पाद बनाने एवं विपणन के साथ–साथ किसानों को बीजाई के लिए गुणवत्तायुक्त स्वस्थ बीजों की उपलब्धता सुनिश्चित करने के लिए भी सुरक्षित भंडारण का होना अत्यन्त आवश्यक है। एक अनुमान के अनुसार भारत में कटाई उपरान्त हानि लगभग 8–10 प्रतिशत होती है। गेहूँ की प्राकृतिक संरचना पर्यावरणीय कारकों जैसे तापमान, नमी एवं भंडारण संरचना इत्यादि से अत्यधिक प्रभावित होती है। इसके अतिरिक्त मुख्यतः कीटों, कृन्तकों एवं सूक्ष्मजीवों के कारण होने वाली भंडारण हानियाँ विभिन्न कारकों जैसे उपयोग में लाई गई संरचना, भंडारण की अवधि, उद्देश्य, अनाज उपचार एवं पूर्व भंडारण की विधियाँ इत्यादि पर अत्यधिक निर्भर करती हैं। हमारे देश में गेहूँ भंडारण के लिए मुख्य रूप से निम्नलिखित तीन प्रकार की भंडारण संरचनाएं उपयोग में लाई जाती हैं।

1. पारम्परिक भंडारण संरचनाएं
2. उन्नत भंडारण संरचनाएं
3. आधुनिक भंडारण संरचनाएं

1. पारम्परिक भंडारण संरचनाएं

देश में गेहूँ उत्पादन का बहुत बड़ा हिस्सा पारम्परिक संरचनाओं में ही भंडारित किया जाता है। पारम्परिक अनाज भंडारण पद्धतियाँ आर्थिक रूप से व्यवहार्य, पर्यावरण के अनुकूल एवं स्थान विशिष्ट होती हैं। पिछले दो दशक से अनाज उत्पादन प्रौद्योगिकी में प्रगति के कारण इनका चलन तेजी से कम हो रहा है। फिर भी इन स्वदेशी अनाज भंडारण संरचनाओं का चलन आदिवासी एवं देश के अनेक क्षेत्रों में आज भी देखने को मिल जाता है। इन पारम्परिक संरचनाओं में पन्तनगर बिन, उदयपुर बिन, हापुड़ बिन, लकड़ी, बांस व लोहे के बिन, बुखारी, कुठला, मेरई, कमोरा (मिट्टी एवं कागज से निर्मित) एवं जूट व प्लास्टिक के बैग आदि को प्रयोग में लाया जाता है। कुछ पारम्परिक संरचनाओं का विस्तृत वर्णन निम्नलिखित है;

1.1 मिट्टी से निर्मित कोठला/कोठिला/कोठार

सदियों से उपयोग की जाने वाली ये पारम्परिक संरचनाएं चिकनी मिट्टी एवं भूसे के मिश्रण से तैयार की जाती हैं। यह संरचनाएं आकार में गोलाकार होती हैं। इन संरचनाओं की भंडारण क्षमता 1–4 कुंतल तथा इनका उपयोग अल्पावधि

भंडारण के लिए किया जाता है। मिट्टी की बनी इन संरचनाओं को बारिश से सुरक्षित रखने की जरूरत होती है। इनके संरक्षण का एक सरल एवं सस्ता तरीका उल्टे "वी" के आकार में एक शंकुनुमा छप्पर का निर्माण करके संरचनाओं के ऊपर रख देते हैं अथवा घर के अन्दर भी रख सकते हैं। कई आदिवासी लोग कोठला को आकर्षक बनाने के लिए रंगों द्वारा चित्रकारी भी करते है। इन संरचनाओं का उपयोग आज भी देश के कई राज्यों में आज भी किया जाता है।

चित्र 2: मिट्टी से निर्मित कोठला

1.2 बुखारी/कोठार प्रकार की भंडारण संरचनाएं

गेहूँ भंडारण के लिए उपयोग किए जाने वाली ये संरचनाएं आकार में बेलनाकार होती हैं। इन बुखारी संरचनाओं की क्षमता आमतौर पर 3.5–18 टन तक होती है। हालांकि, इससे कम क्षमता वाली संरचनाओं का भी निर्माण किया जाता हैं। इन संरचनाओं को लकड़ी व ईंट के प्लेटफॉर्म पर जमीन से लगभग 1.5–2.0 फीट की ऊंचाई पर मिट्टी एवं बांस द्वारा बेलनाकार बनाया जाता है। जिसे मिट्टी, गोबर एवं भूसे के साथ–साथ अन्दर व बाहर दोनों तरफ से प्लास्टर किया जाता है। इस बेलनाकार संरचना को शंकु के आकार की बांस एवं पराली से बनी छत प्रदान की जाती है। बेहतर प्रकार की बुखारी संरचना में मूल आकार समान रहता है, लेकिन सामग्री तथा निर्माण की विधि में सुधार करके संरचना को अधिक सुरक्षित एवं टिकाऊ बनाया जाता है। बांस की दोहरी परत द्वारा एक दूसरे से समकोण पर बारीकी से सेट किया जाता है। इसके फर्श के ऊपर लगभग 5 सेन्टीमीटर मोटा चिकनी मिट्टी का प्लास्टर किया जाता है। इन संरचनाओं की बांस से बनी दो मजबूत दीवारों के बीच कीचड़ भरकर ढांचे के दोनों तरफ की दीवारों पर मिट्टी का प्लास्टर किया जाता है।

चित्र 3: बुखारी/कोठार संरचनाएं

बारिश से अतिरिक्त सुरक्षा प्रदान करने के लिए शंकुआकार छत का शीर्ष 4–5 सेमी मोटी मिट्टी की परत से ढक दिया जाता है। चूहों को भंडारण संरचना में प्रवेश करने से रोकने के लिए सभी चार स्तंभों पर रैट प्रूफिंग कोन लगाए जाते हैं।

1.3 भकार/संदूक भंडारण संरचना

यह लकड़ी से बनी एक आयताकार संदूक के आकार की संरचना होती है। इसकी लम्बाई 4–6 फीट, चौड़ाई 2–3 फीट तथा ऊँचाई 2–4 फीट होती है। इन संरचनाओं का निर्माण आमतौर पर 0.5–2.0 इंच मोटे चीड़/देवदार/कटौंज आदि की लकड़ी के तख्ते से किया जाता है। इनकी भंडारण क्षमता 60–100 किलोग्राम होती है। इन संरचनाओं को गेहूँ के सुरक्षित भंडारण के लिए हिमाचल प्रदेश, कर्नाटक, आन्ध्र प्रदेश, मध्य प्रदेश एवं छत्तीसगढ़ आदि राज्यों में आज भी उपयोग में लाया जाता है।

चित्र 4: भकार/संदूक संरचना

1.4 भूमिगत अनाज संग्रह संरचनाएं

उत्तराखंड की पारम्परिक यह संग्रह संचरना जमीन के नीचे अनाज भंडारण की एक परिष्कृत विधि है। इन भूमिगत संरचनाओं के निर्माण में लकड़ी को एक साथ इस प्रकार से इकट्ठा किया जाता है कि इनके निर्माण में लोहे की कीलों की आवश्यकता नहीं पड़ती है। ये संरचनाएं एक बार निर्मित होने के बाद सौ से अधिक वर्षों तक तापमान में प्रतिकूल भिन्नता का सामना करने में पूर्णतः सक्षम होती हैं। इन संरचनाओं में प्रयुक्त देवदार की लकड़ी दीर्घायु प्रदान करती है। इस लकड़ी से बनी संरचनाओं में अनाज को नमी, कीड़ों, बैक्टीरिया एवं अन्य सूक्ष्म जीवों के प्रतिकूल प्रभाव से बचाने के लिए वर्षों तक संग्रहित किया जा सकता है। इस लकड़ी में अनाज को बाहरी संपर्क से बचाने का प्राकृतिक गुण है, जो सभी मौसम में संरचना के भीतर एक अनुकूल वातावरण बनाए रखता है। इस संदर्भ में ग्रामीणों की एक कहावत प्रचलित है, "सौ साल बड़ा, सौ साल पड़ा, पर देवदार नहीं सड़ा। स्थानीय लोगों का कहना है कि उनके यह कोठार परदादा की पीढ़ी से मौजूद हैं।

1.5 बांस से बनी भंडारण संरचना

इस प्रकार की पारम्परिक भंडारण संरचना के निर्माण में बांस का प्रयोग किया जाता है। इन संरचनाओं का निर्माण स्थानीय रूप से उपलब्ध सामग्री से करने के कारण सस्ता एवं आसान होता है। इन संरचनाओं में रखे अनाज/बीज

की व्यवहार्यता दो साल तक चल सकती है। इस प्रकार की पारम्परिक संरचनाओं के निर्माण के लिए किसी दक्ष कारीगर की आवश्यकता नहीं पड़ती है। परिवार की महिलाएं ही इन संरचनाओं को मूर्तरूप दे देती हैं।

चित्र 5: बांस से बनी भंडारण संरचना

1.6 बैग भंडारण

जूट, स्थानीय घास एवं कपास से बनी बोरियों में खाद्यान्न को अल्पावधि भंडारण के लिए व्यापक रूप से खेतों, गांवों एवं वाणिज्यिक केंद्रों पर भंडारित किया जाता है। लेकिन अब भारत में भंडारण के लिए पॉलीप्रोपाइलीन बैग का प्रयोग व्यापक रूप से किया जा रहा है। किसान अभी भी 25 किलोग्राम से लेकर 100 किलोग्राम क्षमता वाले जूट या सिसाल से बने बैगों का उपयोग करते हैं। पॉलीथीन भंडारण बैग अत्यधिक कुशल, भली भांति बंद भंडारण जैसा वातावरण बनाते हैं। इन बैगों को जल प्रतिरोधी एवं पूरी तरह से निर्वात भंडारण की स्थिति सुनिश्चित करने के लिए बहु–परत पॉलीथीन भंडारण बैग बनाने के लिए सुरक्षा की एक अतिरिक्त परत के लिए पॉलीथीन बैग को सामान्य भंडारण बैग के अंदर रखा जाता है। किसान बोरियों को फर्श से ऊपर पैलेट या प्लेटफॉर्म पर ढेर लगाकर रखते हैं। यह पैलेट/स्टैक्ड अनाज को फर्श से नमी को अवशोषित करने से रोकता है।

चित्र 6: पॉलीप्रोपाइलीन बैग में गेहूँ भंडारण

2.0 उन्नत भंडारण संरचनाए

उन्नत भंडारण संरचनाओं को पारम्परिक भंडारण संरचनाओं में कुछ सुधार करके बनाया गया है। गेहूँ के दीर्घकालिक भंडारण के लिए इस प्रकार की संरचनाएं पारम्परिक संरचनाओं की तुलना में उच्च भंडारण क्षमता वाली होती हैं। आमतौर पर इन बेहतर संरचनाओं में भंडारण की सीमा 1.5 से 150 टन तक होती है। देश के विभिन्न ग्रामीण एवं शहरी क्षेत्रों में गेहूँ के भंडारण के लिए उपयोग की जाने वाली प्रमुख भंडारण संरचनाएं निम्नलिखित हैं;

2.1 पूसा बिन

इस संरचना को भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली द्वारा विकसित किया गया है। यह मिट्टी या धूप में सुखाई गई ईंटों से बनी आयताकार संरचना होती है। कृंतक हमले को रोकने के लिए बिन को एक सख्त सतह पर बनाया जाता है। यदि सतह सख्त न हो तो इसका आधार/फाउंडेशन पक्की ईंटों का बनाया जाता है। नीचे से नमी रोकने के लिए आधार पर ब्लैक एलडीपीई फिल्म (700 गेज) बिछा देते हैं। पूसा बिन का आकार आमतौर पर 5.3 मीटर X 2.0 मीटर X 4.0 मीटर होता है। इसकी छत लकड़ी की बल्लियों एवं मिट्टी की शिला से बनाई जाती है। गेहूँ भरने एवं सफाई के लिए 0.50 मीटर X 0.50 मीटर आकार की खिड़की लगा देते हैं। इस बिन की निचली सतह पर सुविधानुसार गेहूँ की निकासी के लिए एक छोटा सा (10–15 सेंटीमीटर व्यास) निकास द्वार बनाया जाता है। इसकी भंडारण क्षमता 1–3 टन तक होती है।

चित्र 7: पूसा बिन

2.2 धातु या प्लास्टिक के ड्रम

इस प्रकार की गैर–पारम्परिक संरचानाओं में कार्बनिक सॉल्वेंट्स, पेट्रोलियम उत्पाद, ताड़ के तेल या पानी के भंडारण के लिए प्रयोग किए गए प्लास्टिक/धातु व अन्य सामग्री के बने ड्रमों को अच्छी तरह से साफ करने के बाद उपयोग में लाया जाता है। इन संरचनाओं में भंडारण के लिए अनाज को पहले धूप में अच्छी तरह से सुखाया जाता है ताकि अनाज में नमी की मात्रा 12 प्रतिशत या इससे कम स्तर पर आ जाए। इसके बाद ड्रम को अनाज से भर कर चिकनी मिट्टी की बनी कीचड़ से सील कर दिया जाता है। अनाज से भरे हुए इन ड्रमों को सुरक्षित स्थान पर रखा जाता है, ताकि नमी में परिवर्तन और संग्रहित अनाज के गर्म होने के कारण अनाज को खराब होने से बचाया जा सके। यदि इन ड्रमों को निर्वात बंद कर दिया जाता है, तो कीटनाशकों का उपयोग किए बिना अनाज को एक वर्ष या उससे अधिक समय तक संग्रहित किया जा सकता है। इन संरचनाओं की प्रभावशीलता बनाए रखने के लिए ड्रम से अनाज को बार–बार निकालने से बचना चाहिए क्योंकि ड्रम के खोले जाने पर ऑक्सीजन के मामूली प्रवेश होने पर कीटों की शारीरिक गतिविधियों को बल मिलता है।

चित्र 8: कोलतार एवं जीआई सीट से निर्मित संरचनाएं

2.3 कवर और प्लिंथ (सीएपी) भंडारण

कवर एंड प्लिन्थ भंडारण जिसे सीएपी भंडारण भी कहा जाता है, यह गेहूँ एवं धान के भंडारण के लिए एक वैज्ञानिक भंडारण प्रणाली है। सीएपी प्रणाली के तहत भंडारण स्थल को आस–पास की जमीन से अधिक ऊंचाई (45 सेन्टीमीटर से अधिक) तथा उचित जल निकास वाली जमीन पर बनाया जाता है। इस क्षेत्र का चयन नहर एवं बाढ़ प्रभावित क्षेत्रों से दूर किया जाता है। प्लिंथ शब्द का अर्थ है नीचे से प्लिंथ और कवर का अर्थ है ऊपर से कवर। यह अनाजों को संग्रहित करने की सामान्य एवं सस्ती विधि है। इस प्रणाली के तहत अनाज को किसी पानी अवरोधी कपड़े या तिरपाल से ढककर अस्थायी तरीके से खुले में रख दिया जाता है। इस कारण तेज हवा, आँधी एवं तूफान से नुकसान होने का खतरा बना रहता है। इसका ऊपर का कवर आयताकार तथा पांच भुजाओं वाला 1000 गेज की पॉलीथीन फिल्म से तैयार किया जाता है। अनाज के चट्टों को आसानी से ढ़कने के लिए नीचे की ओर खुला होता है। 9.4 मीटर X 6.4 मीटर X 5.5 मीटर के आकार वाले कवर का वजन सामान्य रूप से लगभग 52 किलोग्राम होता है। लगभग 150 टन की भंडारण क्षमता वाली सीएपी विकसित करने के लिए आमतौर पर स्टैक 9.11 X 6.1 मीटर के स्थान पर 18 बैग की ऊंचाई के साथ बनाया जाता है।

चित्र 9: कवर और प्लिंथ (सीएपी) भंडारण

3.0 आधुनिक भंडारण संरचनाएं

भारत में गेहूँ को अधिक मात्रा में संग्रहीत करने के लिए साइलो एवं पारम्परिक गोदामों को डिज़ाइन किया गया है। गोदामों की दीवारें ईंट या पत्थर से बनाई जाती हैं। इनकी छत को स्टील ट्रस के ऊपर नालीदार जस्ती लोहे (सीजीआई) शीट को ढलान में फिट करके बनाया जाता है। साइलो का निर्माण स्टील या प्रबलित कंक्रीट से किया जाता है। किसी भी अधिक क्षमता वाले आधुनिक गेहूँ प्रसंस्करण संयंत्र में साइलो को समीपवर्ती समूह में लगाया जाता है। यह भंडारित गेहूँ एवं उत्पादों को सुरक्षित रखने के लिए आधुनिक स्थायी भंडारण प्रणाली है। आधुनिक भंडारण की प्रमुख संरचनाएं निम्नलिखित प्रकार की होती हैं।

3.1 साइलो

गेहूँ भंडारण के लिए साइलो भंडारण सबसे अच्छा विकल्प माना जाता है। इस संरचना में समुचित भंडारण प्रबंधन तकनीकों को अपनाया जाता है। भारत में स्थायी खाद्य भंडारण प्रणाली के लिए भारतीय खाद्य निगम (एफसीआई) इसका सबसे अच्छा उदाहरण है, जिसमें 3 वर्ष के लिए किए गए गेहूँ भंडारण में केवल 0.3 प्रतिशत की हानि होती है। गेहूँ खरीद, भंडारण एवं वितरण प्रणाली के लिए एफसीआई दुनिया में अद्वितीय है। साइलो का उपयोग आमतौर पर अपने लम्बे जीवनकाल एवं कीट प्रतिरोध के कारण अधिकांश देशों में अनाज भंडारण के लिए किया जाता है। हमारे देश में धातु, मिट्टी, कंक्रीट एवं प्लास्टिक आदि से विभिन्न प्रकार एवं आकार के साइलों का निर्माण किया जाता है।

चित्र 10: आधुनिक साइलो संरचनाएं

3.2 आधुनिक भंडारगृह संरचना

ये वैज्ञानिक विधि से निर्मित अनाज को संग्रहित करने की संरचनाएं होती हैं ताकि इसके माध्यम से संग्रहित अनाज की मात्रा तथा गुणवत्ता को बरकरार रखा जा सके। इस तरह की संरचनाओं का निर्माण केंद्रीय भंडारण निगम, राज्य भंडारागार निगम तथा भारतीय खाद्य निगम द्वारा कराया जाता है। राष्ट्र की खाद्य सुरक्षा सुनिश्चित करने के लिए सार्वजनिक वितरण प्रणाली और अन्य कल्याणकारी योजनाओं की आवश्यकताओं को पूरा करने तथा स्टॉक रखने के साथ–साथ भंडारण आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए इनको प्रयोग में लाया जाता है। निजी उद्यमी गारंटी योजना के तहत मुख्य रूप से निजी भागीदारी के माध्यम से भारतीय खाद्य निगम द्वारा नए गोदामों का निर्माण किया जा रहा है।

3.3 गेहूँ जननद्रव्य का भंडारण

पादप आनुवंशिक संसाधनों के संरक्षण के लिए गेहूँ का दीर्घकालिक भंडारण जीन बैंकों के लिए अत्यधिक प्रासंगिक है। जीन बैंक लम्बी अवधि के भंडार के लिए एक अंतरराष्ट्रीय स्तर पर मान्यता प्राप्त संरचना है। इन संरचनाओं में गेहूँ एवं

चित्र 11: आधुनिक भंडारगृह संरचना

गेहूँ से सम्बन्धित जंगली वैश्विक प्राकृतिक विविधता का प्रतिनिधित्व करने वाले जननद्रव्यों को संग्रहित किया जाता है। हमारे देश में गेहूँ जननद्रव्य संग्रह भाकृअनुप–भारतीय गेहूँ एवं जौ अनुसंधान संस्थान, करनाल एवं भाकृअनुप–राष्ट्रीय पादप आनुवंशिक संसाधन ब्यूरो, नई दिल्ली में संग्रहित करने की संरचनाएं स्थापित की गई हैं। गेहूँ के बीज उच्च तापमान के प्रति संवेदनशील होते हैं अतः ये अधिक सुखाने या बहुत तेजी से सूखने से क्षतिग्रस्त हो सकते हैं, जिससे इनकी व्यवहार्यता एवं अंकुरण क्षमता में कमी आ सकती है। गेहूँ के बीजों के भंडारण में तापमान एवं आर्द्रता का नियंत्रण अत्यंत महत्वपूर्ण है। ये उच्च आर्द्रता के सम्पर्क में आने पर अपने जीवित स्वभाव के कारण अंकुरित होने लगते हैं। गेहूँ में नमी की मात्रा लम्बी अवधि के भंडारण के दौरान बीजों की गुणवत्ता एवं भंडारण क्षमता दोनों को प्रभावित करती है। राष्ट्रीय स्तर पर जीन बैंक मॉड्यूल के तापमान और आर्द्रता को नियन्त्रित करके अल्पकालीन संग्रह (तापमान 15–20 डिग्री सेल्सियस तथा सापेक्ष आर्द्रता 30–40 प्रतिशत), मध्यकालीन संग्रह (तापमान 0–10 डिग्री सेल्सियस तथा सापेक्ष आर्द्रता 25–30 प्रतिशत) एवं दीर्घ कालीन संग्रह (तापमान –10 से –20 डिग्री सेल्सियस तथा सापेक्ष आर्द्रता 30–40 प्रतिशत) के लिए उपयोग में लाया जाता है।

चित्र 12: गेहूँ जननद्रव्य का भंडारण

गेहूँ के सुरक्षित भंडारण में कीट प्रबन्धन के उपाय

भंडारण के कुछ कीट फसल की कटाई से पहले खेत में ही अपना प्रकोप प्रारम्भ कर देते हैं। यह कीट खेत में ही गेहूँ के दानों पर अपने अंडे देते हैं। इस कारण यह बहुत ही आसानी से खेतों से भंडारगृह में स्थानान्तरित होकर गेहूँ को हानि पहुंचाते हैं। इसलिए गेहूँ की कटाई के समय से ही कीट प्रकोप को कम करने के सार्थक उपायों को प्राथमिकता देनी चाहिए। गेहूँ के सुरक्षित भंडारण के प्रमुख उपाय निम्नलिखित हैं;

- भंडारण पूर्व अनाज को अच्छी तरह से साफ कर लें। भंडारण के समय भूसा, डंठल, कंकड़, पत्थर, टूटे, कटे–फटे एवं संक्रमित दाने अनाज में न हो।
- गेहूँ भंडारण से पहले भंडारगृहों की दीवारों एवं फर्श पर बनी दरारों को सीमेंट से बंद कर देना चाहिए।
- पुराने बोरों को प्रयोग से पूर्व उबलते पानी में डालकर तेज धूप में सुखाएं। मैलाथियान के 1% घोल में 10 मिनट तक डुबोकर फिर धूप में अच्छी तरह से सुखाएं। जहाँ तक सम्भव हो सके नई बोरियों का ही प्रयोग करें।
- गेहूँ ढोने के प्रयोग में आने वाले वाहनों को अच्छी तरह से धूप में सुखा लें।
- गेहूँ को बोरियों में भरकर रखना हो तो गोदाम के फर्श पर लकड़ी या प्लास्टिक के पैलेट, खजूर की चटाई, पॉलीथिन, तिरपाल या भूसे की परत बिछा देने से बोरियाँ नमी के सम्पर्क में नहीं आती हैं।
- गेहूँ की बोरियों को दीवार से कम से कम आधा मीटर की दूरी पर रखें।
- जहाँ तक सम्भव हो सके पहाड़ी इलाकों, छोटे किसानों तथा निजी उपयोग के घरेलू भंडारण के लिए जीआई शीट की चादर से बने कोठलों का प्रयोग करें।
- सेल्फॉस (एल्यूमिनियम फॉस्फाईड) की 3 ग्राम की 2–3 टिकिया प्रति टन अनाज की दर से प्रयोग करें।
- भंडारणगृह में चूहों की समस्या होने पर जिंक फॉस्फाईड की गोलियाँ अथवा रैट किल को इनके बिलों के पास रखकर प्रभावी प्रबन्धन किया जा सकता है।

सावधानियाँ

- सेल्फॉस (एल्यूमिनियम फॉस्फाईड) एक विषैला रसायन है, इसलिए इसका उपयोग बहुत सावधानी के साथ करना चाहिए।
- प्रधूमन (फ्यूमिगेशन) हमेशा वायु अवरोधी कक्ष, गोदाम एवं पात्र में ही करना चाहिए। इस कार्य को सरकार द्वारा प्रशिक्षित एवं अधिकृत व्यक्तियों द्वारा ही कराना चाहिए।
- प्रधूमन के लिए स्थान का चयन रिहायशी ईलाकों, जानवरों एवं शयन कक्ष से हमेशा दूर करें।
- प्रधूमन से पहले सभी खिड़कियों को बन्द एवं सील कर दें। प्रधूमन के तुरन्त बाद गोदाम या कक्ष का दरवाजा भी बन्द करके सील कर दें।
- सेल्फॉस (एल्यूमिनियम फॉस्फाईड) का इस्तेमाल अनुशंसित मास्क एवं दस्ताना पहनकर करना चाहिए।
- गेहूँ के सुरक्षित भंडारण के लिए अत्यधिक जहरीले रसायनों का प्रयोग कदापि न करें।

निष्कर्ष

हमारे देश में गेहूँ की उन्नत प्रौद्योगिकी एवं बेहतर सुविधाओं के कारण उत्पादन में निरन्तर वृद्धि हो रही है, लेकिन खाद्यान्न के अनुचित भंडारण के कारण प्रति वर्ष काफी राजस्व का नुकसान होता है। अध्ययन से पता चलता है कि सभी भंडारण पद्धतियाँ एवं विधियाँ तुलनात्मक दृष्टि से सस्ती हैं। अधिकांश संरचनाएं आसानी से उपलब्ध स्थानीय सामग्रियों से निर्मित हैं, जो पर्यावरण के अनुकूल हैं। ये सभी संरचनाएं प्रभावी रूप से संग्रहित खाद्यान्न को उच्च जीवन प्रदान करती हैं। दुनिया की बढ़ती खाद्य एवं ऊर्जा जरूरतों को पूरा करने के लिए इन पारम्परिक एवं आधुनिक गेहूँ भंडारण संरचनाओं का महत्वपूर्ण योगदान है। आधुनिक आदानों के साथ भंडारण के पारम्परिक और आधुनिक साधनों को मजबूत करना तथा किसानों को सस्ता एवं टिकाऊ भंडारण प्रदान करना समय की मांग है ताकि भंडारण के दौरान होने वाले नुकसान को रोका जा सके।

जौ का सुरक्षित भंडारण एवं संरचनाएं

रमेश पाल सिंह वर्मा, मंगल सिंह, अनुज कुमार, सत्यवीर सिंह, दिनेश कुमार एवं लोकेन्द्र कुमार
भाकृअनुप–भारतीय गेहूँ एवं जौ अनुसंधान संस्थान, करनाल

विश्व में जौ सदियों से उगाया जाने वाला एक महत्वपूर्ण एवं प्राचीनतम अनाज है। जौ फसल उत्पादन एवं क्षेत्रफल की दृष्टि से मक्का, गेहूँ एवं धान के बाद विश्व में चौथे स्थान पर है। जौ की फसल को विभिन्न ऊंचाई और अक्षांश वाले क्षेत्रों में विविध एवं सीमांत वातावरणों में उगाया जा सकता है। प्राचीन काल से जौ का उपयोग खाद्य पदार्थों, शक्तिवर्धक पेय, पशु आहार एवं धार्मिक अनुष्ठानों में किया जाता है। जौ की खेती भारत के उत्तरी पर्वतीय क्षेत्र, उत्तर–पश्चिमी मैदानी क्षेत्र, उत्तर–पूर्वी मैदानी क्षेत्र एवं मध्य भारत में मुख्य रूप से की जाती है। उपजाऊ भूमियों के अतिरिक्त सीमांत भूमि, लवणतायुक्त/क्षारीय भूमि, सिंचाई जल की कम उपलब्धता एवं बारानी क्षेत्रों में भी जौ की अच्छी पैदावार ली जा सकती है। वर्ष 2020–21 के दौरान भारत में जौ का उत्पादन 1.82 मिलियन टन हुआ तथा यह 0.61 मिलियन हैक्टर पर उगाया गया। इस दौरान प्रति हैक्टर औसत उपज 29.88 कुंतल/हैक्टर रही। जहाँ एक तरफ जौ के क्षेत्रफल में निरन्तर गिरावट देखी जा रही है, वहीं नई किस्मों और उत्पादन तकनीकियों की वजह से इसकी उत्पादकता लगातार बढ़ रही है। हमारे देश में छिलका सहित एवं छिलका रहित दानों तरह के जौ का उत्पादन किया जाता है। दोनों ही प्रकार के जौ पौष्टिकता से भरपूर होते हैं, तथा इनकी उपयोगिता भी अलग–अलग है।

चित्र 1: छिलका सहित और छिलका रहित जौ

जौ की कटाई के बाद होने वाले नुकसान को कम करने के लिए जौ के भंडारण का विकासशील देशों में किसानों के आर्थिक सशक्तिकरण में महत्वपूर्ण योगदान है। किसान एवं औद्योगिक कम्पनियाँ अपनी वर्ष भर की जरूरतों को पूरा करने लिए जौ के लिए भंडारण की पारम्परिक एवं आधुनिक तकनीकों एवं विभिन्न संरचनाओं का उपयोग करते हैं। ये भंडारण संरचनाएं तुलनात्मक रूप से सस्ती एवं पर्यावरण के अनुकूल होती हैं। ये भंडारण संरचनाएं संग्रहित जौ को दीर्घ जीवन काल प्रदान करती है। पारम्परिक भंडारण प्रणालियों को आधुनिक भंडारण क्षेत्रों में भी मामूली संशोधन के साथ उपयोग में लाया जा सकता है। पारम्परिक ज्ञान और भंडारण के तरीके जौ को लम्बे समय तक कीटों के प्रकोप से बचा सकते हैं।

दानों की गुणवत्ता एवं अंकुरण क्षमता को बनाए रखने के लिए इन्हें निम्न तापमान व निम्न आर्द्रता की दशाओं में सुरक्षित रखा जाता है, जिसे भण्डारण कहते हैं। भण्डारण के दौरान जौ की दीर्घायु एवं प्रसुप्ति, नमी एवं तापमान से प्रभावित होती हैं। यदि उपचारित दानों का भण्डारण अच्छी तरह से नहीं किया गया तो जौ उत्पादन प्रभावित हो सकता है। एक अनुमान के अनुसार विश्व में प्रतिवर्ष भंडारण के दौरान एक चौथाई से एक तिहाई जौ का नुकसान होता है। ऐसी स्थिति में जौ का भंडारण एक अति महत्वपूर्ण कार्य है। ऐसा माना जाता है कि जौ का दाना बहुत आसानी से वातावरण से नमी सोख लेता है अतः इसका भंडारण एक चुनौतीपूर्ण कार्य है। जौ भंडारण में मुख्यतः घुन, खपरा एवं सुंडी आदि कीट अत्यधिक हानि पंहुचाते हैं। नमी जल्दी सोखने तथा छिलका पतला होने के कारण नमी को लम्बे समय तक संग्रहित रखता है। इन कारणों से जौ के खराब होने की सम्भावनाएं और भी बढ़ जाती हैं। इसके अतिरिक्त जौ अनाज/बीज को चूहे, सूक्ष्मजीवाणु जैसे फफूंदी आदि से भी क्षति होती है।

जौ भंडारण की संरचनाएं

एक अनुमान के अनुसार भारत में जौ की कटाई के उपरान्त कुल उत्पादन का लगभग 8–10 प्रतिशत हानि होती है। जौ की प्राकृतिक संरचना/स्वरुप पर्यावरणीय कारकों जैसे–भंडारण संरचना, तापमान, नमी इत्यादि द्वारा अत्यधिक प्रभावित होती है। मुख्यतः कीटों, कृन्तकों एवं सूक्ष्मजीवों के कारण होने वाली भंडारण हानियाँ विभिन्न कारकों जैसे उपयोग में लाई गई संरचना, भंडारण की अवधि उद्देश्य, अनाज उपचार और पूर्व भंडारण की विधियाँ, इत्यादि पर अत्यधिक निर्भर है। जौ भंडारण की संरचनाओं का वर्गीकरण निम्नलिखित है;

1. जौ का खुला भंडारण

जौ का अल्पकालीन भंडारण करने के लिए किसी विशेष प्रकार की संरचना की आवश्यकता नहीं पड़ती है। इस विधि में जौ को अच्छी तरह से सुखाकर (नमी का स्तर 10–12 प्रतिशत) जूट/प्लास्टिक की बोरियों में भरकर अथवा कमरे के फर्श पर खुला हुआ डाल दिया जाता है। कमरे के सभी दरवाजे

एवं खिड़कियों को बन्द करके प्रधूमन कर देते हैं। इस विधि के अपनाने से समय, श्रम एवं आर्थिक बचत होती है।

चित्र 2: जौ का अल्पकालीन भंडारण

2. पारम्परिक भंडारण संरचनाएं

जौ की घरेलू खपत के लिए वातावरण की दशाओं एवं भंडारण की अवधि को ध्यान में रखते हुए अनेकों प्रकार की पारम्परिक संरचनाओं का निर्माण भंडारण के लिए किया जाता है। पन्तनगर बिन, पूसा बिन, लकड़ी व बांस के बिन, बुखारी, कुठला, मेरई, कमोरा (मिट्टी एवं कागज से निर्मित) एवं जूट व प्लास्टिक के बैग आदि को उपयोग में लाया जाता है। इनमें से कुछ पारम्परिक संरचनाओं का विस्तृत वर्णन निम्नलिखित है।

2.1 घरेलू स्तर पर बनी पारम्परिक भंडारण संरचनाएं

भारत में उत्पादित लगभग 60–70 प्रतिशत जौ का भंडारण घरेलू स्तर पर पारम्परिक भंडारण संरचनाओं में आन्तरिक, बाह्य एवं भूमिगत स्तर पर संग्रहित करके किया जाता हैं। ये सभी भंडारण संरचनाएं विभिन्न प्रकार की स्थानीय सामग्री जैसे– मिट्टी, भूसा, ईंट, पत्थर, सीमेंट, गोबर, लकड़ी, बांस एवं पुआल आदि से लेकर आधुनिक धातुओं से बनी होती हैं। इस प्रकार की बनी संरचनाएं दीर्घकालीन भंडारण के लिए उपयुक्त नही होती हैं। इन संरचनाओं पर प्रतिवर्ष मिट्टी का लेप चढ़ाकर सुरक्षित व व्यवस्थित रखना अनिवार्य है। नमी से बचाने के लिए इन संरचनाओं को ईंट, मिट्टी व लकड़ी से बने आधार (फाउन्डेशन) पर जमीन से एक फीट ऊपर रखा जाता है। इस प्रकार की पारम्परिक संरचनाओं के निर्माण के लिए किसी दक्ष कारीगर की आवश्यकता नही पड़ती है। परिवार की महिलाएं ही इन संरचनाओं को मूर्तरूप दे देती हैं।

चित्र 3: बांस से बनी भंडारण संरचना

2.2 पूसा बिन

इस भंडारण संरचना को भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली द्वारा विकसित किया गया है। यह आमतौर पर गाँवों में उपयोग की जाने वाली सामान्य मिट्टी भंडारण संरचना का एक संशोधित रूप है। नमी एवं वायुरोधी स्थिति प्रदान करने के लिए 700 गेज मोटाई की पॉलीथीन फिल्म को मिट्टी के डिब्बे के ऊपर, नीचे और सभी तरफ लगाया जाता है। एम्बेडिंग प्रक्रिया पॉलीथीन फिल्म को यांत्रिक सहायता और सुरक्षा प्रदान करती है। 45 सेंटीमीटर तक की पक्की ईंटों के साथ बाहरी दीवारों का निर्माण इन संरचनाओं को चूहा अवरोधी बनाता है। यह आकार में आयताकार होते हैं और इनकी भंडारण क्षमता 1–3 टन होती हैं। उचित सावधानियों के साथ जौ अनाज एवं बीज दोनों एक वर्ष से अधिक समय तक इस बिन में सुरक्षित रहते हैं।

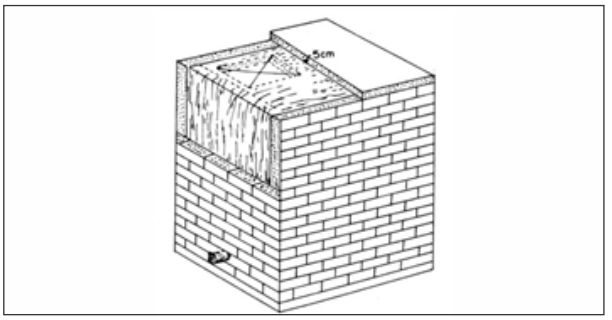

चित्र 4: पूसा बिन भंडारण संरचना

2.3 धातु से बनी बिन्स/ड्रम भंडारण संरचना

धातु से बनी बिन्स/ड्रम को बनाने के लिए स्टील एवं एल्यूमीनियम का प्रयोग किया जाता है। इस प्रकार की संरचनाएं नमी, हवा एवं आग से सुरक्षित होती हैं। इन संरचनाओं का निर्माण किसी कम्पनी के द्वारा बड़े पैमाने पर आसानी से किया जा सकता है। इन संरचनाओं का आकार बाजार की मांग को देखते हुए गोल अथवा चौकोर रखा जाता है। इनकी संग्रह क्षमता 1–10 टन तक होती है। इस प्रकार बने बिन्स को सुरक्षित भंडारण के लिए लम्बे समय तक प्रयोग में लाया जा सकता है। कोलतार के ड्रमों को भी

चित्र 5: कृषि विज्ञान केन्द्र के माध्यम से आदिवासी लोगों को लोहे से बने बिन्स का वितरण

एक प्रभावी विकल्प रूप में उपयोग किया जा सकता है। आदिवासी लोगों के हितों को ध्यान में रखते हुए कुछ राज्य सरकारें यह बिन सरकारी अनुदान पर उपलब्ध कराती है।

2.4 भूमिगत संग्रहण संरचनाएं

भारत के जनजातीय जिला लाहौल स्पिति में आज भी जौ के अल्प या दीर्घकालीन (25–30 वर्षों के लिए) भंडारण के लिए सदियों पुरानी तकनीक भूमिगत भंडारण का प्रयोग किया जा रहा है (ईटीवी हिमाचल प्रदेश)। इस तकनीक में जौ के भंडारण के लिए कमरे में जमीन के अन्दर दो या तीन चैम्बर बनाए जाते हैं। जिनका आकार एवं क्षमता परिवार की आवश्यकतानुसार रखा जाता है। यहाँ लोग जौ को आपात काल के लिए भी भंडारित करते हैं। इस जौ का उपयोग पारम्परिक उत्पाद जैसे सत्तू एवं अन्य खाद्य पदार्थों के बनाने में करते हैं। ऐसी ही संरचनाओं को कर्नाटक राज्य में "कानजा" के नाम से भी जाना जाता है। लाहौल स्पीति में कम तापमान होने के कारण कीड़े एवं सूक्ष्मजीवाणुओं द्वारा जौ के खराब होने की कोई भी समस्या नहीं है।

चित्र 6: भूमिगत संग्रहण संरचना

3. स्टील व एल्युमिनियम से बने साईलो

साइलो संरचनाएँ अनाज भंडारण की एक आधुनिक एवं वैज्ञानिक विधि है जो लम्बी अवधि तक बड़ी मात्रा में अनाजों को संरक्षित एवं सुरक्षित रखने में सक्षम होती हैं। यह धातु या स्टील से निर्मित सिलिंडर के आकार की संरचना होती है। इसमें अनाज को बड़ी मात्रा में कन्वेयर बेल्ट के माध्यम से रखा जाता है। प्रत्येक साईलो की क्षमता लगभग 25,000 टन होती है। अडानी कृषि लॉजिस्टिक्स लिमिटेड, एलटी फूड्स, नेशनल कोलैटरल मैनेजमेंट लिमिटेड, श्री कार्तिकेयन इंडस्ट्रीज और टोटल शिपिंग एंड लॉजिस्टिक कॉर्पोरेशन 21.5 लाख टन क्षमता वाले साईलो का निर्माण कर रहे हैं। मुख्यतौर पर इस प्रकार की भंडारण सुविधाओं का उपयोग माल्ट जौ के भंडारण के लिए बड़ी कम्पनियों द्वारा किया जाता है। जिसमें अधिकतर भंडारण प्रक्रिया यन्त्रीकृत होती है।

4. कवर एंड प्लिंथ (सीएपी)

सीएपी का उपयोग कवर और प्लिंथ स्टोरेज के लिए किया

चित्र 7: साइलो संरचनाएं

जाता है। प्लिंथ शब्द का अर्थ है नीचे से प्लिंथ और कवर का अर्थ है ऊपर से कवर। यह अनाजों को संग्रहित करने की सामान्य एवं सस्ती विधि है। इसके तहत अनाज को अस्थायी तरीके से खुले में किसी पानी अवरोधी कपड़े या तिरपाल से ढककर रख दिया जाता है। इसमें तेज हवा से नुकसान होने का खतरा होता है। इस प्रकार के खुले भंडारण को मध्यवर्ती भंडारण के रूप में माना जाता है। यह अल्प अवधि के लिए बोरियों में जौ के भंडारण के उद्देश्य को पूरा करता है। इसका ऊपर का कवर आयताकार तथा पांच भुजाओं वाला होता है। अनाज के चट्टों को आसानी से ढ़कने के लिए नीचे की ओर खुला होता है। इस कवर को 1000 गेज की पॉलीथीन फिल्म से तैयार किया जाता है। आम तौर पर स्टैक 9.11x6.1 मीटर की जगह पर 18 बैग की ऊंचाई के साथ बनाया जाता है जो लगभग 150 टन की भंडारण क्षमता देता है। 9.4 मीटर x 6.4 मीटर x 5.5 मीटर के आयाम वाले कवर का वजन सामान्य रूप से लगभग 52 किलोग्राम होता है।

चित्र 8: कवर और प्लिंथ भंडारण संरचनाएं

5. भंडारगृह

यह वैज्ञानिक विधि से निर्मित अनाज को संग्रहित करने की संरचनाएँ होती हैं ताकि इसके माध्यम से संग्रहित अनाज की मात्रा तथा गुणवत्ता को बरकरार रखा जाए। इस तरह की संरचनाओं का निर्माण केंद्रीय भंडारण निगम, राज्य भंडारागार निगम तथा भारतीय खाद्य निगम द्वारा कराया जाता है। राष्ट्र की खाद्य सुरक्षा सुनिश्चित करने के लिए सार्वजनिक वितरण प्रणाली और अन्य कल्याणकारी योजनाओं की आवश्यकताओं को पूरा करने तथा स्टॉक

रखने के साथ–साथ भंडारण आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए प्रयोग में लाया जाता है। निजी उद्यमी गारंटी योजना के तहत मुख्य रूप से निजी भागीदारी के माध्यम से एफसीआई द्वारा नए गोदामों का निर्माण किया जा रहा है।

चित्र 9: वैज्ञानिक विधि से अनाज को संग्रहित करने की भंडारण संरचनाएं

6. बीज बैंक मॉड्यूल संरचना

जौ के बीज उच्च तापमान के प्रति संवेदनशील होते हैं। इन्हें अत्यधिक या बहुत तेजी से सूखाने से बीज की व्यवहार्यता एवं शक्ति प्रभावित होती है। जौ बीज के भंडारण में तापमान एवं आर्द्रता का नियंत्रण अत्यंत महत्वपूर्ण है। यदि बीजों को उच्च आर्द्रता के स्तर के सम्पर्क में लाया जाता है, तो वे अपने जीवित स्वभाव के कारण अंकुरित होने लगते हैं। बीजों में मौजूद नमी की मात्रा लम्बी अवधि के भंडारण के दौरान बीजों की गुणवत्ता और भंडारण क्षमता दोनों को प्रभावित करती है। इन बातों को ध्यान में रखते हुए राष्ट्रीय स्तर पर बीज बैंक मॉड्यूल के तापमान और आर्द्रता को नियन्त्रित करके अल्पकालीन भंडारण (तापमान 15–20 डिग्री सेल्सियस तथा सापेक्ष आर्द्रता 30–40 प्रतिशत), मध्य कालीन भंडारण (तापमान 0–10 डिग्री सेल्सियस तथा सापेक्ष आर्द्रता 25–30 प्रतिशत) एवं दीर्घ कालीन भंडारण (तापमान –10 से –20 डिग्री सेल्सियस तथा सापेक्ष आर्द्रता 30–40 प्रतिशत) के लिए उपयोग में लाया जाता है।

चित्र 10: जौ का जननद्रव्य मॉड्यूल (जीन बैंक)

अनाज भंडारण के दौरान रखे जाने वाली सावधानियाँ

- हमेशा पक्के भंडारगृह में ही जौ का भंडारण करें।
- जौ भंडारण से पहले भंडारगृहों की दीवारों एवं फर्श पर बनी दरारों को सीमेंट से बंद कर देना चाहिए।
- पुराने बोरों के प्रयोग से पूर्व तेज धूप में सुखाएं या उबलते पानी में डालकर धूप में रखें। मैलाथियान के एक प्रतिशत घोल में 10 मिनट तक डुबोकर फिर धूप में अच्छी तरह से सुखाएं। जहाँ तक सम्भव हो नए बोरों का ही प्रयोग करें।
- जौ अनाज को अच्छी तरह से साफ कर लें। भंडारण के समय भूसा, डंठल, कंकड़, पत्थर, टूटे, कटे–फटे एवं संक्रमित दाने अनाज में न हो।
- जौ ढोने के प्रयोग में आने वाली गाड़ियों को धूप में सूखा लें।
- भंडारण के समय जौ में नमी की मात्रा 10–12 प्रतिशत होनी चाहिए।
- जौ को बोरों में भरकर रखना हो तो गोदाम के फर्श पर लकड़ी या प्लास्टिक के पैलेट, खजूर की चटाई, पॉलीथिन, तिरपाल या भूसे की परत बिछा देने से नमी बोरे तक नहीं पहुँचती है।
- प्रधूमन हमेशा वायु अवरोधी गोदाम, कक्ष एवं पात्र में ही करना चाहिए।
- प्रधूमन का कार्य स्वयं न करके सरकार द्वारा प्रशिक्षित एवं अधिकृत व्यक्तियों द्वारा ही कराना चाहिए।
- जौ के बोरों को दीवार से कम से कम आधा मीटर की दूरी पर रखना चाहिए।
- जौ की सुरक्षा के लिए अत्यधिक जहरीले रसायन का प्रयोग कदापि न करें।
- पहाड़ी इलाकों और छोटे किसानों तथा निजी प्रयोग के लिए घरों में जीआई शीट की चादर से बने कोठलों का प्रयोग करें।
- सेल्फॉस (एल्यूमिनियम फॉस्फाईड) की 3 ग्राम की एक टिकिया प्रति कुंतल अनाज की दर से प्रयोग करें। प्रधूमन से पहले सभी खिड़कियों को बन्द एवं सील कर दें। प्रधूमन के तुरन्त बाद गोदाम या कक्ष का दरवाजा भी बन्द करके सील कर दें।
- प्रधूमन के लिए स्थान का चयन रिहायशी ईलाकों, जानवरों एवं शयन कक्ष से हमेशा दूर करें।
- भंडारणगृह में यदि चूहों की समस्या हो तो जिंक फॉस्फाईड की गोलियाँ अथवा रैट किल को इनके बिलों के पास रखकर प्रभावी प्रबन्धन किया जा सकता है।

निष्कर्ष

खाद्यान्न मनुष्य की मूलभूत आवश्यकता है। मनुष्य अपने जीवन काल में अनेक वस्तुओं की कमी बर्दाश्त कर लेता है,

लेकिन भूखा नहीं रह सकता है। संभवतः इसी तथ्य के आधार पर हमारे शास्त्रों में अन्न को अमृत कहा गया है। अतः अन्न को खराब होने से बचाना नितान्त आवश्यक है। एक अनुमान के अनुसार फसल कटाई से लेकर थ्रेसिंग, परिवहन के दौरान तथा दोषपूर्ण भंडारण से 10 प्रतिशत अनाज बेकार हो जाता है, जिसमें से 7 प्रतिशत अनाज उत्पादकों द्वारा अपने घरों एवं परिसरों में केवल गलत तरीकों से भंडारित करने से खराब होता है। इससे किसानों को तथा अन्ततः देश को भारी आर्थिक क्षति होती है, इसका अनुमान लगाना कोई मुश्किल भरा कार्य नहीं है। अतः सिर्फ उत्पादन ही नही अपितु उत्पादन के बाद अनाज के एक–एक दाने को सुरक्षित रखा जाना अत्यन्त आवश्यक है। इस लेख के माध्यम से किसानों और आम नागरिकों को अनाज एवं खासकर जौ के सुरक्षित भंडारण में मदद मिलेगी।

भण्डारित अनाज के कीट एवं उनका प्रबन्धन

अंजना ठाकुर[1] एवं मधु पटियाल[2]
[1]चौ.स.कु.कृषि विश्वविद्यालय, पालमपुर, हिमाचल प्रदेश
[2]भाकृअनुप–भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान (क्षेत्रीय केंद्र, टुटीकंडी), शिमला, हिमाचल प्रदेश

अनाज व दलहन भारतीय आहार के प्रमुख घटक हैं। हरित क्रान्ति के बाद भारत अन्न उत्पादन क्षेत्र में स्वावलम्बी हो गया है। अन्न को भण्डारित करके आगामी जरूरतें पूरी की जा रही हैं। अनाज भण्डारण की सही तकनीक की जानकारी के अभाव में देश में लाखों टन अनाज की हानि हो जाती है। भारत में, अवैज्ञानिक भंडारण, कीड़ों, चूहों, सूक्ष्मजीवों आदि के कारण कुल खाद्यान्न का लगभग 10 प्रतिशत नुकसान पाया गया है। भंडारित उत्पादों में कीटों की लगभग 100 प्रजातियां आर्थिक नुकसान पहुंचाती हैं। भारत में अनाज भण्डारण से लगभग 14 मिलियन टन; सात हजार करोड़ रूपये का वार्षिक नुकसान पाया गया है जिसमें केवल कीटों द्वारा लगभग 1300 करोड़ नुकसान अनुमानित किया गया है। सर्वेक्षण के अनुसार भण्डारण में कीटों द्वारा 2.55 प्रतिशत, चूहों द्वारा 2.50 प्रतिशत एवं नमी से 0.68 प्रतिशत हानि होती है। अनाज का ढेले होना, पाउडर, टुकड़े यूरिक एसिड और मल पदार्थ, सुंडी, त्वचा, सड़न या बदबू, अनाज की थैली का तापमान परिवेश से अधिक कीटों की उपस्थिति का संकेत देती है। बीज पर सफेद धब्बे की उपस्थिति कीटों के अंडे का संकेत देती है। गोदामों में रखे गए बीजों व अनाज में कई प्रकार के कीट हानि पहुंचाते हैं जिसके कारण उनकी पौष्टिक शक्ति तथा उगने की क्षमता कम हो जाती है।

अनाज के पतंगे व दलहन भृंग (ढोरा) खेतों से भण्डारगृहों में आ जाते हैं। वे खेतों में पकते हुए दानों में अण्डे देते हैं जिन्हें भण्डारित करने पर वे भण्डारगृहों में प्रवेश कर जाते हैं। पुराने अनाज में लगे कीट उड़कर या चलकर नये अनाज को ग्रसित करते हैं। इसी प्रकार पुरानी बोरियों में नया अनाज भरने से उनमें भी कीट प्रकोप हो जाता है। भण्डारगृहों में खासकर दरारों व ऐसी जगहों पर जहां सफाई का अभाव रहता है वहां से भी कीट नए अनाज में प्रवेश कर दूषित करते हैं। अनाज को गोदामों तक ले जाने वाले वाहन की दरारों, कोनो एवं जोड़ों में मौजूद कीट नए अनाज तक पहुंच जाते हैं तथा नुकसान पहुंचाते हैं।

खेत–भंडारित अनाज में पाए जाने वाले कीटों में जो सीधे अनाज को खाते हैं, उन्हें प्राथमिक कीट कहा जाता है, और वे जो क्षतिग्रस्त या खराब हो चुके अनाज को खाते हैं, उन्हें द्वितीयक कीट कहा जाता है। भंडारित अनाज में पाए जाने वाले कीड़ों की पहचान यह निर्धारित करने के लिए महत्वपूर्ण है कि कब नियंत्रण की आवश्यकता है और कौन से नियंत्रण तरीके सबसे असरदार व किफायती होंगे।

भण्डारित अनाज के कीटों की पहचान व नुकसान का निवारण

1. सुरसरी (*साइटोफिलस ओराइजी*)

यह भण्डारित धान, गेहूँ, जौ, मक्का, चावल व ज्वार का प्रमुख कीट है। सूंडी तथा वयस्क दोनों ही नुकसान पहुंचाते हैं। वयस्क भृंग का सिर सूंडीनुमा होता है व मजबूत दांत होते हैं जिससे वे अनाज को खाते हैं। अण्डों से सूंडी निकलकर दानों में घुस जाती है और अन्दर ही अन्दर दानों को खाती है। नुकसान को अनाज के दानों में छिद्रों को देखकर पहचाना जाता है। इन छिद्रों से वयस्क कीड़ा दानों से बाहर निकलता है।

2. आटे का लाल भृंग (*ट्राइबोलियम कैस्टेनियम*)

यह कीट आटा, मैदा, सूजी व अन्य टूटे हुए भोज्य पदार्थो को खाता है। सूंडी व वयस्क दोनों ही नुकसान पहुंचाते हैं। आटे में जाला बन जाता है व अत्याधिक आक्रमण के कारण इससे बनाई गई रोटी में विशेष प्रकार की गंध आने लगती है।

3. अनाज का पतंगा (*साईटोट्रोगा सिरियेलेल्ला*)

यह गेहूँ, मक्का, धान, ज्वार, आदि को खाता है। इसकी सूंडी ही नुकसान पहुंचाती है। सूंडी दानों में घुसकर खाते हुए दानों को खोखला कर देती है। यह देखा गया है कि अनाज में नमी की अधिकता से ज्यादा नुकसान होता है। इस कीट द्वारा किए गए नुकसान को ऊपरी सतह पर उड़ने वाले वयस्क पतंगे, अनाज के मटमैलेपन तथा दानों में छिद्रों द्वारा पहचाना जाता है।

4. चावल का पतंगा (*कार्सिरा सिफेलोनिका*)

इस कीट की सूंडी अवस्था द्वारा ही नुकसान किया जाता है। सूंडी बीज, विशेषकर टूटे हुए बीजों, को नुकसान पहुंचाती है और साथ ही खाद्यान्न में जाला सा बन जाता है।

5. अनाज का भेदक (*राइजोपर्था डोमिनिका*)

यह गेहूँ, जौ, मक्का, चावल, ज्वार व धान का प्रमुख खाद्यान्न कीट है। सूंडी व वयस्क दोनों अवस्थाएं नुकसान

करती है। प्रायः यह कीट गर्म वातावरण पसंद करता है। अत्याधिक प्रकोप से दाने खोखले हो जाते हैं व दानों की उपरी सतह मात्र बची हुई दिखाई देती है। क्षतिग्रस्त अनाज का बारीक पाउडर नीचे जमा होता रहता है।

6) खपड़ा भृंग (*ट्रोगोडर्मा ग्रेनेरियम*)

यह भण्डारित गेहूँ, बाजरा, व मक्का का प्रमुख कीट है। केवल सूंडी अवस्था ही बीज के अंकुरित भाग पर आक्रमण करती है। यह अनाजों के ढेर में ऊपरी सतह पर ही आक्रमण करते है। क्षतिग्रस्त अनाज में सूंडियों की त्वचा अवशेष व वयस्क देखे जा सकते है। इसकी विशेषता है कि असामान्य अवस्था में सूंडी बिना भोजन के सालों तक जीवित रह सकती है।

7) बादाम का पतंगा (*काड्रा काटेला*)

कीट की हानिकारक अवस्था सूंडी होती है। यह कीट गेहूँ, जौ, चावल व बादाम को खाते हैं।

8) तम्बाकू का भृंग (*लैसियोडर्मा सेरिकोनी*)

यह मसाले, चाकलेट, कोको व तम्बाकू को खाते है। कीट अपने भोज्य पदार्थो को खाते हुए उसमें छोटी सुरंग सी बनाते हैं। यह गर्म वातावरण में अधिक नुकसान करते हैं।

9) ढोरा (*कैलोसोब्रुकस स्पेसिज*)

इस कीट की विभिन्न जातियां भण्डारित दलहनों की प्रमुख कीट हैं। यह फसल की परिपक्व अवस्था से लेकर भण्डारण अवस्था तक साबुत दानों को अधिक नुकसान करते हैं। सूंडी अवस्था नुकसान करती है व दानों के अन्दर ही खाती है और उन्हें खोखला कर देती है। सूंडी द्वारा दानों के ऊपरी सतह पर गोल छिद्र का ढक्कन बनाया जाता है जिससे वयस्क बाहर निकल आते हैं। साबुत दालों में गोल छेदों व सफेद अण्डों में इस कीट के नुकसान का पता चलता है। बरसात में अधिक नमी के कारण इस कीट का नुकसान अधिक होता है।

भण्डारित अनाज में कीट प्रबन्धन कैसे करें?

1. अनाज को साफ करना

अनाज को भण्डारण से पूर्व अच्छी तरह साफ कर लें व टूटे दाने निकाल दें। अनाज को धूप में या किसी भी विकसित ड्रायर का उपयोग करके अच्छी तरह सुखा लें जिससे अनाज में नमी कम हो। अनाज के प्रकार के आधार पर 10 से 14 प्रतिशत नमी तक अनाज को सूखने से नुकसान कम हो सकता है। एक साल तक भंडारित किये जाने वाले गेहूँ में नमी 9 प्रतिशत तक हो।

- 15 दिन के अंतराल पर अनाज का कीटों के संक्रमण के लिए निरीक्षण करें।

2. भण्डारण का उचित तरीका

भण्डारण के लिए उन्नतशील भण्डारण उपकरणों जैसे पूसा कोठी, पूसा कोठार, पूसा क्यूबिकिल एवं बीज भण्डारण हेतु उन्नतशील बांस की टोकरी का उपयोग करें। ध्यान रहे भण्डारण उपकरणों में दरारें या छिद्र नहीं होने चाहिए व उपलब्ध उपकरणों की मरम्मत करें।

- भण्डार गोदाम के आस–पास सभी अवांछित खरपतवार पौधों को हटाएं।
- दानों को नई बोरियों में रखें। यदि पुरानी बोरियां प्रयोग करनी हों तो उन्हें मैलाथियान 50 ई.सी. (1 भाग साईथियान / मैलाथियान 500 भाग पानी) में 10 मिनट भिगोकर फिर छाया में सुखाएं और उसके बाद दानों से भरें ।
- अनाज भण्डारण में प्रयोग होने वाली बोरियों / पात्रों को अच्छी तरह साफ कर धूप में सुखा लें ।
- गोदाम में लकड़ी की पट्टे / पोलीथीन शीट पहले बिछाएं, उसके ऊपर अनाज की भरी बोरियां रखें ।
- अनाज की बोरियों को गोदाम की दीवारों से दूर रखें।
- गोदाम में खुला / बिखरा हुआ अनाज न छोड़ें।
- ध्यान रहे कि अनाज में किसी प्रकार का रासायनिक कीटनाशक न मिलाएं।

3. कीट अवरोधक उपाय

- खाली गोदामों को अप्रैल–मई में मैलाथियान 50 ई0सी0 (1 भाग साईथियन / मैलाथियान 100 भाग पानी के घोल से फर्श, दीवारों व छतों पर छिड़काव या एल्यूमीनियम फासफाईड (सैलफास / फासटाक्सिन) की 150 ग्राम प्रति 100 घन मीटर में प्रयोग करें । इस दवा से फ्यूमीगेशन करने के लिए पात्र को हवा बंद किया जाना आवश्यक है। दवा की गोली को किसी

पुराने कपड़े के टुकड़े में बांधकर अनाज के अन्दर व बाहरी सतह पर रख दिया जाता है एवं 7 दिन तक हवा बंद रखा जाता है। गोदाम में रखे अनाज के प्रधूमन करने के लिए यदि पोलीथीन की चादर उपलब्ध हो तो उपयुक्त होगी। बोरियों पर दवा की गोलियां चारों तरफ समान रूप से रखकर पोलीथीन की चादर इस प्रकार डालें कि किनारा जमीन पर फैला रहे। जिसे मिटटी/मिटटी मिले गोबर से बंद कर हवा बंद कर देना चाहिए। बाद में गोदाम खोलने पर कपड़े में बची दवा की राख को निकाल कर फेंक देना चाहिए और सात दिन बाद गोदाम खोलकर हवा लगा देनी चाहिए।

- दालों में ढोरे की रोकथाम के लिए पंजीकृत कीटनाशक एल्यूमिनियम फासफाईड (फासटाक्सिन/सैलफास) की 3 ग्राम की 3 गोलियाँ प्रति मीट्रिक टन धूमन के लिए प्रयोग करें। गोदाम को कम से कम 7 दिन तक बंद रखें।
- टीएनएयू के कीट संग्रहण ट्रैप का उपयोग किया जा सकता है ।

भण्डारित अनाज में कीट प्रबन्धन के परम्परागत तरीके

- अनाज, दालों व बीजों के भण्डारण के परम्परागत तरीके निश्चित तौर से रसायनों के दुष्प्रभावों से रहित हैं। पौध आधारित रसायन और उत्पाद मानव स्वास्थ्य के लिए सुरक्षित और पर्यावरण के अनुकूल होते हैं। बीजों के भण्डारण के कुछ परम्परागत तरीके निम्न हैं

नीम की पत्ती

घरों में अनाज के कीट से बचाव के लिए नीम के पतों का उपयोग किया जा सकता है। बीजों के भण्डारण के लिए मिट्टी, बांस के बर्तनों को नीम की पत्ती या खली की लुगदी से लीप दें। बीजों के भण्डारण के लिए उन्हें बर्तनों में भरें व भण्डारण से पहले उसे अच्छी तरह सुखाएं। जिस बर्तन में अनाज रखें उस बर्तन की तली में नीम की सुखी पत्तियों की एक परत बिछाकर फिर बीज या अनाज डालें व बीच–बीच में इनकी एक और परत बिछाकर अनाज में सबसे ऊपर इन्हीं पत्तियों को बिछाकर तथा बर्तन का मुँह बंद कर मिट्टी या गोबर से लीप कर बंद कर दें।

लकड़ी के कोठार बक्सा

- पहाड़ों में लकड़ी की कोठार बक्सा में बीज को सबसे ज्यादा सुरक्षित माना जाता है। सबसे पहले कोठार को गोबर, लाल मिट्टी व गोमूत्र से लीपकर सुखाएँ व उपले जलाकर इसे कीटाणु रहित करें। फिर इसमें बीज भरकर अखरोट, नीम आदि पौधों की सुखी पत्तियों से ढककर बंद कर दें।
- परम्परागत तौर पर धुंआ बीज संरक्षण के लिए बहुत महत्वपूर्ण माना जाता रहा है। सामान्यतः गोबर के उपले का धुंआ किया जाता है। इसके अतिरिक्त नीम की सूखी पत्तियां भी जलाई जाती हैं ।
- अनाज रखने के लिए प्रयुक्त जूट के बोरों का शुद्धिकरण करने के लिए जुट के बोरों को 10% नीम अर्क के घोल में 15 मिनट तक डुबायें व बोरों को छाया में सुखाकर प्रयोग में लायें। यदि बोरे नए हों तो उन्हें आधे घंटे तक भिगोयें। यदि बोरा बारीकी से बुना गया हो तो पतले घोल में भिगोना चाहिए पर ध्यान रहे कि बोरों का कोना–कोना घोल में भीग जाए।

- दालों को सुरक्षित रखने के लिए नीम के तेल का प्रयोग किया जा सकता है। कीट गतिविधियों को रोकने के लिए नीम का तेल (2–5 मिली/किग्रा) प्रभावी पाया गया है। सरसों, तिल व अरंडी का तेल (0.5–1.0 प्रतिशत) सभी प्रकार के दालों के बीजों को सुरक्षित रखने के लिए प्रयोग किया जा सकता है। बीजों को तेल के साथ तब तक मिलाएं जब तक सभी दानें तेल से चमकते दिखें।
- हल्दी के पाउडर को सूखे अनाज में मिलाने से अनाज, तिलहन व दालें सुरक्षित रहती हैं।
- राख की पोटली बनाकर बीजों के ऊपर से रखें। जब भी डिब्बे को खोलें राख या कोयला बदल दें।
- अनाज या दाल के बीजों को अच्छी तरह सुखाने व नमी रहित करने से कीड़े नहीं लगते हैं। बीज को सुखाते समय इन्हें हाथ से हिलाते रहें ताकि बीज की दोनों सतहें ढंग से सुख जाएँ। बीज या अनाज को सीधा सीमेंट के फर्श पर न सुखाएं। किसी कपड़े, तिरपाल, चटाई इत्यादि में अथवा मिट्टी मिश्रित गोबर से लिपे फर्श पर सुखाएं। बीज या अनाज को अच्छी तरह सूखने पर इसे कुछ समय तक ठंडा होने दें। बीज व अनाज को भण्डारण के लिए बर्तन में रखने से पहले यह सुनिश्चित कर लें कि बीज गर्म न हो। रात भर रखने के बाद सुबह भण्डारण करना सर्वोत्तम होता है।
- चावल सुरक्षित रखने हेतु नमक, मिर्च व मेथी की पोटली बनाकर कोठार में चावलों के बीच अलग–अलग सतहों पर रखें।

सावधानियाँ

- जहाँ पर खपरा का प्रकोप हो वहाँ पर गोदाम में सल्फॉस / फासटाक्सिन को दुगुनी मात्रा में प्रयोग करें ।
- खाने वाले अनाज में कीटनाशक न मिलाएं।
- विषैली गैस देने वाली दवाईयों का प्रयोग केवल बंद गोदामों में करें। घरों में इनका प्रयोग बिल्कुल न करें ।
- एल्यूमीनियम फासफॉईड की गोलियों से प्रधूमन किसी प्रशिक्षित व्यक्ति की उपस्थिति में ही करें ।

बेहतर जेंडर एकीकरण के माध्यम से कटाई उपरांत नुकसान को कम करने की रणनीति

कुशाग्रा जोशी[1], श्याम नाथ[1] एवं निशा वर्मा[2]
[1]भाकृअनुप– विवेकानंद पर्वतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, अल्मोड़ा
[2]भाकृअनुप– भारतीय कृषि प्रणाली अनुसंधान संस्थान, मोदीपुरम

कटाई उपरांत नुकसान के स्तर को कम करने के लिए कई प्रौद्योगिकियां और तकनीक मौजूद हैं। यह अनुमान लगाया गया है कि स्केलिंग–अप द्वारा आशाजनक हस्तक्षेप से सब्जियों और फलों के नुकसान को क्रमशः 10.7% और 24.8% तक कम किया जा सकता है। चूंकि कटाई उपरांत नुकसान मूल्य श्रृंखला के लगभग हर स्तर पर होता है, ऐसे में नुकसान के स्तर में एक बड़ी कमी को प्राप्त करने के लिए मूल्य श्रृंखला के दौरान ऐसी प्रौद्योगिकियों को अपनाने की आवश्यकता होती है, जो प्रासंगिक हो। इन संभावित प्रभावशाली हस्तक्षेपों को अपनाने का निर्णय हालांकि, आमतौर पर व्यक्तिगत किसानों, उद्यमियों, या व्यापार मालिकों द्वारा एक आपूर्ति श्रृंखला के अंतर्गत किया जाता है। ऐसे में, इन सभी स्तर पर काम करने वाले व्यक्तियों की जरूरतों, वरीयताओं, बाधाओं तथा आपस में इनके संबंधों पर विचार करना महत्वपूर्ण है और जाहिर है, कि इनमें महिला एवं पुरुष दोनों ही सम्मिलित होंगे, जो आपस में विचार–विमर्श करते हैं तथा एक बड़ी सामाजिक संरचना के भाग हैं, जो जरूरी नहीं कि हमेशा जेंडर न्यूट्रल (तटस्थ) हों। ऐसे में, जेंडर मुद्दों का आंकलन और भी महत्वपूर्ण हो जाता है।

कटाई उपरांत प्रबंधन एवं जेंडर मुद्दे

फसल के बाद प्रबंधन एक समुदाय की खाद्य सुरक्षा सुनिश्चित करने में महत्वपूर्ण कदम है। फसल के बाद खराब प्रबंधन उपलब्ध भोजन की मात्रा और गुणवत्ता दोनों को कम करता है, तथा परिणामस्वरूप खाद्य सुरक्षा के सभी चार स्तंभों नामतः उपलब्धता, पहुंच, उपयोग और स्थिरता को प्रभावित करता है। भारत में महिला किसान फसल की मडाई, सुखाने, ओसाई, भंडारण, सफाई, प्रसंस्करण और विपणन जैसी कई कटाई उपरांत गतिविधियों के लिए जिम्मेदार होती हैं। घरेलू स्तर पर, घरेलू खपत के लिए अनाज के भंडारण और बीज के रख–रखाव में महिलाओं की विशेष भूमिका रहती है। पारंपरिक रूप से महिलायें मिट्टी के बर्तन, बांस की टोकरी, और अन्य भंडारण संरचनाओं में अनाज का भंडारण करती हैं जो कि प्रायः कीट, या नमी–रोधक नहीं हैं। अनुसंधान से यह पता चलता है कि फसल के बाद लगभग 50–20 प्रतिशत नुकसान भंडारण चरण में होते हैं, जिसके परिणामस्वरूप अनाज की मात्रा और अनाज की गुणवत्ता दोनों की ही हानि होती है। ये नुकसान खपत और प्रभाव बिक्री की कीमतों के लिए उपलब्ध भोजन को प्रभावित करते हैं।

एक अध्ययन में ज्ञात हुआ कि कटाई उपरांत गतिविधियों में महिलाओं का समय अधिक लगता है तथा वह अगले वर्ष के लिए ओसाई, सुखाने, बैगिंग, सफाई और बीज का भंडारण करती है। धूप में अनाज सुखाने के लिए महिलाएं जिम्मेदार हैं, जहाँ खेत या आँगन में अनाज सूरज और हवा के संपर्क में आता है। हालांकि, यह एक श्रम गहन कार्य है जिसमें मौसम पर ध्यान देने और अनाज के लगातार स्थानांतरण की आवश्यकता होती है ताकि यह सुनिश्चित किया जा सके कि अनाज को सुखाने की अभी और कितनी आवश्यकता है।

जबकि कई बेहतर कटाई उपरांत प्रबंधन प्रौद्योगिकियाँ मौजूद हैं, लघु किसानों को इन तकनीकियों को अपनाने के लिए बाधाओं का सामना करना पड़ता है। विशेष रूप से, महिला किसानों को प्रौद्योगिकी डिजाइन और संसाधन (आय, ऋण, भूमि) तक पहुंच कम होने के कारण अधिक बाधाओं का सामना करना पड़ता है। बेहतर प्रौद्योगिकियों के बारे में जानने और खरीदने के लिए जानकारी तक सीमित पहुंच एक और बाधा है जिसका सामना महिलाओं को करना पड़ता है।

जेंडर प्रभावों के कारण कटाई उपरांत फसल हानि की संभावना

कटाई–उपरांत हानि का स्तर प्रौद्योगिकी, बाजार, सूचना, ज्ञान और प्रशिक्षण, परिवहन, और बुनियादी ढांचा तक पहुंच से प्रभावित होता है। ये सभी कारक जेंडर से भी प्रभावित होते हैं, विशेषकर ग्रामीण क्षेत्रों में जहां आमतौर पर पुरूषों की तुलना में महिलाओं की संसाधनों, प्रौद्योगिकी और बुनियादी ढांचे तक पहुँच कम है। उदाहरण के लिए, प्रसारकर्ताओं के साथ महिला किसानों के संपर्क कम होते हैं, परिणामस्वरूप भंडारण, परिवहन तथा तकनीकी की जानकारी महिला किसानों तक कम पहुँच पाती है तथा कटाई उपरांत प्रबंधन में वो कौशल नहीं विकसित कर पाती। महिलाओं की आमतौर पर उच्च गुणवत्ता वाली भंडारण सुविधाओं और प्रौद्योगिकियों के लिए कम पहुँच है, जिसके परिणामस्वरूप अधिक नुकसान हो सकता है।

संसाधनों तक सीमित पहुँच महिलाओं को फसल के मौसम के दौरान जब कीमतें सबसे कम होती हैं, उनकी फसलें, बेचने के लिए दबाव डाल सकते हैं जो कि पुरूषों और महिलाओं के बीच आय अंतराल को और बढ़ा रही होती हैं।

जेंडर संबंध सामाजिक और आर्थिक संदर्भ के लिए केंद्रीय हैं तथा यह कृषि मूल्य श्रृंखलाओं को आकार देते हैं, जिसमें उपलब्ध नौकरियों के प्रकार पुरूषों और महिलाओं के लिए अलग–अलग हो जाते हैं। साथ ही, मजदूरी, समय के उपयोग, निर्णय लेने की क्षमता, और श्रम की बचत के लिए प्रौद्योगिकी का उपयोग, और फसल उत्पादन के बाद के चरण में भागीदारी स्तर एवं तकनीकी ज्ञान में अंतर फसल के बाद के नुकसान की जांच करते समय जेंडर पर विचार करने की प्रासंगिकता की पुष्टि करता है।

जेंडर का कटाई उपरांत प्रौद्योगिकियों को कृषक द्वारा अपनाने पर प्रभाव

क्योंकि कटाई उपरांत गतिविधियां अधिकतर उत्पादन स्तर पर कृषक महिलाओं द्वारा की जाती हैं, इसलिए इन गतिविधियों में प्रयुक्त होने वाली प्रौद्योगिकी जब तक महिलाओं की पहुँच तथा महिलाओं के अनुकूल नहीं हो, तब तक उनको किसानों द्वारा अपनाने का स्तर भी निम्न रहता है। कटाई उपरांत हानि को कम करने वाले हस्तक्षेप को सशक्त बनाया जा सकता है यदि वे महिलाओं के कार्यभार को कम करें और उनके कठिन परिश्रम को कम करने और समय की बचत कराएँ ताकि महिलायें वह समय कई अन्य गतिविधियों में व्यतीत कर सकें। वैकल्पिक रूप से, प्रौद्योगिकी हस्तक्षेप महिलाओं को उनकी पारंपरिक भूमिकाओं, उदाहरण के लिए, अनाज की मढ़ाई, ओसाई से विस्थापित कर सकता है या महिलाओं पर अतिरिक्त बोझ डाल सकता है। ऐसी प्रौद्योगिकी जो महिलाओं का कार्यभार और बढ़ाए या महिलाओं के कार्य पर भी पुरूषों का वर्चस्व कराए, ऐसी प्रौद्योगिकियाँ प्रायः कृषक महिलाओं द्वारा नहीं अपनाई जाती। अतः कटाई उपरांत प्रौद्योगिकियों और कटाई उपरांत हानि में कमी वाले हस्तक्षेप के डिजाइन में महिलाओं की जरूरतों और वरीयताओं पर सावधानीपूर्वक विचार करना महत्वपूर्ण है।

महिलाओं को बचत और ऋण संघों के माध्यम से ऋण तक पहुँच सुनिश्चित की जा रही है, ये आमतौर पर बड़े पूंजी निवेश के लिए अपर्याप्त हैं। यह लोन/क्रेडिट केवल महिला किसानों की सूक्ष्म घरेलू ज़रूरतों को पूरा करने के लिए पर्याप्त हैं, परन्तु एक प्रसंस्करण आधारित लघु उद्योग के लिए यह काफी कम है। यह लोन महिलाओं की कटाई उपरांत हानि को कम करने तथा यह लोन इन गतिविधियों पर व्यय होने वाले समय एवं शक्ति को बचाने वाली प्रोद्योगिकियों को खरीदने के लिए काफी कम है। बाकी सूक्ष्म क्रेडिट एजेंसियों द्वारा दिए जाने वाले ऋण के लिए जो औपचारिकताएं की जानी होती हैं, वह प्रायः महिलाओं के लिए कठिन प्रक्रिया हैं। प्रायः इस कारण भी इन प्रौद्योगिकियों को कृषकों एवं कृषक महिलाओं द्वारा अपनाये जाने की संभावनाएं कम हो जाती हैं। परिसंपत्तियों और वित्तपोषण तक महिलाओं की सीमित पहुंच भी उन्हें कटाई उपरांत प्रौद्योगिकियों को अपनाने में कम सक्षम बना सकती है।

कटाई उपरांत गतिविधियों में महिलाओं की भूमिका

मूल्य श्रृंखला में लैंगिक समानता में सुधार करने के लिए हालांकि महिला समूहों के साथ काम किया जा रहा है, महिलाओं को प्रशिक्षकों या विस्तार कार्यकर्ता के रूप में उपयोग किया जा रहा है ताकि महिला कृषकों तक तकनीकी एवं उन्नत

ज्ञान एवं कौशल का प्रसार हो सके। साथ ही ज़रुरत है पुरूष प्रधान समूहों के भीतर तथा मूल्य श्रृंखलाओं में महिलाओं के प्रतिनिधित्व और नेतृत्व को बढ़ाने की। मूल्य श्रृंखला के उन हिस्सों पर ध्यान केंद्रित करने की आवश्यकता है जहाँ महिलाएं सबसे अधिक सक्रिय होती हैं (उदाहरण के लिए, प्रसंस्करण, सुखाना, श्रेणीकरण करना, आदि)।

बेहतर सुखाने और भंडारण प्रौद्योगिकियों में महिलाओं के समय और श्रम को बचाने की क्षमता है, और ये छोटे किसानों की आय बढ़ाने में प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष भूमिका निभाती हैं। फसल के बाद की बेहतर प्रौद्योगिकियों लघु कृषक परिवारों की खाद्य सुरक्षा के सभी चार आयामों को बढ़ा सकती हैं–भौतिक उपलब्धता में वृद्धि, आर्थिक पहुंच में सुधार, सुरक्षित उपयोग सुनिश्चित करना और अनाज तक निरंतर पहुंच प्रदान करके स्थिरता में सुधार करना। हालांकि, बेहतर सुखाने और भंडारण प्रौद्योगिकियों को बढ़ावा देने वाले कार्यक्रमों पर विचार करने और इनमें निहित जेंडर सम्बंधी बाधाओं को संबोधित करने की जरूरत है ताकि यह सुनिश्चित किया जा सके कि महिला लघु किसानों को इस प्रक्रिया से लाभ हो।

निष्कर्ष

चूँकि मूल्य श्रृंखला के अधिकतर सभी चरणों में कटाई उपरांत नुकसान होते हैं, इन नुकसानों में कमी के लिए प्रौद्योगिकियों को विकसित तथा अंगीकृत करने की आवश्यकता है।उदाहरणतः भण्डारण, थोक विपणन, प्रसंस्करण, परिवहन, तथा खुदरा विपणन, इत्यादि में, जिससे महिलाओं का श्रम एवं समय इन सभी गतिविधियों में कम व्यय हो तथा उसका उपयोग वह अन्य कार्यों में जैसे नया कौशल सीखने इत्यादि में कर सकें। कटाई उपरांत नुकसान को कम करने वाली रणनीति विकसित करते समय जेंडर संवेदनशील विश्लेषण करने की आवश्यकता है जो सम्पूर्ण मूल्य श्रृंखला के चरणों में जहाँ कटाई उपरांत हानि सबसे अधिक होती है वहाँ पुरूष एवं महिला के मध्य उनकी आवश्यकताओं, क्षमताओं तथा वरीयताओं में अंतर पर विचार करने में सक्षम हों तथा किसी भी लिंग–आधारित बाधाओं की पहचान करते हों।

परम्परागत तरीकों द्वारा अनाज का किफायती एवं सुरक्षित भंडारण

प्रीतम कुमारी[1], पूनम जसरोटिया[2], सिंधु श्योराण[1] एवं भाल सिंह[2]
[1]चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्विद्यालय, हिसार
[2]भाकृअनुप– भारतीय गेहूँ एवं जौ अनुसंधान संस्थान, करनाल

अनाज का उचित भण्डारण एक बहुत बड़ी चुनौती है। हमारे देश में अनाज का उचित भण्डारण न होने से कुल पैदावार का लगभग 10–12 प्रतिशत नुकसान फसल की कटाई से लेकर इसके उपयोग तक हो जाता है, जो कि प्रतिवर्ष 2500 करोड़ रूपए तक अनुमानित है। किसान की मेहनत के साथ–साथ समयानुसार रासायनिक खाद, उन्नत बीज, कीट रोग एवं खरपतवारनाशक दवाईयों के प्रयोग से कृषि उत्पादन में वृद्धि हुई है। अनाज को बोने से लेकर घर लाने तक किसानों को अनेक प्राकृतिक आपदाओं का सामना करना पड़ता है। इन सब परेशानियों का सामना करने के पश्चात् तथा खर्चा करके उत्पन्न अनाज का सुरक्षित भण्डारण न किया जाये तो काफी हानि होती है। सुरसरी, अनाज का पतंगा, खपरा, अनाज का छिद्रक इत्यादि कीट अनाज को तथा ढोरा नामक कीट दलहन को नुकसान पहुँचाते हैं। इनके अलावा फफूंद जनित संक्रमण, चूहे व अत्यधिक नमी जैसे कारक भी अनाज की मात्रा व गुणवत्ता में भरी कमी लाते हैं। ये कीट दानों को खाकर खोखला कर न केवल अनाज की पौष्टिकता को प्रभावित करते हैं, बल्कि बीज के अकुंरण पर भी बुरा असर डालते हैं। इसके साथ–साथ प्रकोपित अनाज मनुष्य व पशुओं के उपयोग योग्य भी नहीं रहता। अनाज की खपत की भारी मांग और उसके महत्व को ध्यान में रखते हुए अनाज के उचित भण्डारण को नकारा नहीं जा सकता। सुरक्षित भंडारण के लिए आधुनिक तरीकों के साथ–साथ कई परम्परागत तरीके भी काफी किफायती एवं वातावरण अनुकूल हैं।

भंडारण के प्रमुख हानिकारक कीट

भंडार कीट मुख्यतः दो प्रकार के होते हैं, एक भृंग या बीटल समूह के, दूसरे पतंगा या फिडका समूह के। इन दोनों प्रकार के कीटों का वर्णन इस प्रकार है;

अनाज संक्रमण के मुख्य कारण

अनाज संक्रमण के प्रमुख कारणों से पहले ये जानना आवश्यक है कि ये कीट अनाज तक पहुंचते कैसे हैं? प्रायः ये कीट खेत–खलिहान के आस–पास बिखरे कूड़े–कचरे, अनाज ढ़ोने वाले वाहन व गोदामों की दरारों में छिपे रहते हैं। प्रौढ़ उड़कर व सुंडियां रेंगकर अनाज तक पहुँचते हैं। अनाज के संक्रमित होने के मुख्य कारण इस प्रकार हैं;

1. अनाज में नमी की मात्रा का अधिक होना।
2. पुरानी बोरियों को संक्रमण रहित न करना।
3. अनाज ढोने वाली गाड़ियों/बुग्गियों तथा रखने वाली जगह की सफाई न होना।

तालिका 1 : अनाज के भण्डारण के दौरान उसमें लगने वाले कीट एवं उनकी पहचान

कीट का नाम	पहचान	हानिकारक अवस्था	क्षति के प्रकार	क्षतिग्रस्त होने वाले उत्पाद
आटे का लाल भृंग	• प्रौढ़ कीट छोटा लाल भूरे रंग का लगभग 3 मि.मी. लंबा होता है। • सिर, वक्ष तथा उदर स्पष्ट होते हैं। भृंग बहुत जल्दी चलने और उड़ने में तेज होते हैं । • इसके एंटिनी कुछ झुके हुये तथा एंटिनी के ऊपर के तीन खंड मिलकर एक मोटा विकसित भाग बनाते हैं।	दोनों प्रौढ़ एवं सूंडी	• ये कीट टूटे या क्षतिग्रस्त बीज व अनाज को हानि पहुंचाते हैं। • यह बीज के भ्रूण एवं अग्र भाग को पहले क्षति पहुंचाता है। • ये समान्यतः 4–5 सप्ताह में जीवन–चक्र पूरा कर लेते हैं।	अनाज, संसाधित अनाज, आटा, मैदा, सूजी
खपरा बीटल	• प्रौढ़ कीट सलेटी भूरे रंग का होता है जिसकी लंबाई 2.5 मि.मी. होती है। • इसका शरीर अंडाकार, सिर छोटा तथा सिकुड़ने वाला होता है । • सूंडी बारीक रोयें से भरपूर होती हैं, जिनको भंडारण में खुली आंखों से देखा जा सकता है।	केवल सूंडी	• इस कीट की कोई भी अवस्था दानों के भीतर नहीं पाई जाती है। • सूंडी का प्रकोप मुख्यतः अनाज के भरूण पर होता है। • मादा अंडे अनाज की सतहों एवं दीवार की दरारों में देते हैं। • औसतन 35 डिग्री सेल्सियस पर अपना जीवन चक्र 50 दिनों में पूरा कर लेते हैं तथा प्रतिकूल परिस्थितियों में भी यह कीट जीवित रहता है।	गेहूँ, मक्का, ज्वार, चावल, दालें, तिलहन 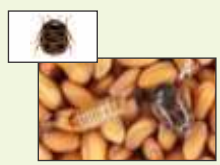

सूंड वाली सुरसुरी	• प्रौढ़ गहरे भूरे, काले रंग (2–4 मि. मी. लंबे), सिर आगे की ओर सूंड (थूथन) के रूप में होता है एवं पंख के ऊपर चार छोटे हल्के धब्बेनुमा रचना होती है।	दोनों प्रौढ़ एवं सूंडी	• मादा कीट बीज में एक छिद्र कर उसमें एक अंडा देकर उपर से चिपचिपे पदार्थ द्वारा ढक देती है। • सूंडी समान्यतः अनाज के दाने के भीतर खाती और विकसित होती है। • वर्ष में 5–7 जीवन–चक्र पूरा करते हैं।	मक्का, जौ, गेहूँ, धान, ज्वार, चावल
अनाज का छोटा बेधक या घुन	• प्रौढ़ गहरे भूरे, छोटे (3मि.मी. लंबाई तक) होते है और सिर गर्दन के अंदर झुका होता है। • प्रौढ़ उडने में सक्षम एवं मजबूत होते हैं।	दोनों प्रौढ़ एवं सूंडी	• यह भंडारगृह का नाशीकीट है। • मादा 200–400 अंडे अनाज की सतह पर देती है। • नवजात सूंडी (सफेद भूरे सिर की) बाहर से शुरूकर के अनाज मे छिद्र बना देती है और दानों को भीतर से खाकर खोखला कर देती है तथा अनाज को आटे में परिवर्तित कर देती है।	गेहूँ, जौ, मक्का, धान, अन्य खाद्यान्न, आटा एवं उनके उत्पाद
दालों का भृंग	• शरीर भूरा तथा आगे की ओर नुकीला तथा पीछे से चौड़ा होता है। • प्रौढ़ कीट लगभग 3.2 मि.मी. लंबा होता है। • मादा की एंटिनी शृंगाकार तथा नर की कंघाकर होती है।	केवल सूंडी	• सूंडी अनाज के दानों को खा जाती हैं और उसमे छिद्र कर देती हैं। • प्रौढ़ हानिकारक नहीं होता है और वह भंडारित अनाज को बिल्कुल नहीं खाता है। • प्रौढ़ का जीवनकाल कम अवधि का होता है।	सभी दालें, मूँग, लोबिया, मटर, चना इत्यादि
अनाज का पतंगा	• प्रौढ़ 5–7 मि.मी. लंबे सुनहरे भूरे रंग के उडने वाले पतंगे होते हैं, जो अनाज की सतहों पर ढेर में लगते हैं। • अगले पंख हल्के पीले, पिछले भूरे तथा आखिरी सिरे कुछ नुकीले एवं लंबे बालयुक्त होते हैं।	केवल सूंडी	• सूंडी दाने के भीतर छिद्र करके खाती है और विकसित होकर प्रौढ़ के रूप में निकलती है। • यह कीट खेत एवं भण्डारगृह दोनों जगह आक्रमण करता है। • बीज भण्डार में यह कीट उपरी सतह तक सीमित रहता है एवं ज्यादातर केवल एक फुट की गहराई तक ही पाया जाता है।	धान, ज्वार, मक्का, गेहूँ, जौ
चावल का पतंगा	• प्रौढ़ का पृष्ठ पंख भूरा और अग्र पंख में पतली सी लाईन भूरी गाढ़ी एवं उनके सिरों से नीचे की ओर होती है। • इस कीट का लारवा 12 से 15 मि. मी. लम्बा, भूरा–सफेद एवं सिर हल्के लाल–भूरे रंग का होता है। • इस कीट का जीवन–चक्र 33 से 52 दिनों में पूर्ण होता है एवं एक वर्ष में 5 से 6 चक्र पूर्ण होते हैं।	केवल सूंडी	• अनाज की सतह पर जालीनुमा रचना सूंडी के द्वारा काफी मात्रा में निर्मित किया जाता है जो कि स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। • यह बाह्य भक्षी होता है एवं अनाज व जाल (वेब) से ढेले बनाकर उसको अन्दर खाता है।	गेहूँ, जौ, ज्वार, चावल, दालें, तिलहन
तंबाकू या सिगरेट का भृंग	• छोटे–मोटे पैरों को सिकोड़े हुए 1.8 इंच लंबे गाढे भूरे रंग के कीट जिनके सिर, धड़ से एकदम चिपके हुए जो कि ऊपर से ठीक से दिखाई भी नहीं पड़ता।	दोनों प्रौढ़ एवं सूंडी	• दोनों प्रौढ़ एवं सूंडी प्रसंस्कृत तम्बाकू पर पिन के सिरे नुमा आकार के छिद्र बना देते हैं।	भंडारित तंबाकू, हल्दी, मिर्च और अदरक

4. अनाज को खुले व नमीयुक्त स्थान पर रखना।

5. भण्डारण के बाद उचित देखभाल न करना।

कीटों के कारण अनाज की मात्रा में आई गिरावट को पूर्ण रूप से रोका तो नहीं जा सकता, परन्तु निम्नलिखित उपायों को अपनाकर इसे कुछ स्तर तक कम किया जा सकता है।

सुरक्षित भण्डारण के उत्तम तरीके

परम्परागत तरीकों द्वारा अनाज का सुरक्षित भण्डारण

आधुनिक तौर–तरीकों की तुलना में परम्परागत तौर–तरीके ज्यादा किफायती, सुरक्षित व आसानी से उपलब्ध है। प्रकृति ने मानव को अनेक प्रकार की औषधि व निरोगी गुणवाली जड़ी–बूटियों से नवाजा है, जैसे–नीम, हल्दी, तुलसी आदि। भंडारित अनाज में कीट–प्रबंधन में परम्परागत तरीकों का मुख्य योगदान निम्नलिखित है;

1. धूप में सूखाकर

यह भण्डारण की सबसे टिकाऊ एवं आसान विधि है। इस विधि में कटाई के उपरांत अनाज को धूप में सूखाकर लम्बे समय के लिए सुरक्षित भंडारित कर देते हैं। अक्सर यह प्रक्रिया अप्रैल, मई व जून माह में करने से किसी भी प्रकार के कीटों में प्रजनन क्रिया रुक जाती है।

2. हल्दी का इस्तेमाल

इस विधि में सबसे पहले अनाज को हल्दी के चूर्ण के साथ हल्के हाथ से रगड़ कर आधे घंटे के लिए धूप में सूखा देते हैं। इसकी तेज गंध के कारण कीट अनाज से दूर भाग जाते हैं। कच्ची हल्दी का उपयोग भी कीटों से सुरक्षा के लिए किया जा सकता है। साधारणतः 1 किलो अनाज में 40 ग्राम हल्दी का चूर्ण मिलाने से कीटों पर लम्बे समय तक काबू पाया जा सकता है।

3. नीम की पत्तियों का प्रयोग

नीम की पत्तियों का इस्तेमाल भंडारित अनाज के कीड़ों पर काबू पाने का बहुत ही सस्ता, सुरक्षित, किफायती व प्रभावी उपाय है। इस विधि में पेड़ से ताजी पत्तियों को इकट्ठा करके, छाया में सुखाया जाता है। उसके बाद सीधे अनाज के साथ मिलाकर अनाज की पेटी को बंद कर दिया जाता है। प्रायः ग्रामीण क्षेत्रों में अनाज के सुरक्षित भण्डारण के लिए यह प्रणाली सबसे अधिक उपयोग में लाई जाती है।

4. चूने का इस्तेमाल कीड़ो की रोकथाम के रूप में

चूना नाशकजीवों के नियंत्रण में काफी पुराने समय से उपयोग में लाया जा रहा है। इस विधि में चूने का चूर्ण बनाकर, उसे चावलों के साथ मिला दिया जाता है और फिर जूट से बने थैले में डालकर सूखे स्थान पर रख दिया जाता है। साधारणतः 100 ग्राम चूने का प्रयोग 1 किलोग्राम अनाज को उपचारित करने में किया जाता है। चूने की महक एवं नाशकजीव – रोधीगुण के कारण कीड़े दूर भाग जाते हैं। चूने की तेज गंध से कीटों की प्रजनन क्षमता भी कम हो जाती है।

5. माचिस की तीलियों का प्रयोग

अनाज के सुरक्षित भण्डारण में यह विधि ग्रामीण महिलाओं द्वारा पुराने समय से इस्तेमाल में लाई जा रही है। इस विधि में सामान्यतः माचिस की तीलियाँ अनाज के साथ मिला दी जाती है। साधारणतः 6–8 माचिस की डिब्बियां, 10 कुंतल अनाज को उपचारित करने के लिए पर्याप्त है। उपचार के बाद अनाज को अच्छे से पेटी में बंद कर दिया जाता है। माचिस की तीलियों में फॉस्फोरस होता है, जो कीटों के संक्रमण से बचाने में सहायक है।

6. नीम के घोल द्वारा उपचारित जूट के थैलों का इस्तेमाल

इस विधि में जूट से बने थैलों को नीम के घोल से उपचारित करके, अनाज के सुरक्षित भंडारण के लिए उपयोग किया जाता है। नाशकजीवों के नियंत्रण में यह विधि बहुत ही उपयोगी है।

7. राख का प्रयोग कर उपचार करना

अनुसंधानों द्वारा यह पाया गया है कि अनाज व दालों में 10– 20 प्रतिशत तक राख मिलाने से खराब नहीं होते पर आवश्यक है कि राख को छान व सुखाकर ही डाला जाए। राख की रगड़ खाकर कीड़े मर जाते हैं और दानों के बीच जगह जहाँ हवा हो सकती है, वहाँ राख आ जाने से हवा नहीं रहती। इस प्रकार राख मिलाना लाभप्रद होता है।

8. एल्युमिनियम फॉस्फाइड से धूमन

एल्युमिनियम फॉस्फाइड वर्तमान समय में भंडारित अनाज में व्यापक रूप से उपयोग होने वाली गैसीय कीटनाशक है। एल्युमिनियम फॉस्फाइड की 1 गोली (3 ग्राम) को एक टन (10 कुंतल) अनाज में या 7–10 गोलियां प्रति 1000 घनफुट की दर से कोठियों या गोदामों में प्रयोग किया जाता है। उपचार उपरांत 7 दिन तक हवा रहित सुनिश्चित किया जाता है। आजकल गोलियों के स्थान पर एल्युमिनियम फॉस्फाइड पाउडर के रूप में भी विभिन्न मात्रा में उपलब्ध है। इसका उपयोग भंडारित अनाज में लगे कीड़ों को नष्ट करने में काफी सहायक पाया गया है।

सुरक्षित अन्न भंडारण के लाभ

1. सुरक्षित अन्न भंडारण से किसान को पैदावार का पूरा लाभ मिलता है।

2. सुरक्षित अन्न भंडारण से परिवार को स्वच्छ व

गुणवत्तायुक्त अनाज उपलब्ध होता है, जो स्वास्थ्य के लिए लाभकारी है।

3. उचित प्रकार से अन्न भण्डारण करने से किसान अपना बीज स्वयं तैयार कर सकता है।

4. मंडी में स्वस्थ उत्पाद का भाव भी अच्छा मिल जाता है।

निष्कर्ष

हमारे देश की तेजी से बढ़ती हुई जनसंख्या तथा किसान वर्ग की खुशहाली के लिए अधिक से अधिक अनाज उत्पादन के साथ–साथ सुरक्षित भण्डारण भी बहुत महत्वपूर्ण है। अतः यह आवशयक है कि सुरक्षित अन्न भण्डारण का तरीका अपनाया जाए। उपरोक्त वर्णन किये गए तरीके इंगित करते है कि अनाज के सुरक्षित भण्डारण में घरेलु स्तर पर ग्रामीण क्षेत्रों में अपनाये जाने वाली विधियां काफी प्रभावी, कुशल एवं पर्यावरण अनुकूल हैं।

जौ में प्रसंस्करण की सम्भावनाएं एवं माल्ट जौ प्रसंस्करण द्वारा आय सृजन

संतोष कुमार बिश्नोई[1], मधु पटियाल[2], दिनेश कुमार[1], एवं रमेश पाल सिंह वर्मा[1]
[1]भारतीय गेहूँ एंव जौ अनुसंधान संस्थान करनाल
[2]भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, क्षेत्रीय केंद्र, टुटीकंडी, शिमला

जौ एक महत्वपूर्ण प्राचीन अनाज है जिसका मुख्य रूप से पशु आहार, चारा, सत्तू, पेय पदार्थ, भोजन आदि में उपयोग किया जाता है। जौ प्रचुरता और समृद्धि का प्रतीक है इसलिए हवन में इसका उपयोग किया जाता है व नवरात्रों में भी जौ लगाए जाते हैं। कहा जाता है कि धरती पर सबसे पहले उगने वाला अनाज जौ ही था तथा वर्तमान में उत्पादन के आधार पर यह विश्व की चौथी सबसे बड़ी अनाज की फसल है। जौ की वैश्विक अनाज उत्पादन में 7 प्रतिशत हिस्सेदारी है। भारत में जौ बड़े पैमाने पर राजस्थान, उत्तरप्रदेश, और मध्य प्रदेश राज्यों में क्रमशः 57 प्रतिशत, 30 प्रतिशत और 4 प्रतिशत के उत्पादन योगदान के साथ उगाया जाता है। क्षेत्र एवं उत्पादन की दृष्टि से राजस्थान सबसे बड़ा जौ उत्पादक राज्य है। भारत की स्वतंत्रता के 75 वर्ष पूर्ण होने के उपलक्ष्य में भारत सरकार द्वारा मनाए जा रहे 'आजादी का अमृत महोत्सव' की एक कड़ी के रूप में खाद्य प्रसंस्करण उद्योग को काफी महत्व दिया गया है और इस दौरान कृषि एंव किसान कल्याण मंत्रालय द्वारा 6 सितम्बर से 12 सितम्बर, 2021 तक खाद्य प्रसंस्करण सप्ताह भी मनाया गया। खाद्य प्रसंस्करण का तात्पर्य ऐसी गतिविधियों से है जिसमें प्राथमिक कृषि उत्पादों का प्रसंस्करण कर उनका मूल्यवर्धन किया जाता है। उदाहरण के लिए डेयरी उत्पाद, दूध, फल तथा सब्ज़ियों का प्रसंस्करण, पैकेट बंद भोजन तथा पेय पदार्थ खाद्य प्रसंस्करण उद्योग के अंतर्गत आते हैं। प्रसंस्करण सम्भावना की दृष्टि से जौ एक बहुत ही क्षमतावान फसल है जिसके अनेक स्वास्थ्य लाभ भी आयुर्वेद से लेकर आधुनिक अनुसन्धान तक में बताये गए हैं।

जौ के स्वास्थ्य लाभ

जौ के हरे पौधों से बने पाउडर का उपयोग न केवल एक सामान्य पेय के रूप में किया जाता है, बल्कि इसका उपयोग पुरानी बीमारियों, विशेष रूप से मधुमेह, संचार विकारों, कोलेस्ट्रॉल को कम करने, मोटापा कम करने, कैंसररोधी, गठिया सूजन कम करना और एंटीऑक्सीडेंट के रूप में भी किया जाता है। इसके आलावा जौ के स्वास्थवर्धक गुण निम्नलिखित हैं।

- जौ एक पूरक आहार है जो कई लाभकारी पोषक तत्वों से भरपूर होता है। रेशे की मात्रा अधिक होने के कारण जौ की रोटी आदि को खाने से भूख कम लगती है जिससे वजन कम करने में मदद मिलती है।

- जौ में मौजूद अघुलनशील और घुलनशील फाइबर सामग्री पाचन में सुधार करती है।
- इसका सेवन पित्ताशय की पथरी को रोक सकता है और बीटा–ग्लूकेन्स, कोलेस्ट्रॉल कम करने में मदद करतें हैं।
- जौ का उपयोग रक्त शर्करा, रक्तचाप, हृदय रोग के जोखिम और कोलेस्ट्रॉल को कम करने के लिए किया जाता है।
- शारीरिक क्षमता बढ़ाने एंव त्वरित उर्जा के लिए जौ का उपयोग खिलाड़ियों, रेस के अश्वों तथा प्राचीन काल में रोमन योद्धाओं आदि के द्वारा भी किया जाता है।

जौ में प्रसंस्करण की संभावनाएं

जौ को अक्सर ब्लॉक्ड जौ, मोती जौ, जौ के दाने, जौ के फ्लेक और जौ के आटे आदि को मानव उपभोग के लिए पीसा और प्रसंस्करण किया जाता है। जौ पिसाई (मिलिंग) में संचालन का क्रम इस प्रकार होता है; प्रारंभिक सफाई, कंडीशनिंग, नीला एलेरोन जौ को सफेद करना (ब्लीचिंग), ब्लॉकिंग या शेलिंग, एस्पिरेशन, साइज़ ग्रेडिंग द्वारा साइज़िंग, ग्रेटकटिंग, ब्लॉक्ड जौ या बड जौ ग्रेट्स की ग्रेडिंग, ग्रेडिंग और छानना और पॉलिश करना। इस प्रक्रिया द्वारा उत्पन्न कुछ व्यावसायिक रूप से उपलब्ध जौ प्रसंस्करण उत्पादों का वर्णन नीचे किया गया है।

1. मटके और मोती वाले जौ

यह जौ पत्थर की चक्की में धीरे–धीरे छिलका, चोकर और जर्म को हटाकर तैयार किए जाते हैं। मोती वाले जौ को बनाने का यह पहला चरण है, जिसमें दानों का वजन 7–14 प्रतिशत घट सकता है। इस प्रक्रिया के परिणामस्वरूप बीज कोट (टेस्टा और पेरिकार्प), एलेरोन, सबऐलरोन परत और जर्म हट जाता है और कार्बोहाइड्रेट और प्रोटीन से भरपूर केंद्रीय एंडोस्पर्म रह जाता है। सूप और ड्रेसिंग में मटके और मोतीवाले जौ का उपयोग किया जाता है।

2. जौ का आटा

यह उत्पाद मोती या अवरुद्ध जौ की रोलर–मिलिंग द्वारा बनाया जाता है। जौ का आटा शिशु आहार और नाश्ते के अनाज में प्रयोग किया जा सकता है या बेकिंग में गेहूँ के आटे के साथ मिलाया जा सकता है।

3. जौ के फ्लेक

जौ के फ्लेक मोती या अवरुद्ध जौ के दाने को भिगोकर, भाप में पकाकर, परत और गर्म हवा में सूखाकर बनाये जाते हैं। जौ के फ्लेक नाश्ते में दलिया और सूप में डाले जाते हैं।

4. जौ का चोकर (छिलके को छोड़कर)

इस उत्पाद में टेस्टा और पेरिकार्प, जर्म, ट्राइसेलुलर एल्यूरोन और सबलेउरोन परतें होती हैं। मिलिंग प्रक्रिया के दौरान जौ का चोकर उप–उत्पाद के रूप में प्राप्त किया जाता है। अपनी पौष्टिकता के कारण जौ का चोकर मुर्गी और अन्य पशुओं के लिए चारे के रूप में बहुत उपयोगी है।

5. माल्ट

जौ आधारित माल्ट की वैश्विक मांग गेहूँ राई, जई और मक्की जैसे अन्य अनाजों की तुलना में अधिक है, क्योंकि न केवल इसकी उपलब्धता सुगम है बल्कि बियर बनाने में जौ माल्ट अपरिहार्य है।

6. माल्ट का अर्क

माल्ट का अर्क एक मीठा, गुड़ जैसा पदार्थ है जिसका उपयोग पूरक आहार के रूप में किया जाता है। यह 20वीं शताब्दी में ब्रिटिश शहरी मजदूर वर्ग के बच्चों के लिए पोषण बढ़ाने के रूप में लोकप्रिय था, जिनके आहार में अक्सर विटामिन और खनिजों की कमी होती थी। उस समय बच्चों को उसी कारण से कॉड लिवर तेल दिया गया था, लेकिन यह इतना स्वादहीन साबित हुआ कि इसे "माल्ट और कॉड–लिवर ऑयल" बनाने के लिए माल्ट के अर्क के साथ मिलाया गया।

7. जौ घास

जौ घास एक हरी घास है जिसे सर्दियों से कई संस्कृतियों में मुख्य पूरक भोजन के रूप में इस्तेमाल किया है। अनुसंधान इंगित करता है कि 7,000 ईसा पूर्व से मनुष्यों द्वारा जौ घास की खेती की गई है, और हम जानते हैं कि रोमन ग्लैडीएटर योद्धा ताकत और सहनशक्ति के लिए जौ का सेवन करते थे। हरी जौ के पत्तों में प्राकृतिक रूप से पाए जाने वाले विटामिन और खनिजों की प्रचुरता होती है।

8. जौ का रस

जौ के रस में दूध की तुलना में 4 गुना अधिक कैल्शियम, पालक से 22 गुना आयरन (लौह तत्व) और माँस के बराबर प्रोटीन होता है । साथ ही जौ के रस में विभिन्न विटामिन, खनिज, अमीनो एसिड और एंजाइम होते हैं इसलिए इसे "सुपरफूड" की श्रेणी में रखा गया है ।

9. जौ का दूध

शराब बनाने की प्रक्रिया के बाद बचे हुए जौ को दूध में विकसित किया जा सकता है। यह स्वस्थ, पौधे आधारित वैकल्पिक उत्पाद है जिससे भोजन की बर्बादी और भोजन के लिए जानवरों पर निर्भरता कम की जा सकती है और साथ ही साथ ग्रीन हाउस गैस उत्सर्जन से भी निपटा जा सकता है। वर्तमान में दूध के अनेकों स्वाद हैं जैसे कि–मूल (बिना मीठा), चॉकलेट, वेनिला और शेफ (खाना पकाने, बेकिंग और फ्राईंग के लिए उपयोग आदि)।

माल्ट क्या है–परिचय

माल्टेड जौ, या 'माल्ट' जैसा कि आमतौर पर जाना जाता है, स्टार्च, एंजाइम, प्रोटीन, विटामिन और खनिजों के साथ–साथ कई अन्य छोटे घटकों का एक विशिष्ट मिश्रण है जो शराब (बियर) बनाने हेतु मुख्य एवं आधारभूत कच्चा माल हैं। माल्ट में 60–65 प्रतिशत गैर–विकृत स्टार्च और सभी प्रमुख एंजाइम होते हैं। जो ब्रूइंग और डिस्टिलिंग प्रक्रिया के दौरान स्टार्च के क्षरण के लिए महत्वपूर्ण होते हैं। ये एंजाइम खमीर वृद्धि के लिए प्रमुख पोषक तत्वों के पूरक होते हैं। इनमें अमीनो एसिड, विटामिन और खनिज भी शामिल होते हैं।

जौ के दाने और माल्ट की रासायनिक संरचना

जौ के दाने में वजन के हिसाब से कार्बोहाइड्रेट लगभग 80 प्रतिशत होता है। इसमें स्टार्च (65 प्रतिशत) सबसे प्रचुर मात्रा में होता है और पॉलीसैकेराइड भी अनाज के वजन के 10 प्रतिशत से अधिक का प्रतिनिधित्व करते हैं। जौ के दाने और माल्ट की रासायनिक संरचना निम्न तालिका में दी गई है।

जौ माल्ट उत्पादनः प्रसंस्करण की कुंजी

माल्ट शब्द की उत्पत्ति अंग्रेजी के पुराने शब्द "मेल्टन" से हुई है जिसका अर्थ होता है पिघलना। एक अन्य कारण माल्ट में स्टार्च के विघटन के उपरांत मुख्य शकरी माल्टोस होती है और इसी कारण इसे माल्ट नाम दिया गया। माल्ट प्रक्रिया में अनाज को पानी से नरम किया जाता है और फिर इसे अंकुरित और किल्निंग विधि द्वारा गर्म हवा से सूखाकर और अधिक बढ़त होने से रोक दिया जाता है। इसे मुख्य रूप से जौ से बनाया जाता है हालांकि, माल्ट तैयार करने के लिए कुछ अन्य अनाजों जैसे गेहूँ राई, ज्वार, बाजरा, ट्रिटिकल या जई का भी उपयोग किया जा सकता है। किन्तु इन सब में से जौ का सबसे महत्वपूर्ण स्थान है क्योंकि इसमें उच्च स्टार्च–से–प्रोटीन अनुपात और चिपकने वाली भूसी होती है जो शराब बनाने और इसके प्रसंस्करण में बहुत आवश्यक भूमिका निभाती है तथा माल्ट से जुड़े विशिष्ट स्वाद भी उत्पन्न करती है।

तालिका 1: जौ और माल्ट की रासायनिक संरचना

घटक	अनुपात (शुष्क भार, प्रतिशत)	
	जौ	माल्ट
स्टार्च	63–65	58–60
सुक्रोज	1–2	3–5
अन्य शक्कर	1	2
पानी में घुलनशील पॉलीसेकेराइड	1–1.5	2–4
क्षार घुलनशील पॉलीसेकेराइड	8–10	6–8
सेलूलोज़	4–5	5
लिपिड	2–3	2–3
प्रोटीन	10–12	8–11
एल्बुमिन और ग्लोब्युलिन	3.5	2
होर्डिन्स	3–4	2
ग्लूटेलिन	3–4	3–4
न्यूक्लिक एसिड	0.2–0.3	0.2–0.3
खनिज	2	2.2
अन्य	5–6	6–7

माल्टिंग प्रक्रिया का इतिहास

माल्टिंग प्रक्रिया का इतिहास 4000 ईसा पूर्व का माना गया हैं जब मिस्रवासी बीयर बनाते थे परन्तु "काहिरा संग्रहालय" में कलाकृतियों से पता चलता है कि माल्टिंग प्रक्रिया तीसरी सहस्राब्दी ईसा पूर्व तक एक लगभग सम्पूर्ण रूप से विकसित तकनीक के रूप में विकसित हो चुकी थी। मूल रूप से छोटे खेतों में जौ की बोरियों को बहते पानी में या जल–कुंडों में डुबोकर छोटे पैमाने पर माल्टिंग की जाती थी, फिर इन बोरियों में अंकुरण होने पर स्टोव पर सुखाया जाता था। प्राचीन समय में माल्ट बनाने और इसके विक्रय को नियंत्रित भी किया जाता था, जैसे कि 1290 में नूर्नबर्ग में केवल जौ को माल्ट बनाने के लिए प्रयोग किया जाता था, जबकि ऑग्सबर्ग में 1433 और 1550 के बीच केवल माल्टेड ओट्स से बीयर बनाई जाती थी। इसके अतिरिक्त इंग्लैंड में 1880 तक माल्ट बनाने के लिए कई वर्षों तक कर देना पड़ता था ।

बीयर को कई प्रकार के अनाज से बनाया जा सकता है, लेकिन 17 वीं शताब्दी तक यूरोप में जौ माल्ट से बियर बनाई जाती रही थी। 17वीं शताब्दी में फ्लोर माल्टिंग की विधि का उपयोग बड़ी मात्रा में माल्ट बनाने के लिए किया जाता रहा और यह प्रक्रिया माल्टिंग बनाने का एकमात्र तरीका था। यह विधि बहुत श्रमसाध्य और समय लेने वाली थी। 19वीं शताब्दी तक बड़े ब्रुअरीज के विकास ने माल्टिंग के औद्योगीकरण और उत्पादन इकाइयों के आकार में वृद्धि का नेतृत्व किया और 1800 के दशक के अंत में व्यावसायिक सफलता मिली। बेल्जियम के दो माल्टिंग इंजीनियर; गैलैंड और सलादीन को आधुनिक माल्टिंग उपकरण का जनक माना जाता है। गैलैंड ने 1873 में पहला वातित आयताकार बॉक्स पेश किया और सलादीन ने 1880 के दशक में टर्निंग मशीन पेश की। व्यापार के विस्तार और नई दुनिया की

खोज के साथ, जौ माल्ट से बियर बनाने की तकनीक विश्व भर में फैल गई।

माल्ट के लिए जौ की किस्में

माल्ट के लिए उगाई जाने वाली अधिकांश जौ की किस्में भुसीदार होती है। भूसी रहित जौ माल्टिंग के लिए उपयुक्त नहीं हैं, लेकिन इनका उपयोग मानव खाद्य पदार्थों के लिए किया जाता है क्योंकि उनकी पाचन क्षमता छिलके वाले प्रकार की तुलना में अधिक होती है। जौ की किस्मों का विकास मुख्य रूप से घरेलू आवश्यकताओं से प्रेरित होता है जिसमें छह–पंक्ति और दो–पंक्ति दोनों माल्टिंग किस्मों पर ध्यान दिया जाता है। सामान्य तौर पर, 6–पंक्ति माल्टेड जौ में 2–पंक्ति माल्टेड जौ की तुलना में अधिक प्रोटीन और एंजाइम होतें है और इसमें कार्बोहाइड्रेट कम होता है। 2–पंक्ति और 6–पंक्ति माल्टेड जौ के बीच स्वाद में भी अंतर है और यह माना गया है कि 2.पंक्ति माल्ट एक फुलर माल्टियर स्वाद पैदा करता है और छह पंक्ति तैयार बियर में एक दानेदार स्वाद पैदा करती है। जौ की किस्मों का विकास के लिए दो आवश्यकताएं सर्वोपरि हैं : कार्यक्रम की

नींव के रूप में सर्वोत्तम माल्टिंग गुणवत्ता वाले जर्मप्लाज्म को खोजना, और माल्टिंग गुणवत्ता का आकलन करने के लिए उपकरण विकसित करना। जौ की एक बेहतर नई किस्म विकसित करने में कम से कम 8–10 साल लगते हैं। नई किस्म का विकास किसान, उद्योग और प्रजनन कार्यक्रमों और माल्टिंग और ब्रूइंग उद्योगों को ध्यान में रखते हुए किया जाता है। सस्य क्रिया , रोग प्रतिरोधक क्षमता और माल्टिंग क्वालिटी/ब्रूहाउस परफॉर्मेंस/फ्लेवर में सुधार

तालिका 1.2: माल्ट जौ की किस्में

उद्देश्य	किस्म	वर्ष	विकसितकर्ता संस्थान
दो पंक्ति जौ	अल्फा 93	1994	डीडब्ल्यूआर, करनाल
	बीसीयू 73	1997	
	डीडब्ल्यूआर 28	2002	
	डीडब्ल्यूआरयूबी 52	2006	
	आरडी 2668	2007	एआरएस दुर्गापुरा
	डीडब्ल्यूआरबी 73	2011	आईआईडब्ल्यूबीआर, करनाल
	डीडब्ल्यूआरबी 91	2013	
	डीडब्ल्यूआरबी 92	2013	
	डीडब्ल्यूआरबी 101	2015	
	आरडी 2849	2016	एआरएस दुर्गापुरा
	डीडब्ल्यूआरबी 123	2017	आईआईडब्ल्यूबीआर, करनाल
	डीडब्ल्यूआरबी 160	2019	
	डीडब्ल्यूआरबी 182	2020	
छह पंक्ति जौ	आरडी 2503	1997	एआरएस दुर्गापुरा
	के 551	1997	सीएसएयू कानपूर
	डीडब्ल्यूआरयूबी 64	2012	डीडब्ल्यूआर, करनाल

को शामिल करने के लिए हर साल सैकड़ों नए क्रॉस बनाए जाते हैं। एक नई किस्म पहली बार पायलट माल्टिंग चरण में आने से पहले कई वर्षों की प्रयोगशाला, बीज नर्सरी और कई स्थान में उपज परीक्षण प्रक्रिया में लगभग 6–8 साल लेती है।

भारत में प्रमुख माल्ट एवं ब्रुअरी उद्योग समूह

- बार माल्ट इंडिया लिमिटेड
- माल्ट कंपनी (इंडिया) प्राइवेट लिमिटेड (पीएमवी

माल्टिंग लिमिटेड)
- हरियाणा सूरज माल्टिंग्स लिमिटेड
- यूनाइटेड ब्रुअरीज लिमिटेड
- ए बी इनबेव इंडिया लिमिटेड
- जगत जीत इंडस्ट्रीज लिमिटेड
- जॉन डिस्टिलरीज प्राइवेट लिमिटेड
- मल्टिक्स मॉस्टर्स लिमिटेड
- मिलेनियम बियर इंडस्ट्री लिमिटेड
- नेशनल सीरियल्स प्रोडक्ट्स लिमिटेड
- मोहन मीकिन्स ब्रुअरीज लिमिटेड

माल्टिंग जौ की कटाई और भंडारण

माल्टिंग जौ की फसल की कटाई का समय, मौसम, किस्म और परिपक्वता कारकों के संयोजन से निर्धारित होता है। आदर्श अनाज उपज और गुणवत्ता के लिए, जौ को कंबाइन मशीन से काटा जाना चाहिए। कटाई के समय अनाज में नमी का स्तर 12–14 प्रतिशत होना चाहिए। भंडारण करने से पहले अनाज को साफ करने से रोगग्रस्त दाने और डंठल, पत्तियों, या खरपतवार के बीज से छुटकारा पाने में मदद मिलती है। अनाज की सफाई से समग्र परीक्षण वजन बढ़ सकता है। अनाज को सुखाना आवश्यक होता है क्योंकि कटाई के समय भंडारण के लिए आदर्श नमी 12 प्रतिशत होनी चाहिए। सुखाने के दौरान, अनाज का तापमान 100–110 डिग्री फारेनहाइट से अधिक नहीं होनी चाहिए। उच्च तापमान अवांछनीय है क्योंकि वे बीज के अंकुरण को कम करते हैं, और दानों में दरारें पैदा कर सकता है। उच्च नमी के साथ संग्रहीत अनाज विषाक्त पदार्थों और मोल्ड से दूषित हो सकता है जो इसे विक्रय हेतु अनुपयुक्त बना देता है। भंडारण से पहले, अनाज के डिब्बे सूखे और साफ होने चाहिए। डिब्बे को साफ करने और वैक्यूम करने के अलावा, परंपरागत रूप से भंडारण से पहले भण्डारण स्थान का फ्यूमिगेशन आवश्यक हैं।

बाज़ार दृष्टिकोण

बदलते जीवन स्तर एवं जीवन शैली और उच्च स्तर के उपभोक्तावाद के कारण भारतीय उपभोक्ताओं का स्वास्थ्यवर्धक भोजन और पेय पदार्थों की ओर झुकाव बढा है। "इंडिया माल्टेड हेल्थ ड्रिंक्स मार्केट ओवरव्यू" के अनुसार, भारत में माल्टेड ड्रिंक्स का बाजार अगले छह वर्षों में 15 प्रतिशत से अधिक बढ़ने की उम्मीद है। माल्ट–आधारित खाद्य एक उभरता हुआ खाद्य–सेक्टर है। माल्टेड स्वास्थ्य पेय बाजार पर सकारात्मक प्रभाव भी डालता है। भारत में मध्यमवर्ग के उपभोक्ता दिन–प्रतिदिन के चुनौतीपूर्ण जीवन के लिए और अच्छे स्वास्थ्य के लिए माल्टेड पेय का सेवन करते हैं। भारत में स्वास्थ्य के प्रति जागरूक उपभोक्ताओं ने माल्ट स्वास्थ्य पेय की मांग में वृद्धि की है। माल्ट से विटामिन–बी, बहुत सारे खनिज, फाइबर और प्रोटीन मिलते हैं। माल्ट में सामान्य चीनी की तुलना में कम मिठास होती है और आमतौर पर इसका उपयोग एक स्वस्थ वैकल्पिक स्वीटनर के रूप में किया जाता है।

भारत में माल्ट आधारित पेय का उदय स्वतंत्रता के समय कुपोषण से लड़ने के लिए हुआ था। एक अल्प–पोषित राष्ट्र में, स्वतंत्रता के तुरंत बाद, भारत के उत्तरी और पूर्वी हिस्सों में दूध की कमी का फायदा उठाने वाले ब्रांडों ने स्वयं को दूध के विकल्प के रूप में स्थापित किया। अब भारत दुनिया में माल्ट आधारित पेय के लिए सबसे बड़ा उपभोक्ता बाजार है जो वैश्विक बिक्री का लगभग 20 प्रतिशत भाग है। एक रिपोर्ट के अनुसार स्वास्थ्य और कल्याण पेय श्रेणी में हॉर्लिक्स का विश्व स्तर पर केवल 56वें स्थान है परन्तु भारत में इसका शीर्ष स्थान है। उत्पादों को यहाँ 'स्वास्थ्य पेय' के रूप में विपणन किया जाता है जो विशेष रूप से बच्चों पर लक्षित होते हैं। हॉर्लिक्स के अतिरिक्त अन्य शीर्ष मान्यता प्राप्त और लोकप्रिय नामों में बॉर्नविटा, कॉम्प्लान, बूस्ट और माइलो, अमूल प्रो आदि शामिल हैं।

बढ़ते बियर उद्योग के कारण माल्ट बाजार के आकार में उच्च वृद्धि का अनुमान है। विश्व स्तर पर बियर को एक आकस्मिक पेय माना जाता है और अन्य मादक पेय पदार्थों के मुकाबले कम हानिकारक माना जाता है। इसके अतिरिक्त, ब्रुअरीज के निर्माण में जैविक माल्ट के उपयोग से माल्ट बाजार के विकास में मदद मिलने की उम्मीद है। भारत माल्ट उत्पादन के लिए एक क्षेत्रीय केंद्र बनने के लिए तैयार है क्योंकि उभरते बाजारों में बीयर की मांग विकसित बाजारों की तुलना में दोगुनी दर से बढ़ रही है। बीयर उत्पादन के लिए वैश्विक मांग महत्वपूर्ण है और अच्छी बीयर उत्पादन में महत्वपूर्ण उद्योग जैसे सुफले (माल्ट उत्पादन के लिए) और ए बी इनबेव (यूएसए), हेनेकेन (नीदरलैंड) और कार्ल्सबर्ग (डेनमार्क) शामिल हैं। भारत में माल्ट जौ की खेती वर्तमान में पंजाब और हरियाणा में लोकप्रिय है। राजस्थान के अलवर जिले का भारतीय अल्कोहोल उद्योग एक महत्वपूर्ण माल्टिंग/शराब पर आधारित उद्योग है। एक दशक पहले तक, पानी की कमी के कारण अर्द्ध–शुष्क हरियाणा और राजस्थान में किसानों द्वारा उगाई जाने वाली जौ का उपयोग ज्यादातर पशु आहार के रूप में किया जाता था। अब, अंतर्राष्ट्रीय ब्रुअरीज स्थानीय स्तर पर जौ के स्रोत के लिए अग्रसर हैं। विपणन व्यवस्थाओं और प्रसंस्करण के संदर्भ में, प्रसंस्करण–उत्पादक संबंधों को प्रोत्साहित करने के लिए अनुबंध कृषि नीति जैसे–मंडीकर छूट, अनुबंधों/व्यक्तिगत किसान समझौतों, स्टाम्प शुल्क आदि कुछ संशोधनों की गुंजाइश है। व्यक्तिगत किसानों से या

एफपीसी के भंडारण/सामान्य सुविधाओं से प्रोसेसरों द्वारा सीधी खरीद अभी तक बहुत कम है। कई कम्पनियाँ वर्तमान में एपीएमसी के माध्यम से और साथ ही किसानों के साथ समझौता ज्ञापन कर माल्ट प्रसंस्करण के लिए जौ की खरीद/सोर्सिंग कर रही हैं। प्रसंस्करण और बाजार विकल्पों के संदर्भ में माल्ट के अलावा अन्य जौ प्रसंस्करित उत्पाद जैसे कि जौ का आटा, फ्लेक्स इत्यादि अभी भी उपेक्षित हैं।

पराली प्रबंधन से करें संसाधन व आय सृजन

संजीव कुमार, अखौरी निशांत भानु एवं अर्पित सूर्यवंशी
कृषि प्रसार एवं संवाद, रानी लक्ष्मी बाई केंद्रीय कृषि विश्वविद्यालय, झाँसी

बढ़ती जनसंख्या के साथ ही खाद्यान्नों की अनुपातिक रूप से बढ़ती मांग और उसी क्रम में अनाजों, दलहन तथा तिलहन की आपूर्ति भी निश्चित रूप से बढ़ी है। तकनीकी बढ़त एवं जानकारियों का भी इसमें एक अहम् योगदान रहा है। आज देश में खाद्यान्नों का कुल उत्पादन 304.44 मिलियन टन को पार कर चुका हैं, जिसमे अनाजों का कुल उत्पादन अपने में एक कीर्तिमान स्थापित कर चुका हैं वहीं दलहन तथा तिलहन का कुल उत्पादन क्रमशः 25.58 तथा 36.57 मिलियन टन को प्राप्त कर चुका है । इस अपेक्षित परिणाम में भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद् (आई. सी.ए.आर.) के विभिन्न केन्द्रों, विस्तार तंत्र वैज्ञानिकों तथा कृषि विज्ञान केन्द्रों की एक महत्वपूर्ण भूमिका रही हैं। इसके परिणाम में जहाँ कई तरह की समस्याओं जैसे कि खाद्यानों का दूसरे देशों पर निर्भरता, उत्तम किस्मों के बीजों की उपलब्धता, तकनीकों का किसानों के सम्मुख प्रदर्शन कर समाधान प्रदान किया हैं वहीं कुछ अन्य समस्याओं ने भी जन्म ले लिया है जिसका उतनी ही तत्परता तथा गंभीरता से समाधान तलाशने की आवश्यकता है। आज के सन्दर्भ में एक बड़ी समस्या यह है कि कटाई के उपरांत बचे फसल अवशेषों को कैसे प्रबंधित किया जाए। हम सभी जानते हैं कि पराली जलाने से स्वास्थ्य जनित कई समस्याएं हमारे समक्ष उत्पन्न हो गयी हैं। एक टन पराली जलने पर 5.5 कि.ग्रा. नत्रजन, 2.3 कि.ग्रा. पोटैशियम तथा 1.2 कि.ग्रा. सल्फर की हानि होती है और साथ ही साथ 3 कि.ग्रा. प्रलंबित कण, 60 कि.ग्रा. कार्बन मोनो ऑक्साइड गैस, 1460 कि.ग्रा. कार्बन डाई ऑक्साइड गैस, 199 कि.ग्रा. राख तथा 2 कि.ग्रा. सल्फर डाई ऑक्साइड जैसी जहरीली गैस उत्सर्जित होकर वातावरण में मिल जाती हैं जिनका मानव एवं पशुओं के स्वास्थ्य पर विपरीत प्रभाव पड़ता हैं। मृदा जैविक रूप भी अत्यंत प्रभावित होती हैं। पराली जलने से उत्पन्न गर्मी मृदा की सतह से 1 सें.मी. नीचे तक पहुँच कर जीवाणु और कवक की जैव विविधता को नष्ट कर देती है जोकि मुख्यतः मृदा की उपरी 2.5 सें.मी. मीटर तक ही पाई जाती हैं जो मृदा की उर्वरता व फसलों के अंकुरण में मदद करती हैं। समय–समय पर इस तरह की क्रियाओं को दोहराने से मृदा में स्थायी रूप से हानि होती है तथा उत्पादन में भारी कमी आती है। पराली जलाये जाने से मृदा में वायु एवं जल द्वारा क्षरण तथा अम्लीयता भी बढ़ जाती है जिससे आगे आने वाली फसलों पर विपरीत प्रभाव पड़ता है। वैश्विक स्तर पर कृषि से लगभग 140 बिलियन मीट्रिक टन तक का बायोमास उत्पन्न होता हैं। उपग्रहों से मिले चित्रों से आज हम इस तरह के किसी भी घटना को ना सिर्फ चिन्हित कर सकते हैं वल्कि इनके रिकॉर्ड/साक्ष्य को प्रमाणित भी कर सकते हैं।

जब प्रश्न फसलों के उत्पादन के बाद बचे हुए अवशेषों के प्रबंधन का आता हैं तो कुछ ऐसे विषय हैं जहाँ हमें विशेष ध्यान देने की आवश्यकता हैं जैसे की आर्थिक, सामाजिक एवं कृषि उपयोगिता। यदि किसानों को उन प्रबंधनो की ओर आकर्षित करना हैं तो कुछ बातो पर तकनीकि रूप से ध्यान देना होगा। उनमे से सर्वप्रथम है अपेक्षित लाभ, आर्थिक, सामाजिक अथवा कृषि वातावरण से सम्बंधित हो। यदि तकनीकी में निवेश ज्यादा हो और उससे मिलने वाली आय अथवा लाभ कम हो तो प्रसंस्करण तकनीकों को किसानों के बीच सफल और लोकप्रिय होने की संभावना कम हो जाती हैं। इसी के साथ यदि तकनीक सरल हो, जिसे आसानी से समझा या उपयोग में लाया जा सके, तब उन्हें आसानी से जिनसे की वायुमंडल मे भी धुआ, हवा में तैरते कालिख आदि साँसों को भी दूभर कर देते हैं। प्राकृतिक रूप से अगर इनको सड़ने दिया जाए तो मृदा मे कार्बन का स्तर बढ़ाया जा सकता हैं और मृदा स्वास्थ्य भी बढ़ाया जा सकता हैं। कई सारे शोध बताते हैं कि खेतों में पुरानी फसलों के बचे हुए अवशेष नमी को बचाने का भी काम करते हैं। इससे बीज अंकुरण में भी मदद मिलती हैं।

पराली जलाने के पीछे कृषकों की विवशता

अगर हम वास्तविक कारणों की ओर देखे तो पता चलता हैं कि एक फसल से दूसरे फसल के बीच बहुत कम समय होता हैं उस समय पराली का त्वरित निष्पादन कठिन हो जाता हैं। अतः इनके प्रबंधन में मुख्यतः खेतों में ही प्रबंधन क्षेत्र विशेष के लिए अन्य फसलों का चयन, जैविक ईंधनों एवं वर्तमान में चल रहे विभिन्न योजनाओं का समुचित लाभ की ओर देखना होगा। फसल कटाई उपरांत अपशिष्ट जैसे भूसा आदि की सफाई खेतों से जरूरी होती हैं ताकि ये खरपतवार पादप रोगों के लिए वैकल्पिक पोषिता का काम ना कर सके पराली जलाना किसानों के लिए कम लागत एवं त्वरित गति से निष्पादित करने का तरीका हैं। यदि इसे ऐसे ही खेतों में छोड़ दिया जाए तो कीट जैसे दीमक, चूहे, सर्प आदि आगे आने वाली फसलों को नुकसान पंहुचा सकते हैं। भारतवर्ष में ज्यादातर किसान मध्यम व लघु वर्ग के होते हैं एवं संसाधनों की कमी की वजह से महंगी मशीनों को अपनाने में सक्षम नहीं होते है। देश के कई हिस्सों में ठंड की अवधि कम होती हैं तथा दो फसल लेने के मध्य समय काफी कम रह जाता हैं एवं ऐसी परिस्थितियों में पराली प्रबंधन एक चुनौती भरा कार्य हो जाता है। कंबाइन हार्वेस्ट्र से फसल

कटाई से लगभग 10 सें.मी. तक की ठूठ रह जाती है जिसे बाद में मिट्टी में मिलाना बहुत मुश्किल होता है।

व्याहारिक एवं टिकाऊ समाधान

तालिका 1 : फसल उत्पादन एवं पराली उत्पादन

फसल	उत्पादन (मीट्रिक टन/वर्ष)	पराली/अवशेष उत्पादन (मीट्रिक टन/वर्ष)	पराली और फसल का अनुपात
धान	153.35	188.98	1.23
गेहूँ	80.68	120.07	1.49
जूट	18.32	31.51	1.72
गन्ना	285.03	107.50	0.38
मक्का	19.73	26.75	1.36
कपास	37.86	90.86	2.40
मोटे अनाज	17.62	21.57	1.22
राई–सरसों	7.20	17.28	2.40
मूंगफली	7.17	11.40	1.59
कुल	627.96	620.43	

जगह की कमी, भण्डारण, ढुलाई आदि में अधिक लागत कुछ ऐसे कारण हैं जो इस संसाधन के समुचित उपयोग के लिए बाधक सिद्ध हो रहे हैं। फसल अवशेषों से पशुओं के लिए साईलेज, ईंधन ईंट, चारा ईंट, बिजली घरों के लिए ईंधन आदि कई ऐसे उपयोग है जिन पर ध्यान देने की आवश्यकता है। कई शोध संस्थान पराली एवं कटाई उपरांत प्रबंधन एवं प्रसंस्करण के विभिन्न आयामों पर काम कर रहे हैं। भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली द्वारा विकसित बायोएंजाइम (पूसा डीकम्पोजर) भी इसी ओर एक कदम है। पूसा डीकम्पोजर 20–25 दिनों के भीतर पराली को खाद में बदल देता है जो की मृदा में जैविक कार्बन का स्तर तथा लाभप्रद सूक्ष्म जीवाणुओं की गतिविधि को बढ़ाकर उर्वरता और उत्पादकता में सुधार करता है और भविष्य में भी कम उर्वरक खपत की आवश्यकता होती है।

बायोचार

बायोचार एक उच्च कार्बन युक्त ठोस पदार्थ है, जो उच्च तापमान पर तैयार किया जाता है जिसमें ऑक्सीजन अनुपस्थित या कम मात्रा में होती है। इस प्रक्रिया में किसी भी कार्बनिक ठोस पदार्थ को विभिन्न तापमान पर रखा जाता हैं। यह एक बहुत ही प्रभावशाली उर्वरक जोकि अपशिष्ट कार्बनिक पदार्थों की पायरो लिसिसपारोली की प्रक्रिया द्वारा तैयार किया जाता है। यह एक उभरती हुई तकनीक है जोकि आधुनिक कृषि उत्पादन के लिए अति आवश्यक है तथा किसान उपयोगी है। यदि 2 टन बायोचार प्रति एकड़ की दर से उपयोग किया जाए तो गेहूँ या धान की फसलों में यूरिया की खपत एक तिहाई तक कम की जा सकती हैं। इसके साथ ही इससे महत्वपूर्ण पोषक तत्व जैसे फॉस्फोरस और नाइट्रोजन को लम्बे समय तक मृदा में धारण करने की क्षमता बढ़ती है।

फसल–अवशेषों का उपयोग पशुओं के चारे, छाया–आवास, छोटे–मोटे घरेलु उद्योगों जैसे लुगदी/बोर्ड उद्योग, बायोगैस उत्पादन, इंधन आदि के लिए उपयुक्त है। किन्तु

यूरिया से चारे का उपचार

सूखे चारों में कड़ा एवं रेशेदार पदार्थ होने के कारण इसकी पाचकता एवं स्वादिष्टता कम होती हैं और साथ ही इनमें प्रोटीन भी कम होता है। यूरिया से उपचारित कर देने से ना केवल इन सूखे चारे की पाचकता एवं स्वादिष्टता बढ़ जाती हैं वल्कि पौष्टिकता में भी वृद्धि होती हैं।

यूरिया मोलेसिस मिनरल ब्लॉक (पशु चाट)

पशु चाट का उपयोग पशुओं को मिनरल एवं उर्जा की आपूर्ति के लिए किया जाता हैं। इसे बनाने के लिए गेहूँ का चोकर, मोलेसिस, यूरिया, सीमेंट, नमक एवं विटामिन पाउडर का उपयोग किया जाता हैं। गेहूँ की चोकर तथा मोलेसिस पशुओं को ऊर्जा तथा यूरिया पशुओं में नत्रजन आपूर्ति करने का काम करती है जिससे पशु अपने शरीर के लिए आवश्यक प्रोटीन का निर्माण करते हैं। सीमेंट का उपयोग मिश्रित पदार्थों को बांधने का कार्य करता है तथा विटामिन एवं मिनरल पाउडर का उपयोग पशुओं में मिनरल एवं विटामिन की आपूर्ति करता है।

पशुओं के लिए चारा ब्लाक

साईलेज बनाकर हरे चारे को आवश्यक नमी के साथ एवं ऑक्सीजन के अनुपस्थिति में भण्डारण करने की प्रक्रिया हैं। इस प्रक्रिया द्वारा ऑक्सीजन की अनुपस्थिति तथा अम्लीयता की स्थिति बना कर इसे पशुओं के लिए लम्बे

समय तक चारे के रूप में दिया जा सकता है।

धान–भूसे का ईंट

इस तरह की ईटों को आसानी से एक जगह से दूसरी जगहों तक ले जाया जा सकता हैं तथा भण्डारण में भी सुविधा होती हैं। अगर इन ईटों को बनाते समय उचित पोषक तत्वों को भी मिलाया जाये तो ये पशुओं के लिए एक संतुलित आहार का काम भी करती हैं। अनेक कृषि विश्वविद्यालय इस तकनीक पर काम कर रहे हैं जिससे भण्डारण जगह की कमी से जूझ रहे किसानों को इससे समाधान मिले एक शोध में पाया गया है कि शीत काल में इस पराली द्वारा निर्मित 30 सेंटीमीटर तक का मोटा गद्दा/बिस्तर, पशुओं में दूध उत्पादन को करीब 17 प्रतिशत तक बढ़ा सकता हैं।

जैव ऊर्जा का स्रोत

पराली एवं फसल अपशिष्ट द्वारा उत्पन्न जैव उर्जा एक उभरती व्यावहारिक तकनीक हैं। इस तकनीक से जैव शक्ति, बायो गैस, तरल ईंधन, इथेनॉल आदि का निर्माण शामिल हैं. केचुआ खाद के लिए भी विभिन्न कृषि अवशेषों का उपयोग कर अतिरिक्त आय के साधन का सृजन किया जा सकता है।

अनुकूल पर्यावरण के लिए फसल अवशेष प्रबंधन

अक्षिता चड्ढा, वाई एस जादौन एवं जसविंदर सिंह
गुरु अंगद देव पशुचिकित्सा एवं पशुविज्ञान विश्वविद्यालय, लुधियाना

भारत में हर साल फसलों की कटाई के बाद लगभग 500 लाख टन फसल अवशेष बच जाते हैं। अगली फसल की बुवाई करने के लिए किसान आमतौर पर इन अवशेषों को जला देते हैं, जिसके परिणामस्वरूप मिट्टी की उर्वरता में कमी, वायु प्रदुषण, फेफड़े और हृदय की बीमारियाँ आदि कई प्रकार के नुकसान होते हैं। अवशेषों के जलने से मिट्टी में मौजूद सूक्ष्म जीव जैसे केंचुओं इत्यादि तथा पोषक तत्व जैसे कार्बन, नाइट्रोजन, फॉस्फोरस, पोटैशियम, और सल्फर नष्ट हो जाते हैं, जिससे मिट्टी की उत्पादतकता घट जाती है। मिट्टी की उत्पादक क्षमता फिर से बढ़ाने के लिए किसानों को अधिक लागत लगानी पड़ती है। एक टन जलते हुए अवशेष 1600 किलोग्राम हानिकारक गैसें, काला कार्बन और धुआं उत्पन्न करते हैं जोकि मनुष्यों खासकर गर्भवती महिलाएं, नवजात शिशु, बुजुर्गों और पशुओं के लिए बहुत खतरनाक है। भारत में दमा और कैंसर जैसी बढ़ती बीमारियों का बड़ा कारण इन हानिकारक सूक्ष्म कणों का उत्सर्जन है जो हमारे देश को स्वास्थ्य संकट के गंभीर स्तरों पर ले जा रहा है। पारम्परिक तौर पर फसल कटाई के दौरान किसान स्वयं ही खेत में बचे अवशेषों को निकालते थे और विभिन्न तरीकों से इनका इस्तेमाल कर लेते थे, लेकिन वर्तमान समय में मशीनीकृत तरीके से फसल कटाई के उपरांत फसल अवशेषों को खेतों में छोड़ देते हैं। किसान समय और पैसे बचाने के भ्रम में फसल अवशेषों को जला देते हैं। वर्तमान समय में कृषि की दृष्टि से विकसित राज्यों में मात्र 10 प्रतिशत किसान ही अवशेषों का प्रबन्धन कर रहे हैं। पंजाब, हरियाणा तथा पश्चिमी उत्तर प्रदेश सर्वाधिक फसल अवशेष जलाने वाले राज्य हैं।

फसल अवशेषों को जलाने के दुष्प्रभाव

1. मिट्टी के स्वास्थ्य का खराब होना

- अवशेष जलाने से 100 प्रतिशत कार्बन, 80 प्रतिशत नाइट्रोजन, 20 प्रतिशत फॉस्फोरस, 20 प्रतिशत पोटाश और 60 प्रतिशत सल्फर का नुकसान होता है
- भूमि की संरचना में क्षति होने से अत्यधिक जल का निकासी न हो पाना।
- जमीन की ऊपरी सतह पर रहने वाले मित्र कीट व केंचुआ आदि का नष्ट होना।

2. मानव स्वास्थ्य सम्बन्धी दुष्प्रभाव

- अस्थमा (दमा) और कैंसर जैसी बीमारियों का तेजी से बढ़ना ।
- सल्फर डाईऑक्साइड व नाइट्रोजन ऑक्साइड के कारण आँखों में जलन।
- चर्म रोग।

3. पर्यावरण सम्बन्धी दुष्परिणाम

- यह ग्लोबल वार्मिंग को बढ़ाता है।
- स्मॉग पैदा होने से सड़क दुर्घटना की सम्भावना बढ़ जाती है।
- खेत के किनारे के पेड़ों को भी आग से नुकसान पहुँचता है।
- ग्रीन हाउस गैसों का अधिक मात्रा में उत्सर्जन।
- वायु प्रदूषण।

फसल अवशेषों के अनेक उपयोग

फसल अवशेष या पराली किसानो के लिए कई प्रकार से लाभदायक हैं।

1. मिट्टी की उर्वरता में सुधार

मिट्टी की उर्वरता फसल अवशेष या पराली को मिट्टी में मिलाने से मिट्टी की उर्वरता काफी मात्रा में बढ़ जाती है। पराली में पाए जाने वाले नाइट्रोजन, फॉस्फोरस, पोटैशियम, और सल्फर मिट्टी में पोषक तत्व एवं कार्बनिक पदार्थों की मात्रा बढ़ाते हैं, जिससे उत्पादन लागत में कमी आती है।

2. जैविक खाद उत्पादन

फसल अवशेष को खेत में ही चॉपर द्वारा छोटे छोटे टुकड़ों में काटने के बाद उन पर फसल अवशेष अपघटक का छिड़काव कर बेहतरीन खाद में बदल सकते हैं। अगली फसल की बुआई के दौरान किसान खेत के एक अलग हिस्से में ही फसल अवशेष या पराली की कम्पोस्टिंग करके जैविक खाद बना सकते हैं। फसल अवशेष को खेत में ऐसे ही छोड़ देने से मिट्टी में नमीं बनी रहती है और भूमिगत

जलस्तर में भी सुधार होता है।

3. पशु चारे के लिए फसल अवशेष का महत्व

फसल अवशेष पशुओं के लिए उत्कृष्ट चारा होता है। विशेष रूप से गेहूँ जिसमे हरा चारा तथा सरसों की खल मिलाने पर यह पशुओं के स्वास्थ्य और दूध उत्पादन में सुधार लाता है।

4. मशरूम की खेती में फसल अवशेषों का उपयोग

पराली मशरूम की वृद्धि के लिए एक उर्वर आधार है। मशरूम में सब्जियों की तुलना में दो से तीन गुना अधिक प्रोटीन होता है। मशरूम की खेती के लिए गेहूं और चावल के अवशेष उत्कृष्ट सब्सट्रेट्स होते हैं।

5. पराली पशुओं के बिछौने तथा छप्पर निर्माण में काम आती है।

6. फसल अवशेषों को गन्ने व् मक्का की बुवाई के वक़्त खेत को ढकने में भी प्रयोग किया जा सकता है, जोकि तापमान और नमीं दोनों को बनाये रखने में सहायक होता है और अलग से पानी देने की आवश्यकता कम हो जाती है।

7. उद्योगों में मांग

फसल अवशेषों की कई उद्योगों में बहुत मांग है। कागज़ और गत्ता उद्योग के लिए यह लुगदी का बहुमूल्य स्रोत है और ऊर्जा के उत्पादन में उत्कृष्ट जैव ईंधन है।

आधुनिक मशीनों से फसल अवशेष के प्रबंधन

आधुनिक मशीनें किसानों का समय बचाने के साथ साथ अगली फसल की जुताई, सिंचाई तथा बचत करती हैं।

1. ट्रैक्टर से चलने वाली हैप्पी सीडर मशीन खेत में फसल अवशेष के बावजूद गेहूँ की बुवाई के लिए उपयोगी है।
2. सुपर स्ट्रॉ प्रबंधन प्रणाली कंबाईंड हार्वेस्टर के साथ आसानी से जोड़कर पराली को बारीक काटते हुए खेत में ही फैलाया जाता है।
3. बेलर का प्रयोग करके धान के फसल अवशेषों के बेल बनाकर अन्य कार्यो में इस्तेमाल किया जा सकता है।

फसल अवशेषों के प्रबंधन के लिए सरकारी योजनाएं

भारत सरकार कई योजनाओं के तहत किसानो को फसल अवशेषों के प्रबंधन की मशीने किफायती तौर पर उपलब्ध करा रही है। पंजाब में कस्टम हायरिंग सेंटर खोलने के लिए किसान उत्पादक समूहों और अन्य संस्थाओं को सब्सिडी दी जा रही है। यहां किसान ऐसी मशीने किराये पर ले सकते हैं जो न केवल फसल अवशेष को निकालने में बल्कि खेत को अन्य फसलें लगाने के लिए तैयार भी कर देती हैं।

नाबार्ड किसानो को सहकारी और क्षेत्रीय ग्रामीण बैंको से ऐसे ऋण दिलाने में मदद कर रहा है जिनसे वे इन मशीनो की खरीद पर सब्सिडी पा सकते है।

फसल अवशेष को बेचने के साधन

किसान अपने फसल अवशेष नेशनल थर्मल पावर कॉर्पोरेशन (एनटीपीसी) को बिजली उत्पादन के लिए उचित दरों पर बेच सकते हैं। नेशनल पॉलिसी फॉर मैनेजमेंट ऑफ़ क्रॉप रेसिड्यू कई योजनाओं को बढ़ावा दे रही है, जिनसे किसान उत्पादक संगठन और स्वयं सहायता समूह किसानो से सीधा फसल अवशेष खरीदते हैं। प्रगतिशील किसान इन योजनाओ को अपनाकर दूसरे किसानो को फसल अवशेष जलाने के बजाए उन्हें अतिरिक्त आय में बदलने के लिए प्रेरित कर रहे हैं। मशीनो का उपयोग कर किसान अपने समृद्ध खेतों से लाभ उठाने के साथ साथ अपने परिवार का स्वास्थ्य एवं भविष्य भी सुनिश्चित कर सकते हैं।

फसल अवशेष प्रबंधन के लिए भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद द्वारा विकसित की गयी तकनीक

पराली से होने वाले दुष्प्रभाव को रोकने के लिए भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद ने ऐसी तकनीक विकसित की है जिससे पराली को एक महीने के अंदर खाद में बदला जा सकता है। बैक्टीरिया से तैयार किया गया कैप्सूल पराली को कम से कम समय में खाद में बदल देता हैं। एक कैप्सूल की कीमत महज 20 रुपये है। सिर्फ 4 कैप्सूल ढाई एकड़ खेत की पराली को एक महीने के अंदर खाद में बदल सकते हैं। गुड़ और बेसन को साथ उबालकर ठंडा करके उसके घोल में यह कैप्सूल मिलाकर पराली पर छिड़काव किया जाता है।

निष्कर्ष

फसल अवशेषों के पुनर्चक्रण में मिट्टी को काफी मात्रा में पौधों के पोषक तत्व प्रदान करने की अपार क्षमता होती है। मिट्टी में जैविक कार्बन में गिरावट आना मृदा स्वास्थ्य के लिए एक बड़ा खतरा है। मृदा स्वास्थ्य में सुधार, पोषक तत्वों की दक्षता और हवा प्रदूषण में कमी फसल अवशेष प्रबंधन के माध्यम से संभव है। किसानों को मृदा, अपने परिवार तथा पशुओं की सेहत के लिए फसल अवशेष प्रबन्धन तकनीकों का निश्चित रूप से पालन करना चाहिए।

पराली की समस्या का नई तकनीकों से हल

प्रतिभा पूनिया एवं सोनिया श्योरान
भाकृअनुप–भारतीय गेहूँ एवं जौ अनुसंधान संस्थान, करनाल

भारत एक कृषि प्रधान देश है। पहले यहां खेती केवल जीविकोपार्जन के लिए की जाती थी। लेकिन धीरे–धीरे खेती ने व्यवसाय का रूप ले लिया है। किसान अधिक उपज प्राप्त करने के लिए अंधाधुंध रायायनिक उर्वरक एवं कीटनाशकों का प्रयोग करता है। जिसके परिणामस्वरूप पर्यावरण पर भी हानिकारक प्रभाव हो रहे है। फसल अवशेष या पराली को जलाना भी पर्यावरण एवं मृदा प्रदूषण का एक प्रमुख कारण है। विगत कुछ वर्षों में मुख्य रूप से एक समस्या देखी जा सकती है कि हार्वेस्टर द्वारा फसलों की कटाई कर दी जाती है और खेतों में फसल के तने के अधिकतर भाग खेत में खड़े रह जाते है। फिर किसान खेत में ही फसल के अवशेषों को आग लगाकर जला देते हैं।

क्या है– फसल अवशेष ?

यह पौधे का वह भाग होता है जो फसल की कटाई के बाद खेत में छोड़ दिया जाता है। भूसा, तना, डंठल, पत्ते व छिलके आदि फसल अवशेष कहलाते हैं। सरसों, गेहूँ, धान, ग्वार, मूंग, चना, मक्का, बाजरा, गन्ना एवं अन्य दूसरी फसलों से काफी मात्रा में फसल अवशेष मिलते हैं। सबसे ज्यादा फसल अवशेष अनाज वाली फसलों में तथा सबसे कम दलहन फसलों से मिलते है। फसल अवशेषों का केवल 22 प्रतिशत ही इस्तेमाल होता है बाकी फसल अवशेष को जला दिया जाता है।

जून–जुलाई माह में उत्तर प्रदेश, हरियाणा, पंजाब समेत उत्तर भारत में धान की बुआई शुरू हो जाती है। 90–120 दिन में फसल पककर तैयार हो जाती है और फिर आती है इसकी कटाई की बारी। जून–जुलाई में बोई गई फसल सितम्बर–अक्तूबर में काट ली जाती है। दूसरी तरफ यहीं गेहूँ की बुआई का समय होता है, जिसे अप्रैल–मई में काटा जाता है। इन्हीं दिनों जहाँ किसान के खेत मे अनाज के भण्डार लगते है व उसकी महीनों की मेहनत का फल उसे मिलता है, वहीं इसके साथ एक बड़ी समस्या खड़ी हो जाती है– पराली को जलाने से पैदा होने वाला प्रदूषण।

पिछले कुछ वर्षों से पंजाब, हरियाणा एवं दिल्ली के आस–पास के खेतों से उठता धुआँ पूरे आसमान को काला कर देता है। गाँव व शहरों पर प्रदूषण की काली परत जम जाती है। जिससे लोगों को सांस लेने मे तकलीफ होती है। पराली या फसल अवशेष जलाने के कारण होन वाले दुष्प्रभाव व प्रदूषण की समस्या इतनी गंभीर होती जा रही कि खुद सुप्रीम कोर्ट को इसमें दखल देना पड़ा है और पराली जलाने पर कानूनी रोक व जुर्माना लगाना पड़ा है। लेकिन सुप्रीम कोर्ट के इस फैसले के बावजूद पराली (फसल अवशेष) जलाने की घटनाओं पर कुछ खास फर्क पड़ता नजर नहीं आ रहा है।

फसल अवशेषों को जलाने से होने वाले दुष्परिणाम

मिट्टी के भौतिक गुणों पर प्रभाव

फसल अवशेषों को जलाने से मिट्टी का तापमान बढ़ जाता है। जिससे मिट्टी की सतह सख्त हो जाती है। जिससे मिट्टी की सघनता में वृद्धि व जल धारण करने की क्षमता में कमी आ जाती है और वायु–संचरण पर भी विपरीत प्रभाव पड़ता है।

पोषक तत्वों की कमी

पराली/फसल अवशेष जलाने से मिट्टी में पाए जाने वाले पोषक तत्वों जैसे नाइट्रोजन, फोस्फोरस, गंधक व पोटाश आदि नष्ट हो जाते हैं। जिससे मिट्टी की उपजाऊ शक्ति पर भी बुरा प्रभाव पड़ता है। कृषि वैज्ञानिकों के अनुसार–एक टन धान की पराली जलाने से 2 किलोग्राम सल्फर डाई आक्साइड, 3 किलोग्राम कणिका तत्व, 60 किलोग्राम कार्बन मोनो आक्साइड, 1460 किलोग्राम कार्बन डाई आक्साइड और 199 किलोग्राम राख निकलती है।

मृदा पर्यावरण पर प्रभाव

फसल अवशेष जलाने से मिट्टी में उपस्थित सूक्ष्म जीवों की संख्या पर भी बुरा प्रभाव पड़ता है जिससे मिट्टी की सर्वाधिक सक्रिय 15 सेंटीमीटर तक की परत में पाए जाने वाले सभी लाभदायक सूक्ष्मजीवों और किसानों के लिए लाभदायक कीड़ों (केचुएं, मकड़ी आदि) की संख्या में भी भारी गिरावट आ जाती है। जिसका कुप्रभाव आने वाली फसलों पर भी पड़ता है। इससे प्राकृतिक–चक्र का नियंत्रण भी प्रभावित होता है और फलस्वरुप किसानों को महंगे कीटनाशकों व उर्वरकों का प्रयोग करना पड़ता है। जिससे खेती की लागत बढ़ जाती है।

मिट्टी में उपलब्ध कार्बनिक पदार्थ में कमी

पराली फसल अवशेष जलाने से मिट्टी में उपस्थित मुख्य पोषक तत्व जैसे नाइट्रोजन, फास्फोरस व पोटाश इत्यादि की उपलब्धता में कमी आती है।

जानवरों के लिए चारे की कमी

कृषि अवशेषों को पशुओं के सूखे चारे के रूप में भी प्रयोग किया जा सकता है। अतः इन्हें जलाने से पशुओं को चारे की कमी का भी सामना करना पड़ता है।

वायुमंडल प्रदूषण में वृद्धि

कृषि अवशेषों को जलाने से जो धुआं उत्पन्न होता है वह वायु प्रदूषण को बढ़ाता है। दिल्ली एनसीआर, हरियाणा, पंजाब, उत्तर प्रदेश में कृषि अवशेषों को जलाने से हर साल वायु प्रदूषित होती है जो कि बुजुर्गों व बच्चों के लिए बहुत हानिकारक होती है और कृषि अवशेष जलाने से भूमि की सतह भी प्रभावित होती है जिससे भूमि प्रदूषण भी बढ़ रहा है।

इसके अतिरिक्त हम अखबारों में हर साल आगजनी की घटनाएं भी पढ़ते व सुनते हैं जो कि पराली जलाने के लिए खेतों में लगाई आग के कारण ही होता है।

इन सभी कारणों से ही नेशनल ग्रीन ट्रिब्यूनल ने पर्यावरण हित और किसानों के हित में हरियाणा, पंजाब, उत्तर प्रदेश एवं राजस्थान में पराली कृषि अवशेष जलाने पर वर्ष 2015 दिसम्बर में रोक लगा दी थी और सरकार को आदेश दिया था कि किसानों को मशीन पर सब्सिडी दी जाए व उन्हें जागरूक किया जाए। जिससे वह पराली जलाने की बजाय उसका उचित निस्तारण कर सकें।

प्राचीनकाल में स्थिति

कोई समय था जब फसल अवशेष/पराली को लोग अलग–अलग तरीकों से घर में ही प्रयोग कर लिया करते थे। पराली से ही गांव में झुग्गी झोपड़ी बना दी जाती थी। पहले लोग टीन की छत की बजाय पराली को ही छत बनाने में प्रयोग करते थे। इसके अतिरिक्त पराली का प्रयोग ईंधन, पशुओं के चारे और यहाँ तक कि फसलों की पुआल को गांठ बांधने के लिए रस्सी की तरह भी प्रयोग में लाया जाता था।

जब पक्के घर बनने लगे तो गर्मी से बचने के लिए पराली को छत पर डाल दिया जाता था, जिससे तापमान थोड़ा कम महसूस होता था। धीरे–धीरे कूलर और फिर एसी ने इसकी जगह ले ली। झोपड़ियों में भी अब पराली की जगह तिरपाल व प्लास्टिक की शीटों का प्रयोग किया जाने लगा है। मानव जीवन में पराली का प्रयोग जैसे–जैसे खत्म होता गया इसकी संभाल भी मुश्किल होती गई और फिर किसानों ने इसे जलाना शुरू कर दिया।

परन्तु विशेषज्ञों ने कई विकल्प सुझाएं है, जो इस समस्या से निपटने में मददगार साबित हो सकते है।

आईआईटी, दिल्ली के तीन छात्रों (वर्ष 2017) अंकुर कुमार, कनिका प्रजापत एवं प्राचीर दत्ता ने धान की पराली से कप–प्लेट और थाली बनाने की तकनीक ईजाद की है।

जिसके लिए उन्होंने मिलकर एक 'स्टार्ट–अप'–'क्रिया लैब्स' नाम से शुरू किया है। इन्होंने पराली कप–प्लेट व थाली बनाने की एक यूनिट भी तैयार की है जो प्रतिदिन 10–15 किलोग्राम पराली की प्रोसेसिंग करके इकोफ्रेंडली कप–पलेट व थाली तैयार कर रहे है। जल्द ही इसे एक बड़े स्तर पर शुरू करने जा रहे है।

पंजाब कृषि विश्वविद्यालय के कुलपति बलदेव सिंह ढ़िल्लों और विस्तार शिक्षा, निदेशक ने एक बैठक में चर्चा भी है कि तकनीकों के इस्तेमाल से किसान भूमि की उपजाऊ शक्ति को बढ़ा सकते है और अपनी आने वाली पीढ़ी के भविष्य को भी बेहतर बना सकते है। धान की कटाई के बाद गेहूँ की बिजाई के लिए किसानों को कम समय मिलता है। इसलिए वो फसल अवशेष के निस्तारण के लिए उन्हें खेत में ही आग लगा देते हैं। लेकिन फिर भी कई उपाय है। जिनसे किसान पराली प्रबंधन कर सकते हैं।

धान की कटाई के बाद खेत में थोड़ा पानी लगाकर, रोटावेटर से पराली को मिट्टी में ही मिला देना चाहिए। उससे 20 दिन में ही 80–90 प्रतिशत पराली मिट्टी मे ही गल जाती है और मिट्टी की उपजाऊ शक्ति बनी रहती है व पोषक तत्वों को भी कोई नुकसान नहीं होता। अगर किसान लगातार इसी तकनीक को अपनाता है तो उसे 3–4 वर्ष के पश्चात् अधिक पैदावार प्राप्त होती है।

पंजाब के एक किसान गुरमीत सिंह पराली को जलाए बिना ही हैप्पी सीडर से गेहूँ की बुआई करके अन्य किसानों से अधिक पैदावार प्राप्त कर रहे है। उनका कहना है कि वे पिछले 5 वर्षों से धान की कटाई के बाद मलचर या सुपर सीडर

से पराली को हरी खाद के रूप में खेत में ही दबा देते है। इस तकनीक से फसल की अधिक पैदावार प्राप्त होती है व अन्य किसानों को भी जागरूक करते हैं, कि किसान भाई कृषि एवं किसान कल्याण विभाग से सर्म्पक कायम करके कम खर्च पर अधिक पैदावार प्राप्त करने की जानकारी को प्राप्त कर सकते हैं।

भारत में हरित क्रांति के जनक के रूप में अपनी पहचान बना चुके कृषि वैज्ञानिक एमएस स्वामीनाथन का कहना है कि, अगर किसान पराली को जलाने के बजाय यदि उसका व्यवसायिक रूप में उपयोग करें तो किसानों को अच्छा लाभ मिलेगा और वह पर्यावरण को बचाने में भी अपनी महत्वपूर्ण भूमिका दर्ज कर सकते हैं।

आज विज्ञान ने इतनी तरक्की कर, ऐसी मशीनों का निर्माण किया है जो खेत में ही पराली/फसल अवशेष को बड़े–बड़े बंडलों में बदल देती है। इनका उपयोग पशुओं के चारे के लिए व विद्युत उत्पादन के लिए थर्मल प्लाटों में किया जा सकता है। इससे किसान की फसल अवशेष बेचने से अतिरिक्त आय भी होती है।

पंजाब में पराली से कोयला बनाने की कई फैक्ट्रियां चल रही हैं जो कि एनटीपीसी को कोयला भेजती है। अगर सभी राज्यों की सरकारें मिलकर काम करें तो पराली को जलाने की बजाय उसका उचित प्रयोग होगा और किसानों व पर्यावरण को भी फायदा मिलेगा। ऐसी ही, हरियाणा के करनाल में पराली से सीएनजी गैस बनाने का कारखाना शुरू किया गया है। जिसमें किसान बिना किसी अतिरिक्त खर्च के पराली फसल अवशेष को कारखानों में भिजवा सकता है और बदले में कमाई होती है और गैस को आईजीएल खरीद लेती है। इनके अतिरिक्त आजकल सम्पूर्ण विश्व में सरंक्षण खेती पर बहुत जोर दिया जा रहा है। इनमें अमेरिका, ऑस्ट्रेलिया, कनाडा, अर्जेंटीना एवं ब्राजील आदि देश प्रमुख है।

संरक्षण खेती का मुख्य उद्देश्य है कि मिट्टी को कम से कम (न्यूनतम) हिलाया जाए, जुताई ना के बराबर की जाए, भारी–भारी मशीनों का कम से कम प्रयोग किया जाए और मिट्टी की सतह को हर समय फसल अवशेषों या अन्य वनस्पति आवरण से ढककर रखा जाए। इससे फसलों की पैदावार तो बढ़ेगी ही और साथ–साथ प्राकृतिक संसाधनों जैसे जल मिट्टी पोषक तत्व और वातावरण की गुणवत्ता भी बढ़ेगी। जैसे धान की कटाई के बाद गेहूँ की बुआई के लिए भारी मात्रा में जुताई करने से गेहूँ की फसल की बुआई में 15 से 20 दिन की देरी हो जाती है। जबकि संरक्षण कृषि के अंतर्गत शुन्य जुताई करके किसान गेहूँ की अगेती बुआई कर सकता है। जिससे दाना भरने की अवस्था में उच्च तापमान से होने वाले फसल उत्पादन नुकसान को कम किया जा सकता है।

इस विधि से मृदा कणों को जल व वायु के सीधे संपर्क में आने से रोककर वर्षा जल के अंतः शोषण को बढ़ाकर व जल बहाव को कम कर के 50 प्रतिशत तक मृदा अपरदन को कम किया जा सकता है। जिससे खेत में मृदा की उपजाऊ शक्ति बनी रहती है तथा उसका ह्रास नहीं होता और समय के साथ–साथ मिट्टी की क्षारीयता, लवणता व अम्लता भी कम होती जाती है।

भारत के उत्तर–पश्चिमी मैदानी क्षेत्र में गेहूँ की महत्वपूर्ण रोग–व्याधियाँ और उनका प्रबंधन

रविन्द्र कुमार[1], सुधीर कुमार[1], प्रेम लाल कश्यप[1], वैभव कुमार सिंह[2], पूनम जसरोटिया[1], ईश्वर सिंह[1] एवं ज्ञानेन्द्र प्रताप सिंह[1]

[1]भाकृअनुप–भारतीय गेहूँ एवं जौ अनुसंधान संस्थान, करनाल

[2]भाकृअनुप–भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली

गेहूँ (*ट्रिटिकम एस्टिवम* एल) दुनिया भर में उगाई जाने वाली प्रमुख फसलों में एक है। वैश्विक खाद्य एवं पोषण सुरक्षा में इस फसल का महत्वपूर्ण योगदान है। हमारे देश में गेहूँ दूसरी महत्वपूर्ण खाद्यान्न फसल है जिसकी खेती विभिन्न कृषि जलवायु पारिस्थितिकियों में लगभग सभी भारतीय प्रदेशों में की जाती है। भारत में 30 मिलियन हैक्टर से अधिक क्षेत्रफल पर गेहूँ की खेती होती है जिससे फसल वर्ष 2020–21 के दौरान रिकॉर्ड 109 मिलियन टन से अधिक गेहूँ की पैदावार होने का अनुमान है। साल दर साल गेहूँ उत्पादन में वृद्धि के बावजूद गेहूँ की उत्पादकता काफी कम है। इस फसल पर अनेक रोगों का आक्रमण होता है जो गेहूँ की उत्पादकता को काफी प्रभावित करते हैं (तालिका 1)। भारत के उत्तर–पश्चिमी मैदानी क्षेत्र में गेहूँ में लगने वाले रोगों में धारीदार रतुआ या पीला रतुआ (*पक्सीनिया स्ट्राइफॉर्मिस* एफ.स्पे. *ट्रिटिसी*), भूरा रतुआ या पत्ती रतुआ (*पक्सीनिया रिकॉन्डिटा*), करनाल बंट (*टिलेशिया इंडिका*), चूर्णिल फफूंदी (*ब्लूमेरिया ग्रेमिनिस* एफ स्पे. *ट्रिटीसी*) और अनावृत कंड (*अस्टीलैगो सेगेटम*) रोग महत्वपूर्ण हैं, जिससे फसल को आर्थिक नुकसान होता है।

पीला रतुआ अथवा धारीदार रतुआ

पीला रतुआ को पीली गेरूई अथवा येलो रस्ट रोग के नाम से भी जाना जाता है। यह गेहूँ की एक मुख्य उत्पादन समस्या है जो इस फसल में भारी क्षति करती है। यद्यपि तीनों ही प्रकार के गेरूई (रतुए) रोग हमारे देश के विभिन्न क्षेत्रों में गेहूँ पर रोग उत्पन्न करते हैं किन्तु विगत वर्षों में पीला रतुआ विशेष रूप से उत्तर–पश्चिमी मैदानी क्षेत्र के साथ–साथ उत्तरी पवर्तीय क्षेत्रों में अनुकूल वातावरण कम तापमान और उच्च नमी होने के कारण अधिक महत्वपूर्ण हो गया है तथा इन क्षेत्रों में गेहूँ की फसल के लिए एक संभावित खतरा बना हुआ है। पीला रतुआ रोग, तना तथा पत्ती रतुआ से अधिक विनाशकारी होता हैं। पीला रतुआ संक्रमण और रोग लक्षण प्रकट होने के लिए कम तापमान पसन्द करता है। इसलिए यह रोग दिसम्बर एवं जनवरी के महीने में देश के उत्तर–पश्चिमी मैदानी भागों में अधिक कोहरा एवं ठंड के मौसम में उत्पन्न होता है तथा फसल को काफी हानि पहुँचाता हैं जिससे उपज में कमी आती है।

चित्र 1: पीला रतुआ अथवा धारीदार रतुआ

रोग के लक्षण: सर्वप्रथम यह रोग चमकीले पीले–नारंगी स्पॉट (पस्च्युल्स) दाने या सॉराई के रूप में पत्तियों पर धारियों में प्रकट होता है। यें मुख्य रूप से ऊपरी पत्ती की सतहों पर एपिडर्मिस को तोड़कर पीले–नारंगी यूरेडो बीजाणु (यूरेडोस्पोर्स) पैदा करते हैं। खेत में रोग का प्रकोप अधिक होने पर यह पीलापन दूर से दिखाई पड़ता है। बालियों के संक्रमित होने पर स्पॉट (पसच्यूल्स) तुष एवं लमे की आन्तरिक सतह पर तथा कभी–कभी विकासशील दानों पर दिखाई पड़ने लगते हैं। बाद में परिपक्वता के समय जब टीलियो सोराई बनते हैं तब ये धारियां भद्दे काले रंग की हो जाती हैं। ये टीलियो सोराई भी लम्बी धारिओं में व्यवस्थित होती है तथा एपिडर्मिस द्वारा ढ़की होती हैं और काले रंग की दिखाई देती हैं।

रोग कारक: यह रोग *पक्सीनिया स्ट्राइफॉर्मिस* एफ.स्पे. *ट्रिटिसी* के द्वारा होता है। यह रोगजनक आंशिक रूप से सर्वांगी है तथा यह रोग एक फसल मौसम से दूसरे फसल मौसम में यूरेडो बीजाणुओं (यूरेडोस्पोर्स) द्वारा संचारित होता है। ये यूरेडोबीजाणु स्वयंसेवी गेहूँ के पौधों और अन्य पोषक पौधों जैसे *अग्रोपाइरॉन, ब्रोमस* प्रजाति और *हॉर्डियम डैक्टाइलिस* पर हिमालय क्षेत्र में नीलगिरी की पहाडियों (लगभग 1500 से 1800 मीटर ऊंचाई) पर गैर–मौसम को वर्षभर व्यतीत करते रहते हैं। उत्तर भारत में यें यूरेडोबीजाणु (यूरेडोस्पॉर्स) वायु के द्वारा फैलते हैं। ठंडा तापमान (10–16 व सेल्सियस), रूक–रूक कर बारिश होना, बारिश के अथवा ओस के साथ पत्ती नम होना रोग विकास के लिए अनुकूल होता है।

रोग प्रबंधन

- **सस्य क्रियाएं:** स्वच्छ खेती अपनाएं नत्रजन युक्त उर्वरकों की अत्यधिक मात्रा पीला रतुआ रोग को बढाने में सहायक होती है। अतः उर्वरकों का संतुलित प्रयोग करना चाहिए।
- **रोगरोधी किस्मों का प्रयोग:** पीला रतुआ रोग का सबसे प्रभावशाली नियंत्रण रोग प्रतिरोधी किस्मों के प्रयोग से किया जा सकता है। पीले रतुए के विरूद्ध प्रतिरोधी नवीनतम विकसित किस्में डीबीडब्ल्यू 303, डीबीडब्ल्यू 187, डीबीडब्ल्यू 222, डीबीडब्ल्यू 1270, पीबीडब्ल्यू 771, एचडी 3226, डीबीडब्ल्यू 173, एचडी 3086 आदि हैं।
- **रासायनिक उपचार:** फसल पर रोग के दिखाई देने के तुरंत बाद फसल पर प्रोपिकॉनाजोल 25% ई.सी. अथवा टेबूकोनाजोल 25% ईसी अथवा ट्राइडिमेफॉन 25% डब्ल्यू. पी. का 0.1% की दर से छिड़काव अथवा टेबूकोनाजोल 25% + ट्राइफ्लोक्सीस्ट्रोबिन 50% डब्ल्यू जी का 0.06% की दर से छिडकाव करें। फसल पर कवकनाशी का यह छिड़काव 15–20 दिनों के अंतर पर रोग की उग्रता एवं प्रसार को ध्यान में रखकर दोहराया जा सकता है।

चित्र 2: भूरा रतुआ रोग

भूरा रतुआ अथवा पत्ती रतुआ रोग: यह उत्तर पश्चिमी मैदानी क्षेत्र में गेहूँ की फसल में लगने वाला दूसरा महत्वपूर्ण रतुआ रोग है। हालांकि इस क्षेत्र में देर से आने के कारण यह रोग पीले रतुआ की अपेक्षाकृत बहुत कम नुकसान करता है परंतु बदलते हुए मौसम की स्थिति में यह कई स्थानों पर फसल में क्षति पहुंचाने लगा है।

रोग के लक्षण: रोग का पहला लक्षण है छोटे, गोल, नारंगी स्पॉट (पस्च्युल्स), दाने या सोराई का प्रकट होना, जो पत्तियों पर अनियमित रूप से बिखरे रहते हैं। ये पस्च्युल्स (सोराई) शायद ही कभी पत्ती के आवरण और तने पर बनते हैं। पत्ती रतुआ रोग में पीला रतुआ रोग की अपेक्षाकृत कुछ बड़े पस्च्युल्स बनते हैं। सोराई परिपक्वता के साथ भूरे रंग की हो जाती है। जैसे–जैसे रोग बढ़ता है, उसी स्फॉट (पस्च्युल) में टिलीयल अवस्था पाई जा सकती है। टीलिया छोटे, अंडाकार से रैखिक, काले और एपिडर्मिस से ढके होते हैं। ये टीलिया पत्ती आवरण पर भी पाए जाते हैं। पत्तियों में गंभीर रतुआ होने से उपज में कमी आती है। भूरा रतुआ अपेक्षाकृत गर्म मौसम सहन कर सकता है।

रोग कारक: यह रोग *पक्सीनिया रिकॉन्डिटा* नामक एक विषमयुग्मजी (हेटरोसियस) कवक के कारण होता है। वैकल्पिक पोषक, थैलिक्ट्रम की प्रजाति, अन्य देशों में कवक को प्रतिकूल मौसम–यापन में सहायता करती है। *थैलिक्ट्रम* की भूमिका भारत में स्पष्ट नहीं है। जनवरी की शुरुआत में, हिमालय की तलहटी की पहाड़ियों में और दक्षिण में तमिलनाडु और कर्नाटक के मैदानी इलाकों में भी यह रतुआ अच्छी तरह से स्थापित हो जाती है। निवेशद्रव्य (इनोकुलम) का पहला निर्माण कर्नाटक के मैदानी इलाकों में होता है और उत्तर की ओर महाराष्ट्र और मध्य प्रदेश में जाता है। इनोकुलम बिहार और उत्तर प्रदेश (वर्तमान में उत्तराखंड) की तलहटी की पहाड़ियों से उत्तरी मैदानों में चला जाता है। इसलिए, उत्तर भारत की पश्चिमी पहाड़ियों में भूरा रतुआ कुछ देर बाद दिखाई देता है। गर्म (15–20 डिग्री सेल्सियस) नम (बारिश या ओस) मौसम के दौरान रोग का विकास सबसे अनुकूल होता है।

रोग प्रबंधन

- **सस्य क्रियाएं:** स्वच्छ खेती अपनाएं। नत्रजन युक्त उर्वरकों की अत्यधिक मात्रा इस रोग को बढाने में सहायक होती है। अतः उर्वरकों का संतुलित प्रयोग करना चाहिए।
- **रोगरोधी किस्मों का प्रयोग:** भूरा रतुआ रोग का सबसे प्रभावशाली नियंत्रण रोग प्रतिरोधी किस्मों के प्रयोग से किया जा सकता है। इस भूरे रतुए रोग के विरूद्ध प्रतिरोधी विकसित नई किस्में डीबीडब्ल्यू 303, डीबीडब्ल्यू 222, डीबीडब्ल्यू 173, डीबीडब्ल्यू 187 आदि हैं।
- **रासायनिक उपचार:** रोग के दिखाई देने के तुरंत बाद फसल पर प्रोपिकॉनाजोल 25% ई.सी. अथवा टेबूकोनाजोल 25% ईसी अथवा ट्राइडिमेफॉन 25% डब्ल्यू. पी. का 0.1% की दर से छिडकाव अथवा टेबूकोनाजोल 25% + ट्राइफ्लोक्सीस्ट्रोबिन 50% डब्ल्यू जी का 0.06% की दर से छिड़काव करें। फसल पर कवकनाशी का यह छिड़काव 15–20 दिनों के अंतर पर रोग की उग्रता एवं प्रसार को ध्यान में रखकर दोहराया जा सकता है।

करनाल बंट: करनाल बंट रोग अंतरराष्ट्रीय स्तर पर गेहूँ का महत्वपूर्ण संगरोध कवक–जनित रोग है। यह रोग सबसे पहले मित्रा द्वारा ब्रिटिश कालीन भारत के बॉटनिकल रिसर्च स्टेशन, करनाल में 1931 में खोजा गया था। शुरूआत में यह रोग जम्मू–कश्मीर, हरियाणा, पंजाब व उत्तर प्रदेश के तराई भाग तक ही सीमित था। परन्तु नियामक प्रतिबंधों के न होने के कारण

गेहूँ की आवाजाही के चलते, यह रोग भारत की उत्तर–पश्चिमी क्षेत्र गेहूँ उत्पादक बेल्ट के अधिकाधिक क्षेत्रों में चला गया। वर्तमान में यह रोग अनेक देशों जैसे अफ़गानिस्तान, ईरान, इराक, नेपाल, पाकिस्तान, ब्राजील, मैक्सिको, दक्षिण अफ्रीका एवं संयुक्त राष्ट्र अमेरिका में दर्ज किया जा चुका है।

रोग लक्षणः खेत में रोग का निदान करना अत्यंत कठिन है क्योंकि पौधे की बाली में सभी दाने संक्रमित नहीं होते हैं और अधिकाँश संक्रमित दाने परिपक्वता से पहले लक्षण नहीं दिखाते हैं। फसल की कटाई के पश्चात रोग को आसानी से दृष्टि परीक्षण द्वारा पहचाना जा सकता है। यह रोग संक्रमित दानें पर गहरा काला रंग बनाता और रोगी दानों को कुचलने पर ये सड़ी हुई मछली की दुर्गन्ध देते हैं। आमतौर पर केवल दानें का अंकुर सिरा लक्षण दिखाता है, लेकिन कभी–कभी पूरा दाना रोगग्रस्त दिखाई दे सकता है। काले रंग के टीलियोबीजाणु बीज के कुछ भाग का स्थान ले लेते हैं जिससे दानें आंशिक या पूर्ण रूप से काले चूर्ण में बदल जाते हैं। दानों का काला पड़ना रोगजनक द्वारा कर्नेल ऊतक के एक टेलिओबीजाणु समूह में परिवर्तित होने का परिणाम है। कटाई–मडाई के दौरान पेरिकार्प फट जाता है और टेलिओस्पोर्स मिट्टी में जमा हो जाते हैं और बीज की सतह पर चिपक जाते हैं।

रोगजनकः करनाल बंट का रोगजनक बेसिडिओमाइसिट्स वर्ग का सदस्य *टिलेशिया इंडिका* है। इस रोगजनक को प्रारम्भ में 1931 में मित्रा ने *टिलेशिया इंडिका* नाम दिया परंतु बाद में मुंदकर ने इसे संलयन न करने वाले प्राथमिक स्पोरिडिया को उत्पादन करने के गुण के आधार पर *निवोसिया इंडिका* नाम दिया। फिशर (1957) इसे *निवोसिया* वंश में रखने से सहमत नहीं थे। वर्तमान में अधिकांश कवक विज्ञानी इस रोगजनक को *टिलेशिया इंडिका* के साथ–साथ *निवोसिया इंडिका* पर्याय के रूप में मानने पर एकमत हैं।

चित्र–3 करनाल बंट रोग से ग्रसित बाली व गेहूँ के दानें

रोग का विकास एवं फैलावः करनाल बंट रोग में तीनों माध्यम से प्रसार करने की क्षमता होती है। यह बीज जनित (संदूषित बीज), मृदा जनित व वायु जनित रोग है। ऐसा बहुत ही कम पादप रोगों में होता है। अतः यह अपने आप में एक विशेष रोग है। यह रोग मुख्य रूप से दूषित बीज या खेत उपकरण के माध्यम से फैलता है, हालांकि इसे हवा द्वारा कम दूरी पर भी ले जाया जा सकता है। कवक बीजाणु मृदा में कई वर्षों तक जीवित रह सकते हैं। अनुकूल मौसम में इनका अंकुरण होता है। एक बार बीजाणु अंकुरित होने के बाद, वे पुष्पन के समय गेहूँ के पुष्पों को संक्रमित करते हैं और कर्नल के भ्रूण के छोर पर बीजाणुओं के बड़े समूह को विकसित करते हैं। सम्पूर्ण कर्नेल कभी–कभी ही प्रभावित होता है। इसलिए इस रोग को आंशिक बंट या अधूरा बंट भी कहते हैं। आपेक्षिक आर्द्रता 70% से अधिक होना टीलियोबीजाणुओं के विकास के अनुकूल होता है। इसके अलावा, दिन का तापमान 18 से 24 डिग्री सेल्सियस और मिट्टी के तापमान का 17 से 21 डिग्री सेल्सियस की सीमा में होना करनाल बंट की गंभीरता बढ़ाने में सहायक होता है। एंथेसिस के दौरान बादल छाना या वर्षा रोग के विकास के लिए अनुकूल पर्यावरणीय परिस्थितियाँ हैं।

- **बीज का चुनावः** स्वस्थ रोगमुक्त करनाल बंट रहित फसल के लिए आवश्यक है कि बुवाई हेतू स्वस्थ एवं रोगमुक्त बीज का चयन किया जाए। बीज का स्रोत विश्वसनीय होना चाहिए जो कि रोग रहित खेत से तैयार किया गया हो।
- **पर्णीय छिडकावः** रोग की रोकथाम के लिए प्रोपीकोनाजोल, कार्बेन्डाजिम 50% डब्ल्यू. पी. और ट्रायएडिमैफ़ोन जैसे कवकनाशियों का देर से बूट और पुष्पन के बीच के समय छिड़काव करनाल बंट रोग को कम करने में प्रभावी होता है। पुष्पन या एंथेसिस के समय प्रोपीकोनाज़ोल 25 ईसी/0.1% का पर्णीय छिड़काव उपयोग करना लागत–प्रभावी होता है साथ ही यह रोग–आपतन में भी कमी लाता है।
- **सस्य क्रियाएंः** कुछ कृषि पद्धतियों जैसे कि अंतः फसलीकरण (इंटरक्रॉपिंग), फसल चक्र को अपनाना, पौधों के घनत्व को कम करने से रोग के विस्तार को कम करने में सहायता मिलती है। अगेती बुवाई की गयी फसल शुरुआती दौर की सुग्राही फसल अवस्था पर करनाल बंट के निवेशद्रव्य की कमी या छिटपुट निवेशद्रव्य (इनोकुलम) के कारण कम संवेदनशील होती है। रोग सम्भावित क्षेत्र में अतिसंवेदनशील किस्मों की बुवाई को हतोत्साहित करना। खेत के आस–पास खरपतवारों एवं कोलेट्रल पोषक पौधों को नही उगने देना चाहिए ।
- **रोगरोधी किस्मों का प्रयोगः** किसी भी फसल रोग के नियंत्रण का सबसे प्रभावशाली, लागत प्रभावी एवं पर्यावरण हितैषी उपाय उस रोग के विरूद्ध फसल की रोग रोधी किस्मों की बुवाई होता है। अतः करनाल बंट की रोकथाम के लिए क्षेत्र विशेष के लिए संस्तुत रोग

प्रतिरोधी किस्मों जैसे डीबीडब्ल्यू 173, डीबीडब्ल्यू 222, एचडी 3226 पीबीडब्ल्यू 502 की बुवाई करें।

चूर्णिल आसिता रोग: चूर्णिल आसिता या पावडरी मिल्डयू अथवा चूर्णी फफूंद या बुकनी रोग गेहूँ (*ट्रिटीकम ऐस्टीवम*) का सामान्य रोग है और संसार के लगभग सभी गेहूँ उत्पादक देशों में पाया जाता है। यह रोग उत्तरी भारत के सभी पर्वतों क्षेत्रों में सामान्य रूप से मिलता है तथा भारत के उन क्षेत्रों में यह अधिक हानि पहुँचाता है, जहाँ मौसम ठंडा एवम् मेघाच्छन रहता है परन्तु यह रोग मैदानी भागों में कदाचनिक (स्पोरोडिकली) रूप में मिलता है।

रोग के लक्षण: इस रोग का आक्रमण तरूण पौधों पर उस समय ही हो सकता है, जब उनसे पहली पत्ती बाहर निकलती है। प्रारम्भ में रोग के लक्षण पौधों की पत्तियों पर और बाद में दूसरे हरे भागों–बालियों व स्पाइकों पर सफेद चूर्ण के रूप में दिखाई देते हैं। सर्वप्रथम पत्तियों की ऊपरी सतह पर अनेक छोटे–छोटे सफेद धब्बे उत्पन्न होते हैं जो बाद में पत्ती की निचली सतह पर भी बन जाते हैं। अनुकूल वातावरण में यह धब्बे शीघ्रता से बढ़ते हैं और पर्णच्छद, तना, बाली के तुषों (ग्लूम्स) एवं शूकों (ऑन्स) पर भी फैल जाते हैं। आरम्भ में यह धब्बे सफेद चूर्ण की भाँति दिखाई देते हैं परन्तु बाद में इनका रंग धूसर या गहरा भूरा हो जाता है। यह सफेद चूर्णी धब्बे परजीवी कवक के कवकजाल एवं कोनिडियम (बीजाणुओं) के कारण होते हैं, परन्तु जब इन पर गहरे भूरे या काले बिन्दु के समान फलनकाय (क्लैस्टोथेसियम) बन जाते हैं, तब रंग धूसर या गहरा भूरा हो जाता है। इस रोग के कारण पौधे पूर्ण रूप से मरते नहीं

चित्र–4 तने पर चूर्णिल आसिता रोग के लक्षण

है अपितु रोगग्रस्त पौधों में पत्तियों की संख्या एवं आकार में कमी के कारण वह कमजोर और छोटे रह जाते हैं। रोगग्रस्त पत्तियाँ सिकुड़कर ऐंठने लगती हैं और विकृत हो जाती हैं तथा अंत में पत्तियों का रंग पीला व कत्थई होकर पत्ती सूख जाती है। पौधे के जिस स्थान पर परजीवी का कवकजाल फैला रहता है वहाँ की कोशिकाएँ मर जाती हैं और ऊतकक्षय (नेक्रोसिस) हो जाता है। रोग से प्रभावित पौधों में वाष्पोत्सर्जन एवं श्वसन क्रियाएँ तीव्र हो जाती हैं तथा प्रकाश–संश्लेषण क्रिया घट जाती है। रोगग्रस्त पौधों की बालियों में दानें छोटे एवं सिकुड़े हुए बनते हैं तथा यह आधी खाली भी रह जाती है। पौधों की वद्धि एवं उपज प्रभावित होती है। रोग की उग्र अवस्था में यह सफेद चूर्ण पर्णआच्छद, तना, बाली तथा शूकों पर भी पाया जाता है। इस सफेद चूर्ण में फफूंदी का जाल और बीजाणु होते हैं। बाद की अवस्था में सफेद चूर्ण का रंग बदल कर भूरा या गहरा भूरा हो जाता हैं। रोगी पौधों की पत्तियां सिकुड़ कर सूख जाती हैं, और पौधों की बढ़वार रुक जाती है।

रोगजनक: यह रोग *ब्लूमेरिया ग्रेमिनिस* एफ.स्पे. *ट्रिटिसी* (*पर्याय एरीसाइफी ग्रेमिनिस*) नामक फफूंद द्वारा लगता है। *एरीसाइफी ग्रेमिनिस* एक जैवपोषित या अविकल्पी बाह्यपरजीवी कवक है। इसका प्राथमिक कवकजाल परपोषी के भागों पर पृष्ठीय, बिखरे हुए, लम्बे से दीर्घवृत्तज एवं स्वतन्त्र धब्बे बनाता है, जो प्रारम्भ में सफेद होते हैं, परन्तु बाद में हल्के भूरे या धूसर रंग में बदल जाते हैं। इस कवकजाल के कवकतन्तुओं से छोटे–छोटे आसंगांग (अप्रेसोरिया) एवं चूषकांग (हॉस्टोरिया) बनते हैं। चूषकांग लम्बे अंगुल्याकार उपांगों (फिंगर–शेप्ड अपेंडेज्स) वाले दीर्घवृत्तीय एवं दोनों सिरों से फैले होते हैं। यह कवक बाह्यत्वचा कोशिकाओं के अतिरिक्त अन्य दूसरे परपोषी ऊतकों के भीतर आगे वृद्धि नहीं करता है। चूषकांगों को छोड़कर इस कवक के कवकजाल के साथ–साथ कोनिडियमधर, कोनिडियम एवं क्लाइस्टोथीसियम इत्यादि सभी पूर्ण रूप से परपोषी सतह के बाहर रहते हैं। जैसे ही फसल पकने को होती है कवक द्वारा क्लाइस्टोथीसियम बना दिये जाते हैं, जो गेहूँ के रोगग्रस्त अवशेषों एवं भूसे पर उपस्थित रहते हैं और इनमें भरे ऐस्कसबीजाणु अगले मौसम में प्राथमिक निवेशद्रव्य के रूप में कार्य करते हैं।

रोग का विकास एवं रोग प्रसार: गेहूँ की चूर्णिल आसिता निम्न आपेक्षिक आर्द्रता के साथ–साथ उच्च आपेक्षिक आर्द्रता में भी भली प्रकार उत्पन्न होती है अर्थात् यह शुष्क एवं आर्द्र दोनों परिस्थितियों में फैलती है। कोनिडियम का अंकुरण 5–9° सी तापमान पर अधिक शीघ्रता से आरम्भ होता है। कवकजाल की वृद्धि 20–21 डिग्री सेल्सियस तापमान पर सबसे अच्छी होती है। 30° या इससे अधिक का तापमान इस रोग के विकास पर प्रतिकूल प्रभाव डालता है। भूमि में क्लाइस्टोथीसियम निम्न तापमानों पर 13 वर्षों तक जीवित रह सकते हैं। ऐस्कसबीजाणु 22–27 डिग्री

सेल्सियस तापमान पर तेजी से बनते हैं और इनके अंकुरण के लिये 16 से 22 डिग्री सेल्सियस तापमान अनुकूलतम और 24 डिग्री सेल्सियस तापमान उच्चतम होता है। संक्रमण तथा रोग के बढ़ने के लिये अनुकूलतम तापमान 20 डिग्री सेल्सियस है। कवक की वृद्धि के लिये प्रकाश आवश्यक नहीं है। यह रोग नाइट्रोजन की अधिकता से बढ़ता है, जबकि फॉस्फोरस एवं पोटाश की मात्रा संतुलित होने पर इस रोग का प्रकोप कम होता है।

रोग प्रबंधन

- **सस्य क्रियाएं:** स्वच्छ खेती अपनाएं। फसल की कटाई के पश्चात् खेत में पड़े रोगग्रस्त पौध–अवशेषों को एकत्र करके जला देना चाहिये। नत्रजन युक्त उर्वरकों की अत्यधिक मात्रा चूर्णिल आसिता रोग को बढ़ाने में सहायक होती है। अतः संतुलित उर्वरकों का प्रयोग करना चाहिए। जिन निचले खेतों में रोग अधिक उत्पन्न होता हो उनमें लगभग 3 वर्षों तक गैर–अनाज फसलों को उगाना चाहिये।
- **रोगरोधी किस्मों का प्रयोग:** सदैव रोगरोधी या रोग सहिष्णु किस्में जैसे डीबीडब्ल्यू 173 ही उगाना चाहिये।
- **रासायनिक उपचार:** प्रारंभिक लक्षण दिखने पर प्रोपीकोनाजोल (1 मि.ली./लीटर पानी में) का छिड़काव करें। रोग की उग्रावस्था में 12 से 15 दिन के बाद प्रोपीकोनाजोल का एक बार पुनः निर्धारित मात्रा में छिड़काव करें।

अनावृत कंड (लूज स्मट) रोग: इस रोग को गेहूँ का खुला कंडवा, खुली कंगियारी रोग अथवा अनावृत कंड आदि नामों से भी जाना जाता है। कवक द्वारा होने वाला यह रोग अंतः बीजजनित रोग है।

चित्र–5 अनावृत कंड (खुला कंडवा) रोग से ग्रसित गेहूँ की बालियां

रोग के लक्षण: इस रोग के लक्षण केवल बालियां निकलने पर दृष्टिगत होते हैं। इस रोग में पूरा पुष्पक्रम (रैचिस को छोड़कर) स्मट बीजाणुओं के काले चूर्णी समूह में परिवर्तित हो जाता है। यह चूर्णी समूह प्रारम्भ में पतली कोमल धूसर झिल्ली से ढका होता है जो शीघ्र ही फट जाती है और बडी संख्या में बीजाणु वातावरण में फैल जाते हैं। ये काले बीजाणु हवा द्वारा दूर स्वस्थ पौंधों तक पहुंच जाते हैं जहाँ ये अपना नया संक्रमण कर सकते हैं।

रोगजनक: यह रोग एक कवक *अस्टीलैगो सेगेटम* प्रजाति *ट्रिटीसी* द्वारा उत्पन्न किया जाता है। हवा और मध्यम बारिश, साथ ही ठंडा तापमान (16–22 डिग्री सेल्सियस) रोग फैलाने के लिए आदर्श होते हैं। संक्रमित बाली से टीलियोबीजाणु (टीलियोस्पोर्स) हवा द्वारा स्वस्थ पौधों के खुले पुष्पों तक पहुंचते हैं, और रोग चक्र जारी रहता है।

रोग का विकास एवं रोग प्रसार: अनावृत कंडवा (लूज स्मट) रोगजनक टीलियोबीजाणुओं को हवा द्वारा खुले पुष्पों तक उडाकर पहुंचाया जाता है और ये अंडाशय को या तो स्टिग्मा के माध्यम से या सीधे अंडाशय की भित्ति के माध्यम से संक्रमित करते हैं। एक खुले पुष्पक (फ्लोरेट) में उतरने के बाद, टीलियोबीजाणु बेसिडियोबीजाणु को जन्म देते हैं। बेसिडियोबीजाणु वही अंकुरण करते हैं। दो संगत बेसिडियोस्पोर के हाइफे फिर एक द्विकेंद्रकीय चरण को स्थापित करने के लिए संलयन (फ्यूज) करते हैं। अंडाशय के अंदर अंकुरण के बाद, कवकजाल बीज में विकासशील भ्रूण पर आक्रमण करता है। कवक बीज में अगले बुवाई मौसम तक जीवित रहता है। बुवाई के बाद जैसे–जैसे नया पौधा बढ़ता है, इसके साथ कवक बढ़ता है। एक बार जब फूलों के बनने का समय होता है, तो फूलों के स्थान पर टीलियोबीजाणु उत्पन्न होते हैं और विकसित होते हैं जहाँ कि बीज अथवा दानों को बनना था। रोगी पौधे गेहूँ के स्वस्थ पौधों की तुलना में लंबे होते हैं और उनमें पहले बालियां निकल आती हैं। इससे संक्रमित पौधों को यह फायदा होता है कि असंक्रमित पौधों के फूल संक्रमण के लिए अधिक शारीरिक और रूपात्मक रूप से अतिसंवेदनशील होते हैं। हवा और मध्यम बारिश, साथ ही साथ ठंडे तापमान (16 से 22 डिग्री सेल्सियस) बीजाणुओं के फैलाव के लिए आदर्श होते हैं। रोगी बालियों से टीलियोबीजाणु स्वस्थ पौधों के खुले पुष्पों तक पहुचते हैं और इस प्रकार रोग विकास चलता रहता है।

- **बीज का चुनाव:** स्वस्थ एवं प्रमाणित बीज ही बोने चाहिए। बीज का स्रोत विश्वसनीय होना चाहिए जो कि रोग रहित खेत से तैयार किया गया हो।
- **बीज उपचार:** बीज बोने से पहले, बीज में 2.5 ग्राम प्रति किग्रा के हिसाब से कार्बोक्सीन (37.5%) + थीरम (37.5%) या कार्बेन्डाजिम (50% डब्ल्यू.पी.) से बीज को शोधित कर लेना चाहिए।
- मई–जून के माह में बीज को पानी में 4 घंटे (सुबह 6 बजे से 10 बजे तक) भिगोने के बाद कड़ी धूप में अच्छी तरह सुखाकर अगले साल बोने के लिए भंडार में सुरक्षित रखा

जा सकता है। पानी में भिगोने से बीज में पड़ा कवकजाल क्रियाशील हो जाता है, जो कड़ी धूप में सुखाने पर मर जाता है। ऐसे बीज को अगले फसल मौसम में बोने से रोग नहीं पनपता है।

- **सस्य क्रियाएं:** यदि बीज के लिए फसल बोई गई है, तो बाली निकलते समय उसका निरीक्षण करते रहना चाहिए तथा जैसे ही कंडुआ ग्रस्त बालियां दिखाई दें, उन्हें किसी कागज की थैली से ढक कर पौधे को उखाड़ कर जला दें या मिट्टी में दबा दें।
- **रोगरोधी किस्मों का प्रयोग:** किसी भी फसल रोग के नियंत्रण का सबसे प्रभावशाली, लागत प्रभावी एवं पर्यावरण हितैषी उपाय उस रोग के विरूद्ध फसल की

चित्र–6 अ: गेहूँ का ध्वज कंड (फ्लैग स्मट) रोग

चित्र–6 आ: गेहूँ का ध्वज कंड (फ्लैग स्मट) रोग

रोग रोधी किस्मों की बुवाई होता है। अतः अनावृत कंडुवा की रोकथाम के लिए क्षेत्र विशेष के लिए संस्तुत रोग प्रतिरोधी किस्मों जैसे डीबीडब्ल्यू 222 की बुवाई करें ।

गेहूँ का ध्वज कंड (फ्लैग स्मट) रोग

रोग लक्षण: इस रोग में पत्तियों पर चाँदी के रंग के धब्बें बीजाणुधानी पुंजों के रूप में दिखाई पड़ते हैं, जो कवक की गहरे भूरे रंग की बीजाणुधानियों से भरे होते हैं। संक्रमित पत्तियों और पत्तियों के आवरण पर बने यें धब्बे प्रारम्भ में सफेद से पीली धारियाँ बनाते हैं। ये धारियाँ धूसर और बाद में काली हो जाती हैं। बाद में शिराओं के बीच पत्तियों पर काले, संकरे लम्बे फफोले दिखाई देते हैं। ये फफोले मेजबान एपिडर्मिस से ढके होते हैं, जो टूटने पर काले बीजाणु समूह प्रदर्शित करते हैं और पत्तियों को रिबन में विभाजित करते हैं। संक्रमित पत्तियाँ गिर सकती हैं और बीजाणुजनन (स्पोरुलेशन) होने से पहले पतली और छोटी रह सकती हैं। ये काली धारियाँ तने पर भी हो सकती हैं, जिससे इंटरनोड्स पर बढ़वार में कमी हो जाती है और यह बौना हो जाता है। इस प्रकार संक्रमित गेहूँ के पौधे रूखे और नुकीले होते हैं, अक्सर स्वस्थ पौधों की तुलना में अधिक कल्ले (टिलर्स) वाले होते हैं, जो उन्हें घास जैसा रूप देता है। पुष्पक्रम अवरुद्ध, विकृत, और अक्सर बाँझ होता है, प्राक्ष (रैचिस) पर परिपक्वता पर काली धारियाँ बनती हैं। बाली का विकास आमतौर पर पत्ती के झुंड से बाहर निकलने से पहले रुक जाता है, जिससे संक्रमित पौधे बीज पैदा नहीं करते हैं और वें समय से पहले ही मर जाते हैं।

रोग का विकास एवं फैलाव: रोगजनक टीलियोबीजाणु उत्पन्न करता है, जो हवा, कृषि यंत्रों या पशुओं के द्वारा मिट्टी से वितरित किए जा सकते हैं। मृदा में एक द्विकेंद्रकीय टीलियोबीजाणु चार बेसिडियोबीजाणुओं को उत्पन्न करता है। बेसिडियोबीजाणु नये पौधों के ऊपर पर अंकुरण करता है और प्रत्येक कवकतंतु एक संगत कवकतंतु के साथ कोशिकाद्रव्य लयन (प्लास्मोगैमी) करके कवक के द्विकेंद्रकीय (डाइकैरियोटिक) स्थिति को फिर से स्थापित करता है। कवकतंतु एप्रेसोरिया बनाता है जो एपिडर्मल ऊतक के माध्यम से उगते हुए बीज के अंकुर के कोइलोप्टाइल में प्रवेश करता है, फिर पत्तियों के संवहनी बंडलों के बीच कवकतंतु बढ़ता है। कुछ कवकतंतु कोशिकाएँ कंड सोरई को जन्म देती हैं, जिसमें टीलियोस्पोर्स होते हैं, जो हवा द्वारा पत्ती ऊतक से बाहर निकलते हैं। टीलियोस्पोर मिट्टी में विश्राम करने के लिए आते हैं, और जब स्थिति सही होती है, तो वे अधिक बेसिडियोस्पोर्स को जन्म देते हैं, जिससे संक्रमण फैलता है।

वैकल्पिक रूप से, टेलियोबीजाणु बीज में तब बन सकते हैं जब माइसेलिया पूरे पौधे में उगता है, उस स्थिति में वे बीज के भीतर अंकुरित होकर फिर से बेसिडियोबीजाणु उत्पन्न करके नए संक्रमण को जन्म देते हैं। टेलियोस्पोर्स मिट्टी में, मृत पौधे के ऊतकों और बीज में उत्तरजीवी होते हैं। ये बीजाणु 3–7 वर्षों तक अंकुरण जीवटता बनाए रखते हैं।

रोगजनकः यह रोग *यूरोसिसटिस एग्रोपाइरी* नामक कवक से होता है। रोगजनक के टीलियोबीजाणु (टीलियोस्पॉर्स) मृदा, पुराने पादप ऊतक और बीज में प्रतिकूल मौसम व्यतीत (ओवरविंटर) करते हैं। यें टीलियोबीजाणु 3–7 वर्षों तक जीवित रह सकते हैं।

रोग की रोकथाम

- **सस्य क्रियाएंः** देरी से बिजाई न करें। गैर–पोषक फसलों के साथ फसल चक्र अपनाएं। रोगग्रस्त पौधों को खेत से सावधानीपूर्वक उखाड़कर नष्ट कर दें।
- **बीज उपचारः** बीज को कार्बोक्सीन (75% डब्ल्यू.पी.) या कार्बोक्सीन (37.5%) + थीरम (37.5%) या थीरम 75% घुलनशील पॉवडर से 2.0–2.5 ग्राम प्रति किग्रा बीज की दर से अथवा टेबूकोनाजोल 2 डीएस से 1.25 ग्राम प्रति किग्रा बीज की दर से उपचारित करें।
- **रोगरोधी किस्मों का प्रयोगः** क्षेत्र विशेष के लिए संस्तुत रोगरोधी किस्मों की बुवाई करें।

गेहूँ का फ्यूजेरियम हेड स्कैब रोगः यह रोग फ्यूजेरियम हेड ब्लाइट रोग के नाम से जाना जाता है।

चित्र–7 गेहूँ का फ्यूजेरियम हेड स्कैब रोग

रोग लक्षणः प्रारंभिक लक्षणों में छोटे, जलासिक्त धब्बे बालियों के आधार पर या स्पाईक्स के बीच में या फ्लोरट पर बनते हैं और धीरे–धीरे पूरी बाली पर फैल जाते हैं, जिसे समय से पहले बालियों को 'सफेद' या 'विरंजन' के रूप में देखा जा सकता है। गर्म और नम हालत में रोगज़नक के गुलाबी बीजाणुओं (स्पोर्स) को संक्रमित ग्लूम्स और स्पाईक्स के बीच में या आधार पर देखा जा सकता है। बीमारी की प्रगति पर, दाने सूखे, सिकुड़े हुए, खुरदरी सतह के, फीके सफेद से हल्के–भूरे रंग के बनते हैं। ऐसे हल्के वजन के संक्रमित कर्नेल को आमतौर पर 'टॉम्बस्टोन' कहा जाता है।

रोगजनकः हालांकि यह रोग कई प्रजातियों के रोगजनक से उत्पन्न होने का दावा किया जाता है। लेकिन *फ्यूजेरियम ग्रैमिनिएरम* इस रोग का मुख्य कारण है। गर्म और आर्द्र जलवायु रोग के विकास के लिए अनुकूल होती है। हालांकि वर्तमान में, भारत में इस बीमारी का मामूली महत्व है, यह पंजाब और हिमाचल प्रदेश के कुछ क्षेत्रों से सूचित किया गया है।

रोग विकास एवं फैलावः गर्म और नम जलवायु बीमारी के अनुकूल है, यद्यपि वर्तमान में यह रोग भारत में मामूली महत्व का है और पंजाब और हिमाचल प्रदेश के कुछ क्षेत्रों में पाया जाता है।

रोग की रोकथाम

- **सस्य क्रियाएंः** खेत स्वच्छता के सिद्धांत का पालन करें। पूर्व की फसल के अवशेषों को खेत से निकालकर नष्ट कर दें।
- **बीज चयनः** फसल बुवाई के लिए प्रमाणित और बीमारीमुक्त बीज का प्रयोग करें।
- **रोगरोधी किस्मों का प्रयोगः** क्षेत्र विशेष के लिए संस्तुत की गई रोग प्रतिरोधी किस्मों की बुवाई करें।
- **बीज उपचारः** बीजों को कार्बोक्सीन या कार्बेन्डाजिम के साथ 2.5 ग्राम/किग्रा. या टेबूकोनाजोल 1.25 ग्राम/कि.ग्रा. बीज की दर से उपचारित करें।

गेहूँ का स्पॉट ब्लॉच/लीफ ब्लाइट रोग

रोग के लक्षणः स्पॉट ब्लॉच रोगज़नक़ पौधों के सभी भागों

चित्र–8 गेहूँ का स्पॉट ब्लॉच या लीफ ब्लाइट रोग

अर्थात् इंटरनोड्स, तना, नोड्स, पत्तियों, तुष, ग्लूम्स और बीज में रोग के लक्षण पैदा करने में सक्षम है। रोगज़नक़ पौधे के विकास के विभिन्न चरणों में अंकुरण–पूर्व और अंकुरण–बाद आर्द्रगलन, अंकुर झुलसा, जड़ सड़ना, पत्ती धब्बे और बाली झुलसा (स्पाइक ब्लाइट) का कारण बनता है। पत्तियों पर

शुरुआती विक्षत छोटे, गहरे भूरे रंग के 1 से 2 मिमी लंबे विक्षत होते हैं जो बिना हरिमाविहीन परिधि के होते हैं। रोग सुग्राही किस्मों में यें धब्बें या विक्षत जल्दी बढ़कर हल्के भूरे से गहरे भूरे रंग के अंडाकार अथवा लम्बें ब्लोच्स में बदल जाते हैं जो पत्ती झुलसा जैसा प्रतीत होते हैं। अनुकूल वातावरण में बालियां (स्पाइकलेट्स) संक्रमित हो जाती है जिससे दानों का आकार सिकुड़ जाता है दानों में "ब्लैक पोइंट" बन सकता है।

स्पॉट ब्लोच रोग का रोगजनक: शूमेकर ने सन 1959 में उन हेल्मिन्थोस्पोरियम प्रजातियों जिसमें चंद्राकार (फ्यूसॉइड), सीधे, या घुमावदार कोनिडिया के दोनों छोर पर एक अंकुरण नली (जर्म ट्यूब) होती है और बीजाणु (कोनिडिया) इसके द्वारा अंकुरित होते हैं, के लिए सामान्य नाम *बाइपोलारिस* का प्रस्ताव रखा था। *बाइपोलैरिस सोरोकिनियाना* (पर्याय=*ड्रेक्स्लेरा सोरोकिनियाना; हेल्मिन्थोस्पोरियम सैटिवम*) एक डिमेटैसियस हाइफोमाइसिटस कवक है। रोगज़नक़ की पूर्ण अवस्था को *कोक्लिओबोलस सैटिवस* के रूप में पहचाना गया है। रोगजनक संवर्धन माध्यम पर हल्की भूरी से गहरी भूरी रंग की कॉलोनी विकसित कर सकता है। पुराने वैज्ञानिक साहित्य में *बाइपोलैरिस सोरोकिनियाना* को *हेल्मिन्थोस्पोरियम सोरोकिनिअनम, ड्रेक्स्लेरा सोरोकिनियाना* और *हेल्मिन्थोस्पोरियम सैटिवम* आदि नामों से भी जाना जाता है। इसका कोनिडिया अथवा बीजाणु मोटी भित्तियों वाला थोड़ा घुमावदार आकार में 120 मिलीमाइक्रोन x12–20 मिलीमाइक्रोन का होता है। कोनिडिया में सामान्यतः 3–9 पट (सेप्टा) होते है। एक कोनिडियोफोर पर केवल (मोनोस्पोरिक कोनिडियोफोर) अथवा एक से अधिक (पॉलीस्पोरिक कोनिडियोफोर) बीजाणु उत्पन्न हो सकते हैं।

रोग का विकास एवं फैलाव: अधिकांश *हेल्मिंथस्पोरियम* प्रजातियां मध्यम से गर्म तापमान (18° से 32° सेल्सियस) और विशेष रूप से आर्द्र मौसम में रोग पैदा करने में सक्षम होती हैं। उच्च तापमान (सबसे अधिक ठंडे महीनें में 17 डिग्री सेल्सियस से अधिक तापमान) और उच्च सापेक्ष आर्द्रता की विशेषता वाले वातावरण में गेहूँ की सबसे गंभीर बीमारी संभवतः पत्ती स्पॉट ब्लॉच झुलसा रोग है। संक्रमित बीज, संक्रमित फसल अवशेष, स्वयंसेवी पौधे, द्वितीयक मेजबान और मिट्टी में मुक्त सुसुप्त बीजाणु *बाइपोलैरिस सोरोकिनियाना* निवेशद्रव्य (इनोकुलम) के स्रोत के रूप में कार्य करते हैं। यह हेमीबायोट्रोफिक कवक आमतौर पर फसल बढ़वार के मौसम के दौरान ऊतकक्षयी (नेक्रोटिक) ऊतकों पर बीजाणुजनन करता है और बाली तक पहुंचता है, अंत में बीज में लौटता है, जो रोगजनक अस्तित्व के लिए सबसे कुशल तंत्र सुनिश्चित करता है। जब इस तरह के बीज खेत में बोए जाते हैं, तो प्रांकुर–चोल (कोलॉप्टाइल) आसानी से संक्रमित हो जाता है जिसके परिणामस्वरूप अंकुर संक्रमण होता है, जो बढ़ती फसल के लिए निवेशद्रव्य (इनोकुलम) प्रदान करता है। बुवाई के तुरंत बाद, नम बीज पर कवक बढ़ना शुरू हो जाता है, और पहली पत्ती के चरण के रूप में अंकुर निकलने के तुरंत बाद, सीधे सूर्य के प्रकाश की उपस्थिति में बीजाणुजनन प्रेरित होता है। इसके बाद, अनुकूल परिस्थितियों में रोगज़नक़ पत्तियों और स्पाइक्स को त्वरित नुकसान पहुंचाते हैं जिससे उपज हानि होती है। पहली पत्तियों पर उत्पन्न होने वाले कोनिडिया को बारिश के छींटे और हवा से दूसरी स्वस्थ पत्तियों फैल सकते हैं, इस प्रकार बहुचक्रीय (पॉलीसाइक्लिक) महामारी का निर्माण होता है। गेहूँ के अलावा *बी. सोरोकिनियाना* के मेजबान के रूप में बड़ी संख्या में घास हैं जो एक क्षेत्र में सह–अस्तित्व में हैं, लेकिन भारतीय उपमहाद्वीप में इस बीमारी को बनाएं रखने में उनकी भूमिका अभी भी ज्यादा स्पष्ट नहीं है।

रोग की रोकथाम

- **बीज का चयन:** स्वस्थ रोगमुक्त फसल के लिए आवश्यक है कि बुवाई हेतू स्वस्थ एवं रोगमुक्त बीज का चयन किया जाए। बीज का स्रोत विश्वसनीय होना चाहिए जो कि रोग रहित खेत से तैयार किया गया हो।
- **बीज का उपचार:** फफूंदनाशकों के साथ बीज उपचार से अंकुरित बीज और पौध को रोगज़नकों से बचाने में मदद मिलेगी, जो अंकुर को झुलसाते हैं। कवकनाशी कार्बोक्सिन 37.5% + थाइरम 37.5% के द्वारा 2.5 ग्राम प्रति किग्रा बीज की दर से बीज उपचार करना चाहिए। अन्य प्रभावी कवकनाशियों में कैप्टन, मैनकोज़ेब, टेबूकोनाजोल और ट्रायडाइमेफ़ोन आदि में शामिल हैं।
- **सस्य क्रियाएं:** कुछ कृषि पद्धतियों जैसे कि फसल चक्र को अपनाना, सही मात्रा में उर्वरक विशेषतः नत्रजनयुक्त उर्वरक का प्रयोग व फसल अवशेषों को नष्ट करने से रोग के विस्तार को कम करने में सहायता मिलती है। संस्तुत बीज दर व पौध अंतरण द्वारा पौधों के घनत्व को कम करने से रोग के विस्तार को कम करने में सहायता मिलती है। रोग सम्भावित क्षेत्र में अतिसंवेदनशील किस्मों की बुवाई को हतोत्साहित करें। खेत के आस–पास खरपतवारों एवं कोलेट्रल पोषक पौधों को नहीं उगने देना चाहिए ।
- **रोगरोधी किस्मों का प्रयोग:** किसी भी फसल रोग के नियंत्रण का सबसे प्रभावशाली, लागत प्रभावी एवं पर्यावरण हितैषी उपाय उस रोग के विरूद्ध फसल की रोग रोधी किस्मों की बुवाई होता है। अतः स्पॉट ब्लोच की रोकथाम के लिए क्षेत्र विशेष के लिए संस्तुत रोग प्रतिरोधी किस्मों की बुवाई करें।
- **पर्णीय छिड़काव:** रोग की रोकथाम के लिए क्रेसोक्सिम मिथाइल 44.3% प्रोपिकोनाज़ोल, मैंकोजेब 75%, जिनेब 75%, टेबूकॉनाजोल 25.9%, कार्बेन्डाजिम 50%, जैसे कवकनाशी रोग के पर्णीय अवस्था का प्रभावी नियंत्रण प्रदान करते हैं। उचित कवकनाशी का प्रयोग एवं इसकी मात्रा का निर्धारण विशेषज्ञ की सलाह के अनुसार करें।

तालिका 1: विभिन्न रोगजनकों द्वारा गेहूँ में उत्पन्न कुछ प्रमुख रोग

फसल	रोगजनकों के प्रकार	रोग का नाम	रोगजनक
गेहूँ (*ट्रिटीकम एस्टीवम* एल.)	कवक	पीला रतुआ या धारीदार रतुआ	*पक्सीनिया स्ट्राइफॉर्मिस एफ स्पे.ट्रिटिसी*
		भूरा रतुआ या पत्ती रतुआ रोग	*पक्सीनिया रिकॉन्डिटा*
		करनाल बंट रोग	*टिलेशिया इंडिका*
		चूर्णिल आसिता रोग	*ब्लूमेरिया ग्रेमिनिस*
		अनावृत कंड (लूज स्मट) रोग	*अस्टीलैगो सेगेटम प्रजाति ट्रिटिसी*
		ध्वज कंड (फ्लैग स्मट) रोग	*यूरोसिस्टिस एग्रोपायरी*
		स्पॉट ब्लोच रोग	*बाइपोलैरिस सोरोकिनियाना*
		हेड स्कैब/हेड ब्लाइट रोग	*फ्यूजेरियम ग्रैमिनिएरम*
		आल्टर्नेरिया लीफ ब्लाइट रोग	*आल्टर्नेरिया ट्रिटीसिना*
	जीवाणु	टुंडू रोग	*रैथायीबैक्टर ट्रिटीसी*
		ब्लैक चैफ रोग	*जैंथोमोनास कैम्पेस्ट्रिस* पैथोवार *ट्रांसलूसेंस*
	सूत्रकृमि	इयर कॉकल रोग	*एंगुइना ट्रिटीसी*

गन्ना प्रसंस्करण एवं आय सृजन

सुरेन्द्र सिंह[1], मंगल सिंह[1], रेखा मलिक[1], अनुज कुमार[1], आलोक शिव[2] एवं मुकुन्द कुमार[2]
[1]भाकृअनुप–भारतीय गेहूँ एवँ जौ अनुसंधान संस्थान, करनाल
[2]भाकृअनुप–भारतीय गन्ना अनुसंधान संस्थान, लखनऊ

गन्ना भारत की प्रमुख व्यावसायिक फसलों में से एक है, जो दूसरे सबसे बड़े संगठित कृषि उद्योग के रूप में खुद को बनाए रखते हुए राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था में महत्वपूर्ण योगदान देता है। भारत ब्राजील के बाद दुनिया में दूसरा सबसे बड़ा गन्ना व चीनी उत्पादक देश है। भारत में गन्ने का लगभग 78 प्रतिशत उपयोग चीनी उत्पादन एवं 15 प्रतिशत फसल का उपयोग मिठाइयों (गुड़) के उत्पादन के लिए किया जाता है, जबकि शेष 7 प्रतिशत गन्ने का उपयोग जैव–ईंधन बनाने में किया जाता है। भारत में चीनी के कुल उत्पादन का 94 प्रतिशत हिस्सा महाराष्ट्र, उत्तर प्रदेश, आंध्र प्रदेश, गुजरात, कर्नाटक तमिलनाडु, बिहार, पंजाब एवं हरियाणा में उत्पादित होता है।

भारत में गन्ने की खेती लगभग 54 लाख हैक्टर क्षेत्रफल पर की जाती है। वर्ष 2020–21 के दौरान लगभग 306.65 लाख टन चीनी का उत्पादन हुआ। देश के लगभग 50 मिलियन से अधिक किसान एवं उनके परिवार अपनी आजीविका के लिए गन्ने की फसल पर निर्भर हैं। चीनी उद्योग इन नौ राज्यों की लगभग 12 प्रतिशत ग्रामीण आबादी को प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रूप से रोजगार प्रदान करता है। नीति आयोग, 2019 अनुसार प्रत्येक किसान हर वर्ष 2.9 मीट्रिक टन चीनी के उत्पादन में अपना योगदान देता है। चीनी के अतिरिक्त गन्ने के प्रसंस्करण से गुड़ भी प्राप्त होता है जो एक प्राकृतिक स्वीटनर है। इससे अनेकों उप–उत्पाद जैसे गुड़ की चाय, गुड़ की खीर, कैंडीज, सीरप, डेजर्ट्स, गुड़ वाला दूध, गुड़ का पानी, गुड़ से बनी मिठाई, एल्कोहल (रम) आदि पदार्थ तैयार किए जा सकते हैं।

चित्र 1: गन्ने की फसल

गन्ने का व्यावसायिक उपयोग

एक बार खेत से काटा गया गन्ना पिराई/चीनी मिलों में चला जाता है। इन चीनी मिलों में सुक्रोज सामग्री को संसाधित करके मुख्य उत्पाद रिफाइंड चीनी प्राप्त होती है। गन्ने के प्रसंस्करण के दौरान उप उत्पादों का एक सेट तैयार किया जाता है, जिसमें खोई, शीरा, एथेनॉल एवं फिल्टर मड/प्रेस मड आदि शामिल हैं। एलन एवं सहयोगियों के अनुसार 100 टन गन्ना 14.3 टन कच्ची चीनी, 30 टन खोई, 5.2 टन फिल्टर केक, 2.6 टन गुड़ एवं 50.7 टन अपशिष्ट जल का उत्पादन करता है। पारम्परिक एवं आधुनिक तकनीक के उपयोग से गन्ने से बनने वाले कुछ उप–उत्पादों का विस्तृत वर्णन निम्नलिखित है।

गन्ने का जूस

गन्ने की पारम्परिक एवं आधुनिक कोल्हू से पिराई करने के बाद इसके जूस को आसानी से अलग किया जा सकता है। प्राकृतिक मिठास से भरपूर गन्ने का रस बहुत ही सेहतमंद एवं गुणकारी पेय है। यह कार्बोहाइड्रेट्स, प्रोटीन, कैल्शियम, पोटैशियम, आयरन, मैग्निशियम एवं फॉस्फोरस जैसे आवश्यक पोषक तत्वों का समृद्ध स्रोत हैं। गर्मियों में ठंडी राहत देने के साथ–साथ मधुमेह एवं कैंसर जैसी घातक बीमारियों से लड़ने की शक्ति प्रदान करता है। गन्ने के जूस में अल्फा हाइड्रॉक्सी एसिड तत्व होने के कारण त्वचा सम्बन्धित विकारों को दूर करता है। गन्ने के ताजा जूस में नीबू, पोदीना एवं हल्का सेंधा नमक मिलाकर पीने में यह और भी अधिक स्वादिष्ट लगता है। गन्ने के जूस की उपलब्धता आसान एवं सुनिश्चित करने के लिए तमिलनाडु कृषि विश्वविद्यालय, कोयम्बटूर, तमिलनाडु ने गन्ने के जूस को बोतल में भरने की तकनीकी विकसित की है। इस तकनीक से किसानों एवं उपभोक्ता दोनों को लाभ मिल सकेगा।

चित्र 2 : गन्ने का जूस

गुड़ (जैगरी)

खाद्य पदार्थों में उपयोग किए जाने वाला गुड़ गन्ना आधारित वह उत्पाद है, जिसका सर्दियों में खाना खाने के

बाद सदियों से सेवन किया जाता है। इसका स्वाद मीठा एवं स्वभाव ठोस होता है, जिसे मन चाहे रंग एवं आकार में ढाला जा सकता है। प्राकृतिक पदार्थों में गुड़ सबसे अधिक मीठा होता है। अन्य मीठे पदार्थों की तुलना गुड़ से ही की जाती है। आज भी गन्ने से रस निकालने एवं रस से गुड़ बनाने में पारम्परिक विधि को ही अपनाया जाता है। एग्रोटेक्नॉलॉजी प्रकाशित एक लेख के अनुसार इसमें कई आवश्यक विटामिन एवं अनेक सूक्ष्म पोषक तत्व जैसे कैल्शियम, आयरन, जिंक व फॉस्फोरस आदि होते हैं। इसलिए इस गुड़ का सेवन काफी फायदेमंद माना जाता है। संक्षेप में कहा जाय तो गुड़ खाद्य पदार्थ कम और औषधि अधिक है। इन्हीं कारणों से इसे अमृत तुल्य कहा जाता है। गन्ने से तरल (राब) एवं पाउडर (शक्कर) के रूप में भी गुड़ तैयार किया जा सकता है। भारतीय बाजारों में यह सभी प्रकार के गुड़ आसानी से उपलब्ध हो जाते हैं।

गुड़ को और अधिक पौष्टिक बनाने के लिए आँवला 75 ग्राम/किलोग्राम, हल्दी 12 ग्राम/किलोग्राम, अजवाइन 15 ग्राम/किलोग्राम, हींग 1 ग्राम/किलोग्राम, सौंठ 30 ग्राम/किलोग्राम से मूल्य सम्वर्धन किया जा सकता है। आवला पावडर के मिलाने से गुड़ में विटामिन सी की मात्रा को बढ़ाया जा सकता है। हल्दी पाउडर मिलाने से प्रतिरोधक क्षमता में वृद्धि होने के कारण दर्द एवं चोट में राहत मिलती है। अजवाइन व हींग मिलाने से पेट सम्बन्धी विकार दूर करने में मदद मिलती है, जबकि सौंठ मिले गुण का सेवन करने से सर्दी–जुकाम में आराम मिलता है।

चित्र 3 : गुड़ की कटाई करते हुए

राब/रब्बी/तरल गुड़

गन्ने के रस से एक खास कणों से युक्त गाढ़ा तरल पदार्थ तैयार किया जाता है, जिसे राब या रब्बी के नाम से जानते हैं। यह प्राकृतिक मल्टीविटामिन, जिंक एवं आयरन से भरपूर बहुत ही गुणकारी अमृत के समान खाद्य पदार्थ होता है। रोगी निरोगी बाल, युवा, वृद्ध किसी भी आयु का व्यक्ति इसका सेवन कर सकता है। चूश्य, पेय, लेह्य, भोज्य, भक्ष्य एवं चर्व्य पाचन की दृष्टि से सुश्रुत ने छः प्रकार के भोजन के बारे में बताया है। चूश्य पदार्थ सबसे अधिक सुपाच्य बताए गए हैं, राब भी इनमें से एक है। आयुर्वेद की दृष्टि से वात, पित्त, कफ नाशक, बल वीर्य वर्धक एवं मधुमेह नाशक है। इसका सेवन रक्त विकार, मूत्र विकार एवं यौन रोगों में रामवाण माना जाता है। मई–जून में इसका सेवन करने से शरीर में शीतलता का अभास होता है। पारम्परागत खाद्य पदार्थों की श्रृंखला में भारत सरकार की महत्वाकांक्षी परियोजना लोकल से वोकल में राब का उत्पादन महत्वपूर्ण योगदान दे सकता है।

चित्र 4 : तरल गुड़

शर्करा या चीनी उत्पाद

भारत विश्व का दूसरा सबसे बड़ा चीनी उत्पादक देश है। गन्ने से प्राप्त शर्करा या चीनी एक क्रिस्टलीय खाद्य पदार्थ है। इसमें मुख्यतः सुक्रोज, लैक्टोज एवं फ्रक्टोज उपस्थित होते है। मनुष्यों की स्वाद ग्रन्थियाँ मस्तिष्क को इसका स्वाद मीठा बताती हैं। चीनी का उपयोग किसी न किसी रूप में लगभग प्रत्येक मनुष्य द्वारा किया जाता है। अनेकों प्रकार की खाद्य सामग्रियों एवं पेय पदार्थों में मीठा स्वाद डालने के लिए चीनी की अत्यधिक मांग होने के कारण विकास के आर्थिक एवं सामाजिक परिवर्तनों को उजागार करता है। चीनी का अत्यधिक सेवन मोटापा, टाईप–2 मधुमेह एवं दांतों का क्षरण आदि बीमारियों को जन्म देता है। लेकिन

चित्र 5 : चीनी

जिन लोगों को लो ब्लड प्रेशर की शिकायत होती है उन्हें अपने साथ शुगर क्यूब्स रखने की सलाह दी जाती है। अगर ब्लैक आउट (चलते–चलते आंखों के आगे अंधेरा छाने) की समस्या है तो इसमें चीनी मददगार होती है।

शीरा (मोलासेस)

चीनी मिलों में चीनी बनाने की प्रक्रिया के दौरान शीरा का भी उत्पादन होता है। यह एक प्रकार का गाढ़ा शरबत है, जिसे

लोग स्वीटनर के रूप में इस्तेमाल करते हैं। शीरे में कई प्रकार के पोषक तत्व जैसे सेलेनियम, कैल्शियम, आयरन, मैंग्नीज, मैग्नीशियम, पोटैशियम, विटामिन बी6 एवं कॉपर आदि होने के कारण स्वास्थ्य के लिए लाभदायक माना जाता है। इसके अतिरिक्त एंटीऑक्सीडेंट भरपूर मात्रा में पाए जाते हैं। यह अपने रंग, स्वाद, उपयोग एवं मिठास की अलग–अलग मात्रा के कारण लाइट मोलासेस, डार्क मोलासेस, ब्लैकस्ट्रैप मोलासेस एवं सल्फर्ड या अनसल्फर्ड मोलासेस नामों से जाना जाता है। इसका सेवन हृदय रोग, मोटापा, हड्डियों सम्बंधी विकारों को दूर करने में लाभदायक माना जाता है। इसमें उपस्थित कुछ पोषक तत्व मधुमेह रोगियों को भी फायदेमंद होते हैं। शीरा का उपयोग अल्कोहल, एसीटोन कुटोनोल, एसिटिक एसिड, सिट्रिक एसिड, फूड एवं फीड यीस्ट इत्यादि बनाने एवं पशु चारा के रूप में भी किया जाता है।

चित्र 5 : शीरा

गन्ने की खोई से बने बिस्कुट

राष्ट्रीय शर्करा संस्थान, कानपुर ने गन्ने की खोई (अपशिष्ट) और तरल गुड़ से सेहत भरा बिस्कुट तैयार किया है। गन्ने से निर्मित इस उत्पाद में आहार रेशा, कैल्शियम, मैग्नीशियम, आयरन, कॉपर एवं विटामिन (बी 1, बी 2, सी व ई) पचुर मात्रा में होते हैं। यह खून में कोलेस्ट्रोल की मात्रा को कम करने, टाईप–2 मधुमेह से बचाव एवं पाचन क्रिया को नियन्त्रित करके पाचनतन्त्र को मजबूत करने में उपयोगी बताया गया है। देश के नौजवान युवक एवं युवतियाँ इस प्रकार के स्वास्थ्यवर्धक एवं मूल्यवर्धक उत्पादों हेतु स्टार्टअप के माध्यम से कार्य आरम्भ करके नौकरी प्रदाता बन सकते हैं।

गन्ने की खोई / बगास का उपयोग

गन्ना मिलिंग या कोल्हू में पिराई के बाद रस एवं खोई में परिवर्तित हो जाता है। गन्ने के रस की उपयोगिता के साथ–साथ निकलने वाली खोई (बगास) एवं इसकी पत्तियाँ भी किसी मायने में कम नहीं है। कुछ समय पहले तक किसान गन्ने की खोई एवं पत्तियों के व्यावसायिक और वैज्ञानिक उपयोग के बारे में अधिक नहीं जानते थे। लेकिन आज खोई एवं पत्तियों का इस्तेमाल जैविक खाद,

जैविक–ईंधन, जैविक–प्लास्टिक, काग़ज़ एवं प्लाईवुड निर्माण के अलावा एकल उपयोग बायो–क्रॉकरी के उत्पादन में भी हो रहा है। यह प्लास्टिक एवं थर्मोकोल जैसे जहरीले पदार्थों से निर्मित उत्पादों का प्रभावशाली विकल्प होने के साथ–साथ पर्यावरण–हितैषी भी है।

रोजगार सृजन

चीनी उद्योग एक महत्वपूर्ण कृषि आधारित सबसे बड़ा उद्योग है जो लगभग 5 करोड़ गन्ना किसानों, उनके आश्रित, खेतीहर मजदूर एवं चीनी मिलों में सीधे नियोजित लगभग 5 लाख कर्मचारियों की ग्रामीण आजीविका को प्रभावित करता है। परिवहन, मशीनरी की व्यापार सेवाओं और कृषि आदानों की आपूर्ति से सम्बंधित विभिन्न सहायक गतिविधियों में भी रोजगार के अवसर उत्पन्न हुए हैं। अनेकों चीनी कम्पनियों ने ग्रामीण आबादी के उत्थान के लिए स्कूल, कॉलेज, चिकित्सा केन्द्र एवं अस्पताल स्थापित किए हैं। कुछ कम्पनियों द्वारा सह–उत्पादन जैसे शराब के कारखाने, कार्बनिक रसायन प्लांट, पेपर एवं बोर्ड फैक्टरी तथा सह उत्पादन पलांट भी स्थापित किए गए हैं। यह उद्योग पुनः आपूर्ति योग्य बायोमास का सृजन करते हैं तथा फोजिल ईंधन पर निर्भर हुए बिना इसका उपयोग किया जाता है।

निष्कर्ष

गन्ना सबसे अधिक लाभकारी फसलों में से एक है, जिससे किसानों को गन्ना का क्षेत्र एवं उत्पादन बढ़ाने के लिए प्रोत्साहित किया जाता है। पारम्परिक तरीकों की तुलना में आधुनिक तरीकों से गन्ना उत्पादों का मूल्यसवर्धन करके किसान भाई अधिक से अधिक लाभ प्राप्त कर सकते हैं। इस कड़ी में सरकार द्वारा सार्थक प्रयास किए जा रहे हैं, जिससे मिल के अलावा गुड एवं खंडसारी लगाने के लिए मिल एवं गुड यूनिट के बीच की दूरी को कम किया जा रहा है। किसानों को अधिकमत लाभ प्राप्त हो सके इस दिशा में समय समय पर सरकार द्वारा अनेकों जागरूकता कार्यक्रमों का आयोजन किया जाता है।

गेहूँ में रतुआ रोग प्रबंधन

दिनेश चौधरी, ओपी गंगवार, प्रमोद प्रसाद, चारुलता एवं स्नेहा अधिकारी
भाकृअनुप–भारतीय गेहूँ एवं जौ अनुसंधान संस्थान, क्षेत्रीय केन्द्र, फ्लावरडेल, शिमला

भारत एक कृषि प्रधान देश है। गेहूँ हमारे देश की धान के बाद दूसरी मुख्य फसल हैं। देश की तीव्र गति से बढ़ती जनसंख्या के लिए खाद्यान्न आपूर्ति को पूरा करने के लिए सबसे अधिक दबाव कृषि क्षेत्र पर है। हरित क्रान्ति के बाद देश में गेहूँ का न केवल कुल उत्पादन अपितु उत्पादकता भी निरन्तर बढ़ रही है। इनमें सबसे ज्यादा योगदान नई किस्मों का है। क्योंकि ये किस्में वातावरण के अनुकूल, रोग रोधी, कीट रोधी तथा अधिक उत्पादन देने वाली होती हैं। भारत मे गेहूँ की खेती लगभग 300 लाख हैक्टर क्षेत्र में की जाती है तथा इसका खाद्यान्न उत्पादन में 36% हिस्सा है। भारत का गेहूँ के उत्पादन में विश्व में दूसरा स्थान है। गेहूँ की खेती के लिए शीतोष्ण जलवायु सर्वाधिक उपयुक्त होती है। गेहूँ की खेती में उचित प्रबन्धन की व्यवस्था न होने के कारण रतुआ रोग के द्वारा अधिक नुकसान होता है तथा कभी– कभी पूरी फसल ही नष्ट हो जाती हैं। भारत में गेहूँ पर लगने वाले तीन प्रकार के रतुआ रोगों के द्वारा लगभग 80-100% तक उपज में हानि होती है। ये तीनों रतुआ रोग अलग–अलग कवकों से उत्पन्न होते हैं।

1 काला अथवा तना रतुआ (*पक्सीनिया ग्रेमिनिस ट्रिटीसाई*)

2 भूरा अथवा पत्ती रतुआ (*पक्सीनिया ट्रिटिसिना*)

3 पीला अथवा धारीदार रतुआ (*पक्सीनिया स्ट्राईफॉर्मिस ट्रिटीसाई*)

रतुआ रोगों का प्रकोप देश के सभी गेहूँ उगाने वाले क्षेत्रों में देखा जाता है। रतुआ के द्वारा होने वाली हानि दूसरे रोगों की अपेक्षा बहुत अधिक है। इन तीनों रतुआ रोगों में सबसे अधिक प्रभावित करने वाला भूरा तथा पीला रतुआ रोग हैं।

1 काला अथवा तना रतुआ

काला रतुआ रोग *पक्सीनिया ग्रेमिनिस ट्रिटीसाई* कवक द्वारा फैलता है। इसका प्रभाव अधिक गर्म जलवायु में होता है। साधारणतया इस रतुए का आक्रमण फसल पर मौसम के अन्त में होता है। यह दक्षिण भारत में नवम्बर–दिसम्बर तथा उत्तरी भारत में मार्च में प्रकट होता है। काला रतुआ रोग के फैलाव के लिए 28–35° सेल्सियस तापमान उपयुक्त होता है। इस रोग की पहचान के लिए गेहूँ की फसल में तने व पत्तियों पर लाल, भूरे रंग के धब्बे बन जाते हैं। यह धब्बे आरम्भ में छोटे तथा धीरे–धीरे एक दूसरे के संपर्क से बड़े–बड़े गहरे भूरे रंग में परिवर्तित हो जाते हैं। इस रोग से संक्रमित पौधे छोटे रह जाते हैं, और फसल भी जल्दी

परिपक्व हो जाती है। पौधे समय से पहले ही गिरने लग जाते हैं। इसके दानों का आकार बारीक तथा कभी–कभी दाने बनते ही नही हैं।

2 भूरा अथवा पत्ती रतुआ

भूरा रतुआ रोग *पक्सीनिया ट्रिटिसिना* कवक के द्वारा फैलता है। इस रोग का आक्रमण भारत मे गेहूँ उगाए जाने वाले सभी क्षेत्रों में देखा गया है। भूरा रतुआ रोग के फैलाव के लिए 20–25° सेल्सियस तापमान उपयुक्त होता है। इस रोग के लक्षण गेहूँ के पौधे की पत्तियों पर दिखाई देते हैं। यह भी काले रतुआ रोग की तरह ही पहले पत्तियों पर छोटे आकार के धब्बे बनते हैं तथा बाद में धीरे–धीरे आकार बढ़ जाता है, और एक निश्चित समय के बाद फट जाते हैं और निरोगी पौधों को भी रोगी बना देते हैं। इसमे फसल पकने से पूर्व ही पौधे धीरे–धीरे सूखने लगते है और गिरना शुरू हो जाते हैं। क्योंकि रोग के आक्रमण के कारण प्रकाश संश्लेषण की क्रिया नहीं होने से पौधे सिकुड़ जाते हैं और गेहूँ की उपज कम हो जाती है।

3 पीला अथवा धारीधार रतुआ

यह रोग *पक्सीनिया स्ट्राईफॉर्मिस ट्रिटीसाई* कवक के द्वारा फैलता है। इस रोग का आक्रमण मुख्यतया ठण्डे क्षेत्रों मे अधिक देखा जाता है। क्योंकि इसके फैलाव के लिए उपयुक्त तापमान 14–16° सेल्सियस है। इसका प्रभाव सबसे ज्यादा पौधे की पत्तियों पर देखा जाता है। क्योंकि पत्तियों का रंग आक्रमण होने के कुछ दिनों बाद ही पीला हो जाता है और पत्तिया धीरे–धीरे सिकुड़ जाती हैं। अगर पीले रतुए के धब्बों को अगुंली से छूकर देखें तो हल्दी की तरह पीला रंग लग जाता है जिससे पौधे मे भोजन बनने वाली क्रिया नहीं होती है। इसी कारण पौधे में दानों की संख्या कम अथवा सिकुड़े हुए मिलते हैं।

रोग–चक्र

गेहूँ के रतुआ का जीवन–चक्र बहुत जटिल होता है अनुकूल तापमान और नमी की स्थिति में, यूरेडियोबीजाणु पौधे की सतह पर उतरने के 6 से 8 घंटे के भीतर अंकुरित और पत्तियों को संक्रमित कर देते हैं। एक बार स्थापित होने के बाद, यदि वातावरण की स्थिति अनुकूल हो तो हर 7 से 14 दिनों में यूरेडियोबीजाणु की एक नई फसल का उत्पादन हो जाता है। पहले रतुआ विकसित होता है, तथा अनुकूल मौसम के दौरान अधिक बीजाणु और रोग–चक्र होने की संभावना होती है और गंभीर महामारी और उपज हानि का जोखिम अधिक होता है। बार–बार भारी ओस, हल्की बारिश, या उच्च आर्द्रता और (15 से 18°c) का तापमान पत्ती रतुआ के विकास के लिए आदर्श होते हैं। तना रतुआ में एक समान इष्टतम तापमान सीमा होती है, लेकिन धारीधार रतुआ अधिक ठंडी परिस्थितियों के तहत सबसे अच्छा विकसित होता है। ये तीनों रोग एक पौधे से दूसरे पौधे और एक खेत से दूसरे खेत में फसल के परिपक्व होने तक हवा के झोंकों से फैलते हैं। जैसे–जैसे पौधा परिपक्व होता है, रतुआ के आधार पर पत्तियों, पत्ती के आवरण, तनों और स्पाइक्स पर काले, जलमग्न पस्चूल विकसित होते हैं। इन पस्चूल में शीतकालीन टीलीयोबीजाणु होते हैं। टीलीयोबीजाणु गेहूँ को संक्रमित नहीं करते हैं। जब पौधे बहुत देर से (परिपक्वता के करीब) संक्रमित हो जाते हैं तो टीलीया विकसित नहीं हो सकते हैं। मुख्य गेहूँ फसल की अनुपस्थिति में रतुआ रोगजनक बे–मौसम गेहूँ की फसल या स्वयंसेवी पौधों पर यूरेडियोबीजाणु या माइसीलियम के रूप में जीवित रहते हैं। ये बीजाणु हवा के माध्यम से फैलकर मुख्य फसल को संक्रमित करते हैं।

नियंत्रण

गेहूँ में रतुआ रोगों के नियंत्रण के लिए किसान को समय-समय पर अपनी फसल की देखभाल करनी चाहिए। अगर किसान को पौधे पर किसी भी रतुआ रोग का लक्षण दिखाई देता है। तो उसे कृषि वैज्ञानिकों से सलाह लेनी चाहिए।

क्योंकि रतुआ रोग को आसानी से नियंत्रण नहीं किया जा सकता है। इनके बीजाणु हवा के माध्यम से दूर–दूर तक फैल जाते हैं। रतुआ के सफलतापूर्वक नियंत्रण हेतु निम्नलिखित तथ्यों का अनुसरण करे;

(1) उपयुक्त रतुआ प्रतिरोधी किस्मों (सारणी 1) का चुनाव करना चाहिए।

(2) रोग की शुरुआती अवस्था में रसायनो का उपयोग भी किया जा सकता है। ताकि रोग को स्वस्थ पौधों में पहुंचने से रोका जा सके।

(3) गेहूँ के साथ अन्य उपयुक्त मिश्रित फसलों (सरसों+चना) का भी प्रयोग करना चाहिए।

(4) गेहूँ मे उर्वरकों का उपयोग करते समय तीन उर्वरकों (नाइट्रोजन, फॉस्फोरस तथा पोटाश) की सतुंलित मात्रा का ध्यान रखना चाहिए।

(5) हमेशा गेहूँ की विभिन्न किस्मों का चुनाव करके बुवाई करना चाहिए।

(6) जल्दी बुवाई करने से संक्रमण होने की संभावना बढ़ जाती है।

(7) रासायनिक नियंत्रणः रतुआ रोगों की रोकथाम के लिए प्रॉपीकोनाजॉल (टिल्ट 25 ई.सी.) का 0.1 प्रतिशत घोल या टेबुकोनेजोल 250 ई.सी. का 0.1 प्रतिशत की दर से घोल कर छिड़काव करें।

तालिका 1 : गेहूँ की अलग–अलग क्षेत्रों के लिए रतुआ रोग प्रतिरोधी किस्में

क्षेत्र	किस्में
उत्तरी क्षेत्र	एचडी 2967, एचडी 3043, एचडी 3059. पीबीडब्ल्यू 660, राज 4120. यूपी 2425, डब्ल्यूएच 896, डब्ल्यूएच 102, डब्ल्यूएच 1105, एचडी 3086 एचएस 375, एचएस 490, एचएस 507, एसकेडब्ल्यू 196, टीएल 2942 एचडी 2781, एचडी 2824, एचडी 2888, एचआई 1563, एचआई 1761, एचयूडब्ल्यू 468
मध्य क्षेत्र	एचआई 1531, एचआई 1544, एचआई 8381, एचआई 8498 एचआई 8627, एचआई 8737, एचडब्ल्यू 2004, एमपी 3288, एमपी 4010 जीडब्ल्यू 322, जीडब्ल्यू 366, एचडी 2864, एचडी 2932, एचआई 1500, डीबीडब्ल्यू 110, जीडब्ल्यू 173
दक्षिणी पर्वतीय क्षेत्र	एचडब्ल्यू 5001, एचडब्ल्यू 1098, एचडब्ल्यू 5207, एचडब्ल्यू 1085

प्रेरित उत्परिवर्तन के माध्यम से गेहूँ में सुधार

सुमन बक्शी, संजय जे जाम्भुड़कर एवं टी आर गणपति
नाभिकीय कृषि और जैव प्रौद्योगिकी प्रभाग, भाभा परमाणु अनुसंधान संस्थान, मुंबई

गेहूँ भारत की दूसरी महत्वपूर्ण खाद्य फसल है। वर्ष 2020–21 में गेहूँ की खेती 31.7 मिलियन हेक्टर क्षेत्र तथा अभिलेख उत्पादन 108.75 मिलियन टन पर्याप्त हुआ (तीसरा अग्रिम अनुमान, 2021)। भारत में हरित क्रांति के बाद गेहूँ उत्पादन में लगातार सुधार हुआ। हालांकि, जिस गति से पहले उपज में सुधार हुआ था, वह हाल ही में धीमा हो गया है। गेहूँ जैसी प्रमुख फसलों में उपलब्ध भिन्नता का अधिकतम आनुवंशिक लाभ प्राप्त करने के लिए पुनर्संयोजन प्रजनन के माध्यम से सुधार किया गया है। किसी भी फसल में सुधार के लिए आनुवंशिक भिन्नता एक पूर्वापेक्षा है। चपाती के लिये उपयोग गेहूँ (*ट्रिटिकम एस्टिवम*) का बहुत संकीर्ण आनुवंशिक आधार है। लैंडरेसस, जंगली परिजन और अन्य प्रजातियों की आनुवंशिक भिन्नता को फसल सुधार में उपयोग के लिए प्रजनन पूर्व प्रक्रिया की आवश्यकता होती है। वर्तमान प्रजनन कार्यक्रमों में अनुभव की गई उपज ठहराव मौजूदा आनुवंशिक परिवर्तनशीलता के अधिकतम उपयोग के कारण है। जबकि प्रेरित उत्परिवर्तन ने सीमित आनुवंशिक परिवर्तनशीलता वाली फसलों के सुधार में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। प्रेरित उत्परिवर्तन के उपयोग से 220 विभिन्न पौधों की प्रजातियों में 3275 उत्परिवर्ती किस्में दुनिया भर के 60 से अधिक देशों में जारी की गईं (एचटीटीपी//एमवीडी.आईएईए.ओआरजी)। गेहूँ की फसल में सुधार के लिए उत्परिवर्तन प्रजनन कार्यक्रम में नाभिकीय कृषि और जैव प्रौद्योगिकी प्रभाग भाभा परमाणु अनुसंधान संस्थान, मुंबई में शुरू किया गया था। उत्परिवर्तन प्रजनन कार्यक्रम का मुख्य उद्देश्य जलवायु परिवर्तन के अनुकूल गेहूँ की फसल के लिए आवश्यक लक्षणों में सुधार करना है। विशिष्ट लक्षणों और पृथक उत्परिवर्ती का उल्लेख यहाँ किया गया है।

रतुआ रोग प्रतिरोधक क्षमता

पीला रतुआ (धारी), भूरा रतुआ (पत्ती) और काला रतुआ (तना) गेहूँ के प्रमुख रोग हैं। तीनों रतुआ रोगजनकों के लिए बड़ी संख्या में प्रतिरोध वंशाणु को खेती की किस्मों में स्थानांतरित किया गया है। रतुआ रोगजनक बहुत तेजी से उत्परिवर्तन करता है और अधिक अक्रामक नस्ले विकसित होती है जो रोग प्रतिरोधता को तोड़ देती है। इसलिए, लगातार विकसित हो रहे रतुआ रोगजनकणों के खिलाफ नए प्रतिरोध वंशाणु की तलाश जारी रखनी होती है। रतुआ रोगों के खिलाफ प्रतिरोधी उत्परिवर्ती को तैयार करने के लिए उत्परिवर्तन प्रजनन कार्यक्रम एचडी 2967 किस्म में शुरू किया गया है। उत्परिवर्ती पीढ़ियों की जाँच पीला रतुआ रोगग्रस्त स्थितियों में की गई और परिणामस्वरूप बीस पीला रतुआ प्रतिरोधी उत्परिवर्ती का विकास किया गया है। इनमें से कई उत्परिवर्तियों प्रतिरक्षित साबित हुए। इन प्रतिरोधी उत्परिवर्तियों की प्रारंभिक फाइटोपैथोलॉजिकल परख (आईपीपीएसएन) नर्सरी में जांच की गई और आठ उत्परिवर्ती प्रतिरोधी साबित हुए। इनमें से दो उत्परिवर्ती अर्थात् टीएडब्ल्यू 119 और टीएडब्ल्यू 123 का मूल्यांकन राष्ट्रीय प्रारंभिक वैराइटी परीक्षण में किया गया था और फाइटो पैथोलॉजिकल स्क्रीनिंग नर्सरी (पीपीएसएन) में रोग प्रतिरोधता पाई गई। ये उत्परिवर्ती चार स्थानों पर उच्च उपज देने वाले पाए गए और और नए उभरते रोग व्हीट ब्लास्ट के लिए भी प्रतिरोधी पाए गए (एआईसीडब्ल्यूबीपी, 2019–20)।

सूखा तनाव सहिष्णुता

सूखे का दबाव भारत के सभी गेहूँ उगाने वाले क्षेत्रों में स्थिर पैदावार के लिए एक प्रमुख बाधा है। नमी की कमी की स्थिति में अधिक उपज देने में सक्षम गेहूँ की किस्मों को वांछनीय माना जाता है। पांच उत्परिवर्ती पीढ़ियों की सूखा तनाव सहिष्णुता जाँच ड्रिप सिंचाई प्रणाली का उपयोग करके दो नियंत्रित सिंचाई देने के बाद की गई। एक नियंत्रित सिंचाई बुवाई के तुरंत बाद और दूसरी बाली उभरने के चरण में दी गई। स्थिर सूखा सहिष्णु उत्परिवर्ती का सूखा संवेदनशीलता सूचकांक जानने के लिए तनाव और गैर–तनाव स्थितियों के तहत उपज का मूल्यांकन किया और आठ उत्परिवर्ती पानी के तनाव के प्रति अत्यधिक सहिष्णु और उच्च उपज देने वाले पाए गए। इन उत्परिवर्तियों में से तीन का परीक्षण किया गया और उन्हें रतुआ रोग प्रतिरोधी पाया गया। इस वर्ष रबी, 2021–22 में, उत्परिवर्ती टीएडब्ल्यू 133 का मूल्यांकन आईसीएआर–एनआईवीटी–5ए परीक्षण में प्रतिबंधित सिंचाई और समय पर बुवाई की स्थिति में किया जा रहा है।

छोटी ऊंचाई लक्षण

गेहूँ के पौधे की ऊंचाई, उसके गिरने की सहनशीलता, उर्वरक उपयोग दक्षता और उपज सूचकांक को निर्धारित करती है। अनुकूल परिस्थितियों में छोटी ऊंचाई के लिए वंशाणु आरएचटी–बी1बी और आरएचटी–डी1बी, उच्च उपज उछाल देने के लिए उत्तम है। तथापि, इन वंशाणुओं का गर्मी या सूखे की स्थिति में उपज पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। इन स्थितियों में, गेहूँ के सुधार के लिए अधिक

वैकल्पिक बौने वंशाणु उपलब्ध होने की आवश्यकता है। इसलिए नाभिकीय कृषि और जैव प्रौद्योगिकी प्रभाग में निर्देशित उत्परिवर्तन प्रजनन कार्यक्रम की शुरुआत की गई, जिसके अंतर्गत कम ऊंचाई उत्परिवर्ती, जिनकी ऊंचाई 65 से 85 सेमी तक की श्रृंखला तैयार हुई, जबकि तुलना में जनक की ऊंचाई 99 सेमी है। इन उत्परिवर्तियों को संशोधन के लिए विशेषता दी जाएगी और प्रजनन कार्यक्रमों में उनकी उपयुक्तता के लिए मूल्यांकन किया जाएगा।

प्रारंभिक परिपक्वता

उन क्षेत्रों में जल्दी परिपक्वता वांछनीय है जहाँ गेहूँ की फसल अंतिम गर्मी के तनाव से प्रभावित होती है। गेहूँ में फूल का आना तीन वंशाणुओं अर्थात फोटोपिरीयड (पीपीडी), वर्नालाइजेशन (वीआरएन) और अर्लीनेस वंषाणु (ईपीएस) द्वारा नियंत्रित होता है। इन प्रारंभिक उत्परिवर्ती का उपयोग आनुवंशिकी और अणुका जीवविज्ञान अध्ययन के लिए किया जाएगा ताकि शीघ्रता के लिए जिम्मेदार वंशाणुओं में न्यूक्लियोटाइड परिवर्तनों को समझा जा सकें। इन नए उत्परिवर्तित वंशाणुओं के उपयोग से फसल को अंतिम गर्मी से बचाया जा सकेगा और किसानों को चावल की अगली फसल की समय पर बुवाई करने में भी मदद मिलेगी।

फसल पूर्व अंकुरण (पीएचएस) सहनशीलता

जलवायु परिवर्तन गेहूँ की उपज और गुणवत्ता के लिए एक अपरिहार्य जोखिम है और इसके लिए जलवायु सहिष्णु किस्मों के विकास की आवश्यकता है। परिपक्वता के दौरान अप्रत्याशित वर्षा होने के परिणामस्वरूप बाली में गेहूँ के अंकुरण के कारण उपज और गुणवत्ता का नुकसान होता है। फसल पूर्व अंकुरण एक जटिल लक्षण है और पर्यावरणीय परिस्थितियों से प्रभावित है। प्रारंभिक अलगाव उत्परिवर्तन पीढ़ियों में फसल पूर्व अंकुरण सहिष्णु उत्परिवर्ती की पहचान करने के लिए, आधा बाली विधि का उपयोग किया गया और और पूर्ण बाली पर लक्षण की पुष्टि की गई। फसल पूर्व अंकुरण सहिष्णुता वाले उत्परिवर्ती परिपक्वता के समय उच्च वर्षा और गर्मी वाले क्षेत्र के लिए जननद्रव्य का एक मूल्यवान स्रोत है।

निष्कर्ष

प्रेरित उत्परिवर्तन विविधता पैदा करता है और एक फसल प्रजाति के प्रयोग योग्य जननद्रव्य को पूरक करता है। प्रेरित उत्परिवर्तन उच्च उपज वाली लोकप्रिय किस्म के एक या दो नकारात्मक लक्षणों को दूर करने के लिए प्रयोग किया जाता है और इसका मुख्य उद्देश्य या तो उच्च उपज लोकप्रिय किस्म का सुधार या जननद्रव्य की आनुवंशिक वृद्धि के लिए किया जाता है। प्रेरित उत्परिवर्तन का उपयोग फसल सुधार जैसे आर्थिक महत्व के लक्षणों, पौधों की कम ऊंचाई, सूखा सहनशीलता, रोग प्रतिरोधक क्षमता, शाकनाशी प्रतिरोध, उपज और उपज सहायक कारक आदि प्रजनन कार्यक्रमों में मिलता है।

गेहूँ में स्पॉट ब्लॉच रोग के लक्षण एवं उसकी रोकथाम

शुभम राज, अनिल कुमार, ईश्वर सिंह, चरण सिंह, उमेश काम्बले, सुनील कुमार एवं रविन्द्र कुमार
भाकृअनुप– भारतीय गेहूँ एवं जौ अनुसंधान संस्थान, करनाल

गेहूँ (*ट्रिटिकम प्रजाति*) एक महत्वपूर्ण खाद्यान्न फसल है जो अनेक प्रकार की जलवायु, भौगोलिक क्षेत्र एवं सिंचाई पद्धतियों व सिंचित से लेकर अंसिंचित विभिन्न प्रकार की जल उपलब्धता स्थितियों के अंदर उगाई जाती है। यह करोडों लोगो का मुख्य खाद्य है। दुनिया में समस्त कृषित भूमि के लगभग छठे भाग पर गेहूँ की खेती की जाती है। गेहूँ विश्व के सभी प्रायद्वीपों में उगाया जाता है। गेहूँ विश्व की निरंतर बढ़ती जनसंख्या के लिए लगभग 20 प्रतिशत आहार कैलोरी की पूर्ति करता है। चीन के बाद भारत गेहूँ का दूसरा सबसे बडा उत्पादक देश है। गेहूँ खाद्यान्न फसलों के बीच विशिष्ट स्थान रखता है। कार्बोहाइड्रेट और प्रोटीन गेहूँ के दो मुख्य घटक हैं। गेहूँ में औसतन 11.12 प्रतिशत प्रोटीन होता हैं। भारत में गेहूँ अनेक राज्यों में उगाया जाता है जिनमें प्रमुखतः उत्तर प्रदेश, हरियाणा, पंजाब, राजस्थान, मध्य प्रदेश, बिहार, महाराष्ट्र आदि हैं। हमारे देश में गेहूँ 30 मिलियन हैक्टर से अधिक भूमि पर उगाया जाता है जो कि कुल कृषित भूमि का 24 प्रतिशत से अधिक भाग है। वर्ष 2020–21 के दौरान रिकॉर्ड 109.52 मिलियन टन से अधिक गेहूँ का उत्पादन हुआ है। गेहूँ की उन्नत प्रजातियों की उपज क्षमता की प्राप्ति में अनेक बाधाएं है जिनमें रोग. व्याधियां सबसे प्रमुख हैं। इन व्याधियों में विभिन्न रतुआ रोग ;काला अथवा तना रतुआ, पत्ती या भूरा रतुआ, पीला रतुआ, पत्ती झुलसा, चूर्णिल आसिता और करनाल बंट आदि मुख्य रोग हैं। प्रायः हम रतुओं अथवा गेरूई रोग को अधिक महत्व देकर अन्य रोगों को कम आंकने की भूल कर देते हैं परन्तु यें रोग अधिक तीव्रता से संक्रमण की स्थिति में गेहूँ की पैदावार एवं गुणवत्ता को भारी नुकसान पहुंचा सकते हैं। रतुआ समूह से अलग स्पॉट ब्लॉच रोग इस प्रकार के रोगों में शामिल है जो अनुकूल वातावरण में काफी सार्थक हानि कर सकता है। अतः गेहूँ के लगातार रिकार्ड उत्पादन को बनाए रखने के संदर्भ में गेहूँ का स्पॉट ब्लोच रोग बहुत महत्वपूर्ण हो जाता है।

विगत तीन से चार दशकों में गेहूँ के गेरूई अथवा रतुआ रोगों के लिए प्रतिरोधी प्रजनन कार्य मे सराहनीय प्रयासों से देश के विभिन्न कृषि पारिस्थितीकीय क्षेत्रों में रतुआ रोग की महामारी ज्यादा बड़े स्तर पर देखने में नहीं आई है परंतु इसके फलस्वरुप विभिन्न कम महत्व के रोगों के लिए पौधों में नुकसान पहुंचाने के अधिक अवसरों की वृद्धि हुई है।

बाइपोलैरिस सोरोकिनियाना के द्वारा होने वाला यह गेहूँ का स्पॉट ब्लोच रोग हेल्मिन्थोस्पोरियम पत्ती झुलसा (लीफ ब्लाइट) या पर्ण झुलसा (फोलियर ब्लाइट) के नाम से भी जाना जाता है जो कम महत्व के रोगों में से एक महत्वपूर्ण रोग बनकर उभरा है और गैर परंपरागत गेहूँ उगाने वाले अपेक्षाकृत गर्म क्षेत्रों में लगभग 50% तक पैदावार में हानि कर सकता है। यह रोग पूरे संसार में व्यापक रूप से वितरित है और अफ्रीका, दक्षिण अमेरिका, ऑस्ट्रेलिया, कनाडा, एशिया और विशेष रूप से भारतीय उपमहाद्वीप में गर्म और आर्द्र वातावरण में महत्वपूर्ण है। बीते कुछ दशकों में धान और गेहूँ के फसल–चक्र ने पंजाब, हरियाणा, पश्चिमी उत्तर प्रदेश में बड़े क्षेत्रों पर कब्जा कर लिया है और गेहूँ की देर से बुवाई एक आम बात है। देर से बुवाई करने से फसल की बढ़वार के समय फरवरी में गर्म और आर्द्र मौसम का अनुभव होता है जो स्पॉट ब्लॉच के लिए अनुकूल है। इसके अलावा जलवायु परिवर्तन विशेष रूप से फरवरी के महीने में तापमान में अचानक वृद्धि के साथ रुक–रुक कर होने वाली वर्षा ने भी उन क्षेत्रों में बीमारी के लिए अनुकूल वातावरण तैयार किया है जहाँ यह रोग नहीं पाया जाता था। भारत में, यह रोग सबसे पहली बार बिहार में 1914 दर्ज किया गया था। यह रोग अक्सर बिहार, पश्चिम बंगाल, उत्तर प्रदेश, उड़ीसा, असम, मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र और कर्नाटक के गर्म और आर्द्र क्षेत्रों में होता है। यह मूल रूप से देश के उत्तर पूर्वी क्षेत्र में एक गंभीर समस्या रही है। लेकिन जलवायु परिवर्तन और फसल गहनता के कारण इस रोग ने देश के उत्तर पश्चिमी, प्रायद्वीपीय क्षेत्र और मध्य क्षेत्रों में बड़े पैमाने पर अपनी उपस्थिति दर्ज कराई है।

रोग के लक्षण

स्पॉट ब्लॉच रोगज़नक़ पौधों के सभी भागों यानी इंटरनोड्स, तना, नोड्स, पत्तियों, तुष, ग्लूम्स और बीज में रोग के लक्षण पैदा करने में सक्षम है। रोगज़नक़ पौधे के विकास के विभिन्न चरणों में अंकुरण–पूर्व और अंकुरण–बाद आर्द्रगलन, अंकुर झुलसा, जड सड़ना, पत्ती धब्बे और बाली झुलसा (स्पाइक ब्लाइट) का कारण बनता है। पत्तियों पर शुरुआती विक्षत छोटे, गहरे भूरे रंग के 1 से 2 मिमी लंबे विक्षत होते हैं जो बिना हरिमाविहीन परिधि के होते हैं। रोग सुग्राही किस्मों में यें धब्बे या विक्षत जल्दी बढ़कर हल्के भूरे से गहरे भूरे रंग के अंडाकार अथवा लम्बें ब्लोच्स में बदल जाते हैं जो पत्ती के झुलसा जैसा प्रतीत होते हैं। अनुकूल वातावरण में बालियां (स्पाइकलेट्स) संक्रमित हो जाती है जिससे दानों का आकार सिकुड़ जाता है दानों में ''ब्लैक पोइंट'' बन सकता है।

रोग का विकास एवं फैलाव

अधिकांश *हेल्मिंथोस्पोरियम* प्रजातियां मध्यम से गर्म तापमान (18 डिग्री से 32 डिग्री सेल्सियस) और विशेष रूप से आर्द्र मौसम में रोग पैदा करने में सक्षम होती हैं। स्पॉट ब्लॉच संभवतः उच्च तापमान (सबसे अधिक ठंडे महीने में 17 डिग्री सेल्सियस से अधिक तापमान) और उच्च सापेक्ष आर्द्रता की विशेषता वाले वातावरण में गेहूँ की सबसे गंभीर पत्ती झुलसा रोग है। संक्रमित बीज, संक्रमित फसल अवशेष, स्वयंसेवी पौधे, द्वितीयक मेजबान और मिट्टी में मुक्त सुसुप्त बीजाणु *बाइपोलैरिस सोरोकिनियाना* निवेशद्रव्य (इनोकुलम) के स्रोत के रूप में कार्य करते हैं। यह हेमीबायोट्रोफिक कवक आमतौर पर फसल बढ़वार के मौसम के दौरान ऊतकक्षयी (नेक्रोटिक) ऊतकों पर बीजाणुजनन करता है और बाली तक पहुंचता है। अंत में बीज में लौटता है। जो रोगजनक अस्तित्व के लिए सबसे कुशल तंत्र सुनिश्चित करता है। जब इस तरह के बीज खेत में बोए जाते हैं, तो प्रांकुरचोल (कोलॉप्टाइल) आसानी से संक्रमित हो जाता है जिसके परिणामस्वरूप अंकुर संक्रमण होता है जो बढ़ती फसल के लिए निवेशद्रव्य (इनोकुलम) प्रदान करता है। बुवाई के तुरंत बाद, नम बीज पर कवक बढ़ना शुरू हो जाता है। पहली पत्ती के चरण के रूप में अंकुर निकलने के तुरंत बाद, सीधे सूर्य के प्रकाश की उपस्थिति में बीजाणुजनन प्रेरित होता है। इसके बाद, अनुकूल परिस्थितियों में रोगज़नक़ पत्तियों और स्पाइक्स को त्वरित नुकसान पहुंचाते हैं जिससे उपज हानि होती है। पहली पत्तियों पर उत्पन्न होने वाले बीजाणु (कोनिडिया) बारिश के छींटे और हवा से दूसरी स्वस्थ पत्तियों पर फैल सकते हैं। इस प्रकार बहुचक्रीय (पॉलीसाइक्लिक) महामारी का निर्माण होता है। गेहूँ के अलावा *बाइपोलैरिस सोरोकिनियाना* के मेजबान के रूप में बड़ी संख्या में घास हैं जो एक क्षेत्र में सह–अस्तित्व में हैं, लेकिन भारतीय उपमहाद्वीप में इस बीमारी को बनाए रखने में उनकी भूमिका अभी भी ज्यादा स्पष्ट नहीं है।

स्पॉट ब्लोच रोग का रोगजनक

शूमेकर ने सन 1959 में उन *हेल्मिन्थोस्पोरियम* प्रजातियों जिसमें चंद्राकार (फ्यूसॉइड), सीधे, या घुमावदार कोनिडिया के दोनों छोर पर एक अंकुरण नली (जर्म ट्यूब) होती है और बीजाणु (कोनिडिया) इसके द्वारा अंकुरित होते हैं, के लिए सामान्य नाम *बाइपोलारिस* का प्रस्ताव रखा था। *बाइपोलैरिस सोरोकिनियाना* (पर्याय *ड्रेक्स्लेरा सोरोकिनियाना, हेल्मिन्थोस्पोरियम सैटिवम*) एक डिमेटैसियस हाइफोमाइसिटस कवक है। रोगज़नक़ की पूर्ण अवस्था को *कोक्लिओबोलस सैटिवस* के रूप में पहचाना गया है। रोगजनक संवर्धन माध्यम पर हल्की भूरी से गहरी भूरी रंग की कॉलोनी विकसित कर सकता है। पुराने वैज्ञानिक साहित्य में *बाइपोलैरिस सोरोकिनियाना* को *हेल्मिन्थोस्पोरियम सोरोकिनिअनम, ड्रेक्स्लेरा सोरोकिनियाना* और *हेल्मिन्थोस्पोरियम सैटिवम* आदि नामों से भी जाना जाता है। इसका कोनिडिया अथवा बीजाणु मोटी भित्तियों वाला थोड़ा घुमावदार आकार में 120 मिलीमाइक्रोन 12 से 20 मिलीमाइक्रोन का होता हैं। कोनिडिया में सामान्यतः 3 से 9 पट (सेप्टा) होते हैं। एक कोनिडियोफोर पर केवल (मोनोस्पोरिक कोनिडियोफोर) अथवा एक से अधिक (पॉलीस्पोरिक कोनिडियोफोर) बीजाणु उत्पन्न हो सकते हैं।

रोग की रोकथाम

बीज का चुनाव : स्वस्थ रोगमुक्त फसल के लिए आवश्यक है कि बुवाई हेतू स्वस्थ एवं रोगमुक्त बीज का चयन किया जाए। बीज का स्रोत विश्वसनीय होना चाहिए जो कि रोग रहित खेत से तैयार किया गया हो।

बीज का उपचार : फफूंदनाशकों के साथ बीज उपचार से अंकुरित बीज और पौध को रोगज़नकों से बचाने में मदद मिलेगी, जो अंकुर को झुलसाते हैं। कवकनाशी कार्बोक्सिन 37.5% + थाइरम 37.5% के द्वारा 2.5 ग्राम प्रति किग्रा बीज की दर से बीज उपचार करना चाहिए। अन्य प्रभावी कवकनाशियों में कैप्टन, मैंकोज़ेब, टेबूकोनाजोल आदि शामिल हैं।

सस्य क्रियाएं : स्पॉट ब्लोच के प्रबंधन में शामिल मूल सिद्धांत *बी. सोरोकिनियाना* इनोकुलम स्रोत को कम करना है। कुछ कृषि पद्धतियों जैसे कि फसल–चक्र को अपनानाए सही मात्रा में उर्वरक विशेषतः नत्रजनयुक्त उर्वरक का प्रयोग व फसल अवशेषों को नष्ट करने से रोग के विस्तार को कम करने में सहायता मिलती है। संस्तुत बीज दर व पौध अंतरण द्वारा पौधों के घनत्व को कम करने से रोग के विस्तार को कम करने में सहायता मिलती है। अगेती बुवाई की गयी फसल शुरुआती दौर की सुग्राही अवस्था पर स्पॉट ब्लोच के निवेशद्रव्य की कमी या छिटपुट निवेशद्रव्य (इनोकुलम) के कारण एवं गर्म एवं आर्द्र वातावरण की अनुपस्थिति के कारण फसल में रोग कम आता है। रोग सम्भावित क्षेत्र में अतिसंवेदनशील किस्मों की बुवाई को हतोत्साहित करना चाहिए। खेत के आस–पास खरपतवारों एवं कोलेट्रल पोषक पौधों को नहीं उगने देना चाहिए।

रोगरोधी किस्मों का प्रयोग : किसी भी फसल रोग के नियंत्रण का सबसे प्रभावशाली, लागत प्रभावी एवं पर्यावरण हितैषी उपाय उस रोग के विरूद्ध फसल की रोगरोधी किस्मों की बुवाई होता है। अतः स्पॉट ब्लोच की रोकथाम के लिए क्षेत्र विशेष के लिए संस्तुत रोग प्रतिरोधी किस्मों की बुवाई करें।

पर्णीय छिडकाव : रोग की रोकथाम के लिए क्रेसोक्सिम मिथाइल 44.3% प्रोपिकोनाज़ोल, मैंकोजेब 75%, टेबूकॉनाजोल 25.9%, कार्बेन्डाजिम 50% जैसे कवकनाशी रोग की पर्णीय अवस्था का प्रभावी नियंत्रण प्रदान करते हैं। उचित कवकनाशी का प्रयोग एवं इसकी मात्रा का निर्धारण विशेषज्ञ की सलाह के अनुसार करें।

चित्र 1: स्पॉट ब्लोच रोग के लक्षण (अ) : पीडीए संवर्धन माध्यम पर *बाइपोलैरिस सोरोकिनियाना* की कॉलोनी (आ) और संयुक्त सूक्ष्मदर्शी में 100 एक्स पर *बाइपोलैरिस सोरोकिनियाना* का अकेला बीजाणु (इ)

भारत में फॉल आर्मी वर्म का बढ़ता प्रकोप एवं प्रबंधन

कनिका नागपाल[1], पूनम जसरोटिया[2], रोबिन सिंह[1] एवं भाल सिंह[2]
[1]चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार
[2]भाकृअनुप–भारतीय गेहूँ एवं जौ अनुसंधान संस्थान, करनाल

फ़ॉल आर्मी वर्म (*स्पोडोप्टेरा फ्रुगिपर्डा*) का मूल सम्बंध अमेरिका से है लेकिन जनवरी 2016 में यह पहली बार अमेरिका के बाहर पश्चिमी अफ्रीका में पाया गया। जनवरी 2018 तक यह कीट 40 अफ्रीकी देशों से रिपोर्ट किया गया। वहाँ से बढ़ते हुए मई 2018 में इस कीट ने पहली बार भारत के दक्षिणी राज्यों से होते हुए भारत में प्रवेश किया। सन् 2019–20 में यह अन्य कई देशों से रिपोर्ट हुआ जिनमें शामिल थे श्रीलंका, नेपाल, ऑस्ट्रेलिया, दक्षिण कोरिया, इंडोनेशिया, सीरिया, संयुक्त अरब अमीरात।

फ़ॉल आर्मी वर्म को पहली बार मई 2018 में भारतीय उपमहाद्वीप के कर्नाटक में देखा गया था। छोटी अवधि के भीतर ही इस कीट को भारत के अधिकांश मक्का उगाने वाले राज्यों में सूचित किया गया और इसने किसानों को दहशत में डाल दिया। मक्का भारत में चावल और गेहूँ के बाद तीसरी सबसे महत्वपूर्ण अनाज की फसल है।

यह भारत में मक्का के सबसे विनाशकारी कीट के रूप में उभर रहा है। यह मक्का आधारित उद्योग के साथ–साथ खाद्य और पोषण सुरक्षा के लिए एक बड़ी चुनौती प्रस्तुत करता है। खाद्य और कृषि संगठन ने भी चेतावनी दी है कि फ़ॉल आर्मी वर्म खाद्य सुरक्षा के लिए खतरा हो सकता है और लाखों छोटे पैमाने के किसानों की आजीविका खतरे में डाल सकता है। इस कीट की कैटरपिलर अवस्था मक्के के पौधों का एक प्रचंड भक्षक है और इसे वैज्ञानिकों द्वारा एक आक्रामक प्रजाति कहा गया है। एक वयस्क मादा कीट अपने जीवन–काल में एक हजार अंडे तक दे सकती है और एक रात में 100 किमी तक की यात्रा तय कर सकती है ।

फॉल आर्मी वर्म के परपोषी एवं क्षति

फ़ॉल आर्मी वर्म की परपोषी सीमा बहुत विस्तृत है, जिसमें 350 से अधिक फसल दर्ज की गई हैं। यह पूर्णतः मक्का की फसल को अधिक प्रभावित करता है परन्तु ज्वार, बाजरा, गन्ना, गेहूँ, चावल (बहुत सीमित), टमाटर, अदरक गोभी, सोयाबीन, कपास, केला, मूंगफली, चरागाह घास, और हरा ऐमारैंथ इत्यादि पर भी यह कीट हानि पहुँचता है । एशिया में फ़ॉल आर्मी वर्म ने मक्के की फसल को बड़ी आर्थिक क्षति पहुंचाई है, इसके बाद ज्वार तथा गन्ने की फसल को क्षति हुई है। फ़ॉल आर्मी वर्म में विभिन्न मेजबान फसलों के लिए अनुकूलित दो उपभेद मान्य हैं: "मकई/मक्का का उपभेद" जो कि मुख्य रूप से मक्का, कपास और ज्वार पर क्षति पहुँचता है, और "चावल का उपभेद" (आर–स्ट्रेन) जो मुख्य रूप से चावल को हानि पहुँचता है।

जीवन–चक्र एवं अवस्थाएं: फ़ॉल आर्मी वर्म का जीवन चक्र गर्मियों के दौरान लगभग 30 दिनों में पूरा होता है। लेकिन वसंत और शरद ऋतु में 60 दिन और सर्दियों के दौरान 80 से 90 दिनों में पूरा होता है। इस प्रजाति में निलंबित विकास की क्षमता मौजूद नहीं है। फ़ॉल आर्मी वर्म के जीवन चक्र में 4 चरण हैं– अंडा, लार्वा, प्यूपा, और वयस्क।

अंडा : फ़ॉल आर्मी वर्म का अंडा गुंबद के आकार का होता है। अंडे का व्यास लगभग 0.4 मिमी और ऊंचाई 0.3 मिमी होती है। प्रति समूह में लगभग 100 से 200 अंडे की संख्या होती है। प्रत्येक मादा औसत कुल अंडा उत्पादन लगभग 1500 से 2000 तक करती है। अंडे अधिकांश एक ही परत में फैले होते हैं। मादा अंडों के बीच और अंडों के द्रव्यमान के ऊपर भूरे रंग के तराजू की एक परत जमा करती है, जो एक फफूंदीदार रूप को प्रदर्शित करती है। गर्मी के महीनों में अंडे की चरण सीमा केवल दो से तीन दिन होती है।

चित्र 1 : फॉल आर्मी वर्म का अंडा द्रव्यमान (फोटो स्रोतः जेम्स कास्टनर, फ्लोरिडा विश्वविद्यालय)

लार्वा : फॉल आर्मी वर्म में आमतौर पर छह निरूप होते हैं। लार्वा चरण की अवधि गर्मियों के दौरान लगभग 14 दिन और ठंडे मौसम के दौरान 30 दिनों की होती है। लार्वा पहले निरूप में लगभग 1.7 मिमी की लंबाई से छठे निरूप तक 34. 2 मिमी की लंबाई प्राप्त करता हैं। युवा लार्वा एक काले सिर के साथ हरे रंग के होते हैं, दूसरे चरण में सिर नारंगी रंग का हो जाता है। तीसरे चरण में, शरीर की पृष्ठीय सतह भूरी हो जाती है, और पार्श्व सफेद रेखाएं बनने लगती हैं। चौथे से छठे निरूप में सिर लाल भूरे रंग का होता है। परिपक्व लार्वा के चेहरे पर एक सफेद उल्टे "Y" के आकार से चिह्नित होता है। फॉल आर्मी वर्म के लार्वा दिन के सबसे चमकीले समय के दौरान खुद को छुपाने के लिए प्रवृत्त होते हैं।

चित्र 2 : नव रचित लार्वा (फोटो स्रोतः लायल जे. बुस्सो फ्लोरिडा विश्वविद्यालय), युवा लार्वा (फोटोस्रोतःजेम्स कास्टनर, फ्लोरिडा विश्वविद्यालय)

प्यूपा : प्यूपा की अवधि गर्मियों के दौरान लगभग आठ से नौ दिनों की होती है, लेकिन सर्दियों के दौरान 20 से 30 दिनों तक पहुँच जाती है। प्यूपेशन सामान्य रूप से मिट्टी में 2 से 8 सेमी की गहराई पर होती है। रेशम के साथ मिट्टी के कणों को एक साथ बांधकर लार्वा एक ढीले अंडाकार आकार में कोकून बनाता है, जिसकी लंबाई 20 से 30 मिमी होती है। प्यूपा लाल भूरे रंग का होता है, जो 14 से 18 मिमी लंबा और लगभग 4.5 मिमी चौड़ा होता है।

चित्र 3 : प्यूपा

वयस्क : पतंगों का पंख फैलाव 32 से 40 मिमी तक होता है। नर कीट में, विशिष्ट रूप से फोरविंग की नोक पर सफेद रंग का धब्बा होता है। मादा कीट के फोरविंग कम स्पष्ट रूप से चिह्नित होते हैं, एक समान से भूरे रंग के होते है । नीचला पंख दोनों लिंगों में एक समान इंद्रधनुषी चांदी–सफेद रंग का होता है। वयस्क निशाचर होते हैं, और गर्म, आर्द्र शाम के दौरान सबसे अधिक सक्रिय होते हैं। मादा आमतौर पर जीवन के पहले चार से पांच दिनों के दौरान अपने अधिकांश अंडे दे देती है। वयस्क जीवन की अवधि लगभग सात से 21 दिनों की होती है।

चित्र 4 : नर वयस्क–फॉल आर्मी वर्म मादा वयस्क–फॉल आर्मी वर्म

एकीकृत कीट प्रबंधन

कीट निगरानी : फॉल आर्मी वर्म के निवारण हेतु उचित निगरानी आवश्यक है जिसके लिये स्काउटिंग, फेरोमोन ट्रैप, लाइट ट्रैप, मास ट्रैपिंग प्रभावी हैं। स्काउटिंग क्षेत्र जीवों के जीव विज्ञान और उनकी परिस्थिति को समझने में मदद करता है। फेरोमोन ट्रैप एक कीट जाल है जो आमतौर पर फेरोमोन के उपयोग से नर को आकर्षित करने के लिए उपयोग किया जाता है और इसे पुरूष आबादी को नियंत्रित करने के लिए प्रभावी उपकरण के रूप में पाया गया है। फेरोमोन आमतौर पर मादा द्वारा उत्पादित रसायन होता है जो नर को मेटिंग के लिए आकर्षित करता है। निशाचर कीट होने के कारण नर और मादा दोनों कीड़ों पर नजर रखने के लिए ब्लैक लाइट ट्रैप का उपयोग किया जा सकता है।

अच्छी कृषि पद्धतियाँ : फॉल आर्मी वर्म अब एशिया के अधिकांश हिस्सों में एक स्थानिक कीट है और इसलिए इसके निवारण के लिये पूरे एशिया में अच्छी कृषि पद्धतियाँ (गुड़ एग्रीकलचर प्रैक्टिसेस) विकसित करना आवश्यक है। अच्छी कृषि पद्धतियां एक मजबूत मक्के की फसल की कुंजी है और एकीकृत कीट प्रबंधन (इंटीग्रेटेड पेस्ट मैनेजमेंट) की पूरक हैं। जिसमें शामिल हैं मृदा स्वास्थ्य, मृदा सूक्ष्मजीव संरक्षण, कार्बनिक पदार्थ और उर्वरक युक्त संतुलित मिश्रण, नाइट्रोजन, फॉस्फोरस, और पोटाशियम की उचित मात्रा, और उचित रूप से समायोजित मिट्टी पीएच इत्यादि फसल में कीट के कारण होने वाले तनावों का सामना करने में बेहतर सक्षम है। अतः अच्छी तथा सुरक्षित फसल पाने के लिये और अधिक उपज के लिये अच्छी कृषि पद्धतियों का उपयोग करें ।

प्रायोगिक नियंत्रणः सस्य क्रियाओं में फसल–चक्र, अंतरफसल, जाल फसल और पर्यावरण की स्थिति को बदलने वाले अन्य उपाय शामिल हैं। यह अभ्यास फॉल आर्मी वर्म को कम आर्थिक महत्वपूर्ण फसलों पर हमला करने में सक्षम बनाता है। मक्के के साथ फलीदार फसल यानी सोयाबीन, मूंगफली, बीन आदि की इंटरक्रॉपिंग फसल को क्षति से बचाती है। बुवाई से पहले गहरी जुताई करने से प्यूपा शिकारियों के सामने आ जाएगा और नष्ट हो जायेगा। प्रतिरोधी किस्म का चयन और आनुवंशिक रूप से संशोधित बीज फॉल आर्मी के निवारण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। कंजर्वेशनल टिलेज फॉल आर्मी वर्म इन्फेक्शन को नियंत्रित करने के लिए फायदेमंद है क्योंकि यह फसल विविधीकरण को बढ़ावा देता है और शिकारी प्रजातियों के लिए अनुकूल आवास प्रदान करता है।

जैविक नियंत्रणः खेत और खेत के स्तर पर सस्य क्रियाएँ आमतौर पर फसल प्रणाली के भीतर जैविक गतिविधि को बढ़ाते हैं। कवर फसलों का उपयोग करना चाहिये जैसे कि लबलब बीन्स, सनहेम्प आदि क्यूंकि ये फसलें फॉल आर्मी

वर्म के प्राकृतिक दुश्मनों (जैसे कि मकड़ी, बीटल, इयरविग, चींटियों आदि) और परजीवी (जैसे, ट्राइकोग्रामा, टेलेनोमस आदि) को आश्रय प्रदान करती हैं और बदले में यह कीट फॉल आर्मी वर्म के लार्वा को नियंत्रित करने में मदद करते हैं जिससे कीट प्रसार को कम किया जा सकता है।

पुश–पुल तकनीकः पुश–पुल तकनीक आवास प्रबंधन रणनीति है जिसमें मक्के को विकर्षक पौधों के साथ इंटरक्रॉपिंग करना शामिल है यानी डेस्मोडियम (पुश प्लांट) जो फॉल आर्मी वर्म को पीछे हटाता है और नेपियर घास (पुल प्लांट) जैसी ट्रैप फसल को मक्का के खेत में 3–4 पंक्तियों में लगाया जाता है और 5% एनएसकेई या एजाडीराचटिन 1500 पीपीएम के साथ छिड़काव किया जाता है जब ट्रैप फसल क्षति के लक्षण दिखाती है। माना जाता है कि जलवायु अनुकूलित पुश–पुल तकनीक ने एकमात्र फसल के रूप में उगाए गए मक्का की तुलना में 2.7 गुना अधिक उपज के साथ लार्वा आबादी और पौधों की क्षति में महत्वपूर्ण कमी की सूचना दी।

यांत्रिक नियंत्रणः अंडे के द्रव्यमान और नवजात लार्वा को हाथों से इकट्ठा करके मिट्टी के पानी में कुचलकर या डुबोकर नष्ट किया जा सकता है। संक्रमित फसल अवशेष, खरपतवार आदि कीट के लिए मेजबान हैं इसलिए उन्हें खेत से हटा दिया जाना चाहिए। पौधे की वानस्पतिक अवस्था के दौरान फॉल आर्मी वर्म के लार्वा को हटाने से रेशम की अवधि के दौरान कीटनाशक स्प्रे की संख्या कम की जा सकती है। चूंकि फॉल आर्मी वर्म की वयस्क मादा कीट पत्तियों के नीचे क्लस्टर में अंडे देती है, इससे अंडों को मैन्युअल रूप से या प्राकृतिक दुश्मनों द्वारा आसानी से नष्ट किया जा सकता है।

रासायनिक कीटनाशकः रासायनिक कीटनाशकों का प्रयोग केवल गंभीर स्थिति में ही करना चाहिये क्यूंकि ये फसल को भी नुक्सान पहुंचाते है। कीटनाशक उच्च स्तर की फसल सुरक्षा प्रदान करते हैं जो अन्य दृष्टिकोण प्रदान नहीं कर सकते लेकिन उन्हें आर्थिक सीमा के अंतर्गत होना चाहिए। फॉल आर्मी वर्म के आक्रमण को नियंत्रित करने के लिए मेथोमाइल, साइफ्लुथ्रिन और मिथाइल पैराथियान जैसे कुछ सिंथेटिक रासायनिक कीटनाशकों का उपयोग किया जा सकता है। स्पिनोसैड के उपयोग से 90% से अधिक लार्वा मृत्यु दर होती है यदि कीटनाशक का सही समय पर उपयोग किया जाता है। एमेमेक्टिन बेंजोएट 5 एसजी या क्लोरेंट्रानिलिप्रोल 18.5 एससी फॉल आर्मी वर्म के दूसरे इंस्टार लार्वा के नियंत्रण के लिए प्रभावी हैं (जून और सितम्बर में बोई गई फसल के लिए)।

उत्तर पश्चिमी मैदानी क्षेत्र में गेहूँ के पोषण प्रबंधन की समस्याएँ एवं समाधान

सुभाष चन्द्र गिल, नीरज कुमार, राजेन्द्र सिंह छोकर, एस सी त्रिपाठी, राजपाल मीना, अजीत सिंह खरब, नीधि कम्बोज, विकास जून, अनिल कुमार खिप्पल एवं संदीप कुमार
भाकृअनुप–भारतीय गेहूँ एवं जौ अनुसंधान संस्थान, करनाल

गेहूँ भारत की प्रधान खाद्यान्न फसल है। पूरे भारत में यह फसल लगभग तीन करोड़ हैक्टर क्षेत्रफल में उगाई जाती है और इसका उत्पादन अब 11 करोड़ टन के करीब पहुँच गया है। हरित क्रांति (1965–66) के पहले भारत में इस फसल में रासायनिक उर्वरकों का प्रयोग बहुत ही कम मात्रा में होता था। परन्तु हरित क्रांति के दौरान मेक्सिकों देश से लाई गई गेहूँ की उन्नत प्रजातियों के प्रयोग से इस फसल में रासायनिक उर्वरकों का प्रयोग तेज़ी से बढ़ा और आज भारत में कुल रासायनिक पोषक तत्वों (लगभग 2.9 करोड़ टन) के प्रयोग का 24–40 प्रतिशत हिस्सा अकेले इसी फसल में उपयोग किया जाता है। उत्तर पश्चिमी मैदानी क्षेत्र में तथा बदलते जलवायु में जहाँ एक ओर तापमान में वृद्धि होने के संकेत मिल रहे हैं, वहीं दूसरी ओर शहरीकरण एवं औद्योगीकरण के कारण पानी के संसाधनों की भी कमी महसूस की जा रही है। इसलिए आने वाले समय में गेहूँ की फसल को तापमान वृद्धि के साथ–साथ नमी की कमी का भी सामना करना पड़ सकता है। अतः हमें पोषण प्रबंधन करते समय इन सभी पहलुओं पर विशेष नज़र रखनी होगी। वर्तमान परिस्थितियों के अनुसार उत्तर पश्चिमी मैदानी क्षेत्रों में गेहूँ में पोषण प्रबंधन निम्न प्रकार से है।

गेहूँ में पोषक तत्व प्रबंधन

गेहूँ मे नाइट्रोजन पोषक तत्व सबसे अधिक मात्रा में प्रयोग होता है तथा इसकी कमी गेहूँ उगाने वाले लगभग सभी क्षेत्रों मे पाई जाती है। किसान मुख्यतः नाइट्रोजन एवं फास्फोरस का ही प्रयोग करते है। लेकिन कुछ क्षेत्रों में गंधक, जस्ता, मैगनीज एवं बोरान की कमी पाई गई है। ऐसे क्षेत्रों में इन तत्वों का प्रयोग मृदा परीक्षण अनुरूप करना लाभदायक होगा। वर्तमान समय के अनुसार उत्तर पश्चिमी मैदानी क्षेत्र में बुआई के समय 50 कि.ग्रा. डीएपी व 25 कि.ग्रा. यूरिया के प्रयोग की अनुशंसा की जाती हैं। पोटाश की कमी वाली भूमि में 25 कि.ग्रा. एमओपी के प्रयोग की अनुशंसा की जाती हैं। नाइट्रोजन फास्फोरस तथा पोटाश की संतुलित मात्रा देने के लिए एनपीके मिश्रण (12:

तालिका 1: भारत की विभिन्न स्थिति व क्षेत्रों में गेहूँ में उर्वरक प्रबंधन

क्षेत्र	बिजाई का समय व उत्पादन स्थिति	उर्वरकों की मात्रा
उत्तर–पश्चिमी मैदानी क्षेत्र	देर से बिजाई, सिंचित अवस्था	समय से बिजाई 60:24:16 किग्रा/एकड़ नाइट्रोजन, सिंचित अवस्था फास्फोरस तथा पोटाशः 1/3 नाइट्रोजन) तथा पूरी मात्रा फास्फोरस व पोटाश बुआई के समय शेष नत्रजन दो बराबर भाग में पहली व दूसरी सिंचाई के साथ देना चाहिए।
	देर से बिजाई, सिंचित अवस्था	48:24:16 किग्रा/एकड नाइट्रोजन, फास्फोरस तथा पोटाशः 1/3 नाइट्रोजन, तथा पूरी मात्रा फास्फोरस व पोटाश बुआई के समय शेष नत्रजन दो बराबर भाग में पहली व दूसरी सिंचाई के साथ देना चाहिए।
	असिंचित अवस्था	24:12:8 किग्रा/एकड नाइट्रोजन, फास्फोरस तथा पोटाशः नाइट्रोजन, फास्फोरस व पोटाश की पूरी मात्रा बुवाई के समय प्रयोग करना चाहिए
	लवणीय व असिंचित कल्लर भूमि	60:24:16 किग्रा/एकड नाइट्रोजन, फास्फोरस तथा पोटाशः 1/3 नाइट्रोजन तथा फास्फोरस व पोटाश की पूरी मात्रा बुवाई के समय शेष नत्रजन दो बराबर भाग में पहली व दूसरी सिंचाई के साथ देना चाहिए।

32: 16) को 75 कि.ग्रा./एकड़ ड्रील द्वारा बिजाई के प्रयोग की अनुशंसा की जाती हैं। इससे संतुलित पोषक तत्वों के साथ–साथ इनको खूडों में बीज से 2–3 से.मी. गहराई पर डाला जा सकता है। जिससे इनका असर अच्छा रहता है। इस मिश्रण से कुछ मात्रा नत्रजन की तथा पूरी मात्रा फास्फोरस व पोटाश की जरूरत पूरी हो जाएगी। शेष नत्रजन की मात्रा पहली व दूसरी सिंचाई पर दें। यदि धान–गेहूँ फ़सल प्रणाली में धान में जिंक सल्फेट नहीं डाला हो तो गेहूँ में 10 किग्रा/एकड़ जिंक सल्फेट डाल दें। बेहतर होगा कि समेकित पोषक तत्व प्रबन्धन किया जाए। जिसमें फसल अवशेष हरी खाद गोबर की खाद एवं कम्पोस्ट खादों को उर्वरकों के साथ प्रयोग किया जाता है। दलहन फसलों के बाद बोई गई गेहूँ में नत्रजन की मात्रा सारणी में दी गई मात्रा से 25 प्रतिशत कम डाले। भूमि में उर्वरता तथा जीवांश पदार्थ बनाएं रखने के लिए 4–6 टन/एकड़ की दर से गोबर की अच्छी तरह से सड़ी–गली खाद प्रयोग में लाएं। उत्तर पश्चिमी मैदानी क्षेत्र में गेहूँ मे मुख्यतः पोषक तत्वों की मात्रा की आवश्यकता विभिन्न स्थिति व क्षेत्रों के अनुरूप सारणी 1 में दी गई है।

गेहूँ में पोषण प्रबंधन हेतु कुछ महत्वपूर्ण सुझाव

- वर्तमान में उच्च उपज देने वाली किस्मों (एचडी 2967, एचडी 3226, इत्यादि) में पोषण प्रबंधन हेतु क्रमशः 60, 24 एवं 16 किलोग्राम प्रति एकड़ की दर से नाइट्रोजन, फास्फोरस एवं पोटाश की मात्रा की सिफारिश की जाती है।
- नाइट्रोजन को तीन बराबर बराबर हिस्सों (एक तिहाई बिजाई के समय, एक तिहाई पहली सिंचाई पर अर्थात् 20 से 25 दिन बाद एवं एक तिहाई दूसरी सिंचाई पर अर्थात 40 से 45 दिन बाद) में डालने से अधिक उत्पादकता पाई जा सकती है।
- फास्फोरस एवं पोटाश की सिफारिश की गई पूरी मात्रा बिजाई के समय या तो ड्रिल कर दें या छिड़ककर मिट्टी में मिला दें। सिफारिश की गई पोटाश की मात्रा ज़रूर डालें।
- यूरिया को बीज के साथ न मिलाएं क्योंकि यूरिया से अंकुरित होते हुए बीजों पर विपरीत प्रभाव पड़ता है। इससे अंकुरण प्रतिशत घट सकता है जिसके कारण खेत में पौधों की संख्या कम हो जाती है।
- बिजाई के समय डाले जाने वाले रासायनिक उर्वरकों को बीज से कम से कम तीन से पांच सेंटीमीटर नीचे ज्यादा गहराई पर डालें ताकि अंकुरण प्रभावित न हो और जड़ों को पोषक तत्व आसानी से मिल सकें।
- रासायनिक उर्वरकों का प्रयोग करते समय ध्यान रखें कि खेत में गेहूँ से पहले कौन सी फसल ली गई थी और उस फसल में कितना देसी खाद (गोबर खाद) या हरी खाद डाली गई थी। यदि गेहूँ से पूर्व फसल में उपरोक्त खादों का इस्तेमाल किया गया है तो रासायनिक उर्वरकों की मात्रा कम कर दें।
- यदि गेहूँ से पूर्व दलहन फसल ली गई है तो नाइट्रोजन की मात्रा सिफारिश की गई मात्रा से 25 प्रतिशत कम डालें। यदि गेहूँ से पहले धान की फसल ली गई है और उसकी पराली उसी खेत की मिट्टी में मिला दी गई है या सतह पर ही रख ली है तो नाइट्रोजन की मात्रा सिफारिश की गई मात्रा से 25 प्रतिशत अधिक डालें ताकि पराली के गलने सड़ने का विपरीत प्रभाव गेहूँ की फसल पर न पड़े।
- देसी खाद में 0.5 प्रतिशत नाइट्रोजन की मात्रा पाई जाती है। यदि देसी खाद 4 से 6 टन प्रति एकड़ डाला है तो नाइट्रोजन की मात्रा सिफारिश की गई मात्रा से 25 प्रतिशत कम डालें।
- धान की पराली अगर खेत की मिट्टी में मिला दी गई है तो उसी समय खेत में 20 से 25 किलो ग्राम नाइट्रोजन प्रति एकड़ की दर से डालकर सिंचाई कर दें। इससे पराली बहुत जल्दी ही गल–सड़ जाएगी और पराली डालने का कोई विपरीत प्रभाव गेहूँ पर नहीं पड़ेगा।
- बारानी क्षेत्रों में रासायनिक उर्वरकों की सिफारिश की गई पूरी मात्रा बिजाई के समय ही डाल दें।
- अगर सिंचाई का पानी कम है तो तीन से पांच प्रतिशत यूरिया का घोल छिड़ककर भी गेहूँ का अधिक उत्पादन लिया जा सकता है।
- खड़ी फसल में यूरिया का छिड़काव करते समय ध्यान रखें कि फसल की पत्तियों पर ओस या नमी तो नहीं है अन्यथा यूरिया पत्तियों पर चिपक जाएगा और पत्तियाँ झुलस जाएगी। इसलिए यूरिया का छिड़काव दोपहर बाद करें।
- यदि हरी खाद तैयार करते समय फास्फोरस की निर्धारित मात्रा डाली गई है तो गेहूँ में फास्फोरस डालने की ज़रुरत नहीं रहती।
- यदि गेहूँ से पहले आलू की फसल ली गई है तो गेहूँ में फास्फोरस एवं पोटाश की मात्रा डालने से बचा जा सकता है। क्योंकि आलू में इनका प्रयोग बहुत होता है एवं बचा हुआ हिस्सा गेहूँ फसल के लिए पर्याप्त होता है।
- कई बार दिसम्बर–जनवरी के महीनों में अधिक सर्दी या धुंध के कारण गेहूँ की पत्तियाँ पीली पड़ जाती हैं। इस परिस्थिति को देखकर किसानों को ज्यादा मात्रा में नाइट्रोजन का प्रयोग नहीं करना चाहिए क्योंकि मौसम खुलने के साथ ही यह समस्या अपने आप हल हो जाती है।

- रासायनिक उर्वरकों का प्रयोग मिट्टी की जाँच के आधार पर ही किया जाना चाहिए। यदि मिट्टी में पोषक तत्वों की उपलब्धता कम है तो सारणी 1 में बताए अनुसार रासायनिक उर्वरकों का प्रयोग करें। अगर मिट्टी में पोषक तत्वों की उपलब्धता मध्यम या उच्च मात्रा में है तो रासायनिक उर्वरकों की मात्रा कम की जा सकती है।

सल्फर एवं सूक्ष्म तत्वों का उपयोग मिट्टी जांच के परीक्षण के आधार पर ही किया जाना चाहिए।

यदि जिंक की कमी हो तो जिंक सल्फेट 10 किग्रा/एकड़ की दर से बीजाई के समय उपयोग करें।

यदि लौह तत्व की कमी हो तो आयरन सल्फेट 10 किग्रा/एकड़ की दर से बीजाई के समय उपयोग करें।

यदि मैंगनीज तत्व की कमी हो तो मैंगनीज सल्फेट 10 किग्रा/एकड़ की दर से बीजाई के समय उपयोग करें।

यदि ताम्बा तत्व की कमी हो तो कॉपर सल्फेट 10 किग्रा/एकड़ की दर से बीजाई के समय उपयोग करें।

उपरोक्त सभी सूक्ष्मतत्वों वाले पदार्थ सल्फर से भी भरपूर होते हैं, इसलिये अलग से सल्फर डालने की आवश्यकता नहीं होती है।

यदि सूक्ष्म पोषक तत्वों को बिजाई पर न डाला गया हो और फसल में उनकी कमी दिखाई दे तो उपरोक्त सभी सूक्ष्म तत्वों वाले पदार्थों का 0.5% का घोल बनाकर 35 एवं 55 दिन बिजाई उपरान्त स्प्रे करें।

तालिका 2: मिट्टी में उपलब्ध पोषक तत्वों की मात्रा के क्रांतिक मान

क्रसं	पोषक तत्व/गुण	कम	मध्यम	उच्च
1	जैव कार्बन	<0.40	0.40–0.75	>0.75
2	पीएच मान	<6.5	6.5–8.7	>8.7
3	विद्युत चालकता, डेसी साइमन/मी	<0.8	0.8–2.5	>2.5
4	उपलब्ध नाइट्रोजन, किग्रा/है.	<280	280–560	>560
5	उपलब्ध फॉस्फोरस, किग्रा/है.	<10	10–25	>25
6	उपलब्ध पोटैशियम, किग्रा/है.	<120	120–280	>280
7	उपलब्ध कैल्शियम, किग्रा/है.	<2800	2800–6000	>6000
8	उपलब्ध मैग्नीशियम, किग्रा/है.	<240	240–720	>720
9	उपलब्ध सल्फर, किग्रा/है.	<20	20–40	>40
10	उपलब्ध जिंक, मिग्रा/किग्रा (पीपीएम)	<1.0	1.0–3.0	>3.0
11	उपलब्ध आयरन, मिग्रा/किग्रा (पीपीएम)	<4.5	4.5–9.0	>9.0
12	उपलब्ध मैंगनीज, मिग्रा/किग्रा (पीपीएम)	<1.0	1.0–2.0	>2.0
13	उपलब्ध ताम्बा, मिग्रा/किग्रा (पीपीएम)	<0.2	02–1.0	>1.0
14	उपलब्ध बोरोन, मिग्रा/किग्रा (पीपीएम)	0.5	0.5–1.0	>1.0
15	उपलब्ध मोलिब्दिनम (मिग्रा/किग्रा (पीपीएम)	0.01	0.01–0.05	>0.05

बायोफोर्टिफाइड फसलें: स्थिति और भविष्य

काजल नागरे, लोकेन्द्र कुमार, सोनिया श्योरान एवं दीप्ति शर्मा
भाकृअनुप–भारतीय गेहूँ एवं जौ अनुसंधान संस्थान, करनाल

"कुपोषण" शब्द की कोई आमतौर पर सहमत परिभाषा नहीं है। इसका उपयोग विभिन्न पोषक तत्वों की कमी, अधिकता या असंतुलन का वर्णन करने के लिए किया गया है जिसका शरीर की संरचना, कार्य और अन्य कारकों पर नकारात्मक प्रभाव पड़ता है। यद्यपि कुपोषित लोग अल्पपोषित या अतिकुपोषित हो सकते हैं परन्तु "कुपोषण" शब्द का प्रयोग अक्सर "अल्पपोषण" के लिए किया जाता है। एक ओर तो कुपोषण औद्योगिक देशों में भीड़–भाड़ वाली जगहों जैसे झुग्गी–झोपडियों, सामाजिक अलगाव और मादक द्रव्यों में अभ्यस्त गरीब लोगो में पाया जाता है तो वहीं दूसरी ओर वयस्क लोगों में कुपोषण के कारण इन से सर्वथा भिन्न है जो निम्न प्रकार है;

- भोजन का सेवन कम करना
- पोषक तत्वों के अवशोषण में कमी
- बदलती जीवन शैली
- बढ़ा हुआ ऊर्जा व्यय (विशिष्ट रोग प्रक्रियाओं में)

प्रोटीन कुपोषण (मैरास्मस और क्वाशरकोर बीमारियाँ) के अलावा, आयरन, आयोडीन, विटामिन ए और जिंक की कमी विकासशील देशों में कुपोषण के सबसे आम प्रकार हैं। यद्यपि नमक में आयोडीन मिलाना एक वैश्विक सफलता की कहानी रही है परन्तु अन्य सूक्ष्म पोषक पूरक कार्यक्रम अधिकांश जनसंख्या तक पहुँचने में विफल रहे हैं।

छिपी हुई भूख (हिडन हंगर)

जिसे अक्सर सूक्ष्म पोषक तत्वों की कमी के रूप में जाना जाता है, हिडन हंगर एक प्रमुख वैश्विक स्वास्थ्य समस्या है। छिपी हुई भूख एक प्रकार का कुपोषण है जो तब उत्पन्न होता है जब विटामिन और खनिज (जैसे जस्ता, आयोडीन और आयरन) का सेवन और अवशोषण अनुकूलतम स्वास्थ्य और विकास का समर्थन करने के लिए अपर्याप्त होते हैं। सूक्ष्म पोषक तत्वों की कमी में योगदान करने वाले कारकों में शामिल हैं खराब आहार, स्वास्थ्य समस्याएं, बीमारियां, संक्रमण जीवन चरणों के दौरान सूक्ष्म पोषक तत्वों की बढ़ी हुई जरूरत इत्यादि। परिणामस्वरूप, कुपोषण को दूर करने के लिए लक्षित सूक्ष्म पोषक तत्वों के साथ मुख्य फसलों का बायो–फोर्टिफिकेशन महत्वपूर्ण है। बीमारियों के साथ–साथ लक्षित आबादी की भलाई में सुधार भी। प्रोटीन, लाइसिन, ट्रिप्टोफैन, आयरन, जिंक, विटामिन ए और विटामिन–सी आदि सभी मानव पोषण के लिए आवश्यक तत्व हैं, और इनकी कमी से कई तरह के लक्षण और स्वास्थ्य समस्याएं होती हैं। पोषणरोधी कारकों में इरुसिक एसिड, ग्लूकोसाइनोलेट्स और कुनिट्ज़ ट्रिप्सिन इनहिबिटर आदि शामिल हैं, जो उच्च मात्रा में सेवन करने पर मनुष्यों और पशुओं में नकारात्मक प्रभाव डालते हैं। कुछ महत्वपूर्ण पोषक तत्वों के कार्य और कमी के लक्षणों को संक्षेप में नीचे बताया गया है।

(अ) पोषक तत्व कारक

प्रोटीन

यह वृद्धि और ऊतकों की मरम्मत के लिए आवश्यक अमीनों एसिड प्रदान करता है। प्रोटीन की कमी से खराब बौद्धिक विकास, अव्यवस्थित शारीरिक क्रियाशीलता और यहां तक कि मृत्यु भी होती है। आहार में प्रोटीन की कमी से मनुष्यों में क्वाशरकोर और मरास्मस होता है।

जस्ता

यह एक खनिज तत्व है जो मानव उपापचय के लिए आवश्यक 300 एंजाइमों में सहकारक के रूप में कार्य करता है। यह न्यूक्लिक एसिड, प्रोटीन, लिपिड और कार्बोहाइड्रेट के संश्लेषण और विघटन के लिए आवश्यक है। जस्ता सेलुलर अखंडता और प्रतिरक्षा प्रणाली को बनाए रखने में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। जिंक की कमी यौन और हड्डी की परिपक्वता में देरी से जुड़ी है। भूख में कमी, बिगड़ा हुआ प्रतिरक्षा कार्य, दस्त जैसे संक्रमणों के लिए संवेदनशीलता में वृद्धि के अलावा त्वचा पर घाव भी जस्ता की कमी के परिणामस्वरूप होता है।

आयरन

यह एक खनिज तत्व है जिसकी मानव को मांसपेशियों और मस्तिष्क के ऊतकों के समुचित कार्य के लिए आवश्यकता होती है। यह कोशिकाओं के भीतर इलेक्ट्रॉनों के लिए परिवहन माध्यम के रूप में कार्य करता है और लाल रक्त कोशिका

हीमोग्लोबिन द्वारा फेफड़ों से ऑक्सीजन को विभिन्न ऊतकों तक पहुंचाता है। एनीमिया की घटना मानव में आयरन की कमी का सबसे आम लक्षण है। यह समग्र वृद्धि और विकास को प्रभावित करता है, इसके अलावा हल्के मानसिक मंदता और घेंघा का कारण बनता है जिससे कार्य उत्पादकता बुरी तरह प्रभावित होती है।

विटामिन–ए

इसे रेटिनॉल के रूप में भी जाना जाता है, विटामिन ए अनिवार्य रूप से दृश्य प्रणाली के सामान्य कामकाज, वृद्धि और विकास, उपकला कोशिका अखंडता के रखरखाव, प्रतिरक्षा प्रणाली और प्रजनन के लिए आवश्यक है। रतौंधी विटामिन–ए की कमी के शुरुआती लक्षण की पहचान है। जेरोफथाल्मिया और केराटोमलेशिया कंजंक्टिवा और कॉर्निया के संरचनात्मक परिवर्तनों के कारण होता है। गंभीर कमी में, यह अपरिवर्तनीय अंधापन को जन्म दे सकता है।

विटामिन–सी

इसे एस्कॉर्बिक एसिड भी कहा जाता है और उपापचय, त्वचा, हड्डी, दांत और उपास्थि जैसे विभिन्न ऊतकों की मरम्मत के लिए आवश्यक है। विटामिन–सी का उपयोग गैस्ट्रोइंटेस्टाइनल ट्रैक्ट से आयरन के अवशोषण को बढ़ाने के लिए भी किया जाता है। इसकी कमी से स्कर्वी होता है जो मसूड़ों से खून बहना, चोट लगना और दांतों में खराब घाव भरने की विशेषता है और यह जोड़ों और मांसपेशियों में दर्द से भी जुड़ा है।

(ब) पोषण विरोधी कारक

इरुसिक एसिड

सरसों और रेपसीड तेल में पाया जाता है, खाद्य तेलों में इरुसिक एसिड की उच्च सांद्रता मायोकार्डियल चालन को बाधित करती है, बच्चों में लिपिडोसिस का कारण बनती है और रक्त कोलेस्ट्रॉल को बढ़ाती है।

ग्लूकोसाइनोलेट्स

मुख्य रूप से ब्रैसिकेसी परिवार में पाया जाता है। अधिक खपत पशु स्वास्थ्य के लिए हानिकारक है और थायरॉयड ग्रंथियों द्वारा आयोडीन के अवशोषण को प्रभावित करता है, जो बदले में विशेष रूप से सूअर और मुर्गी जैसे गैर–जुगाली करने वालों में फ़ीड दक्षता और वजन बढ़ाने को कम करता है।

कुपोषण दूर करने में बायोफोर्टिफिकेशन की भूमिका

बायोफोर्टिफिकेशन का अर्थ पादप प्रजनन तथा आधुनिक जैव प्रौद्योगिकी के माध्यम से खाद्य फसलों की उच्च पोषण तत्वों से भरपूर किस्में तैयार करके उनका उन्नत सस्य क्रियाओं के माध्यम से उत्पादन करना है। इस रणनीति के लिए मुख्य अंतर्निहित धारणा यह है मुख्य फसल में बिना किसी विशेष बदलाव के मनुष्यों में पोषक तत्वों की आपूर्ति बढ़ायी जा सके। बायोफोर्टिफाइड फसलें लोगों को सूक्ष्म पोषक तत्वों से भरपूर खाद्य पदार्थ प्रदान करने के लिए एक दीर्घकालिक और टिकाऊ विकल्प हैं।

फसलों की बायोफोर्टिफाइड किस्में

भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद के विभिन्न संस्थानों और राज्य कृषि विश्वविद्यालयों ने भारत को खाद्य उत्पादन में आत्मनिर्भर बनाने में बहुत योगदान दिया है। पोषण गुणवत्ता के सर्वोपरि महत्व को समझते हुए एनएआरएस के अनुसंधान प्रयासों ने अब विभिन्न फसलों के लिए अखिल भारतीय समन्वित अनुसंधान परियोजनाओं (एआईसीआरपी) के माध्यम से बायोफोर्टिफाइड किस्मों की एक श्रृंखला का विकास किया है। बायोफोर्टिफाइड किस्में न केवल पर्याप्त कैलोरी प्रदान करती हैं बल्कि पर्याप्त वृद्धि और विकास के लिए आवश्यक पोषक तत्व भी प्रदान करती हैं। हरित क्रांति के दौरान शुरू हुई उच्च उपज देने वाली किस्मों और संकरों के उत्पादन ने उपज क्षमता में भारी वृद्धि की है। पोषण की गुणवत्ता के महत्व के कारण एनएआरएस ने अखिल भारतीय समन्वित अनुसंधान परियोजनाओं के माध्यम से कई फसलों के लिए विभिन्न प्रकार की बायोफोर्टिफाइड किस्मों को विकसित और जारी किया है जिनका विवरण तालिका–1 में दिया गया है।

भविष्य की संभावनाएं

सार्वजनिक क्षेत्र के संस्थानों और नीतियों द्वारा बायोफोर्टिफाइड फसल किस्मों को बढ़ावा देने के गहन प्रयास सफलतापूर्वक उनके अपनाने और स्वीकार्यता में बड़ी वृद्धि सुनिश्चित कर सकते हैं। बायोफोर्टिफाइड किस्मों को लोकप्रिय बनाने में सबसे महत्वपूर्ण कदमों में से एक उच्च गुणवत्ता वाले बीजों के उत्पादन और आपूर्ति के लिए बीज श्रृंखला को मजबूत करना है। अगर बाजार में बायोफोर्टिफाइड अनाज के लिए न्यूनतम समर्थन मूल्य के माध्यम से प्रीमियम सस्ती तरीके से गारंटी दी जाती है तो किसानों को अधिक बायोफोर्टिफाइड फसलें लगाने के लिए प्रोत्साहित किया जा सकेगा। इन बायोफोर्टिफाइड अनाजों

तालिका 1: भारत कि विभिन्न क्षेत्रों के लिए बायोफोर्टीफाइड किस्में

क्र.स .	प्रभेद का नाम	पोषक तत्व का विवरण	अनुकूलन क्षेत्र	विकसित करने वाला संस्थान
गेहूँ				
1	एचडी 3298	प्रोटीन और आयरन से भरपूर	पंजाब, हरियाणा, दिल्ली, राजस्थान (कोटा और उदयपुर डिवीजन को छोड़कर), पश्चिमी उत्तर प्रदेश (झांसी डिवीजन को छोड़कर), जम्मू और कश्मीर के जम्मू और कठुआ जिले, हिमाचल प्रदेश के पांवटा घाटी और ऊना जिले और उत्तराखंड के तराई क्षेत्र,	भाकृअनुप– भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली
2	डीबीडब्ल्यू 303	प्रोटीन से भरपूर	उत्तर पश्चिमी मैदानी क्षेत्र	भाकृअनुप–भारतीय गेहूँ और जौ अनुसंधान संस्थान, करनाल, हरियाणा
3	डब्ल्यूबी 02	आयरन और जिंक से भरपूर	हिमाचल प्रदेश के पांवटा घाटी और ऊना जिले और उत्तराखंड के तराई क्षेत्र	भाकृअनुप–भारतीय गेहूँ एवं जौ अनुसंधान संस्थान, करनाल
4	एचपीबीडब्ल्यू 01	आयरन और जिंक से भरपूर	हिमाचल प्रदेश के पांवटा घाटी और ऊना जिले और उत्तराखंड के तराई क्षेत्र	पंजाब कृषि विश्वविद्यालय, लुधियाना, पंजाब
5	डीडीडब्ल्यू 48	प्रोटीन से भरपूर	महाराष्ट्र, कर्नाटक, आंध्र प्रदेश, गोवा, हरियाणा तमिलनाडु	भाकृअनुप–भारतीय गेहूँ और जौ अनुसंधान संस्थान, करनाल,
6	एमएसीएस 4028	प्रोटीन से भरपूर	महाराष्ट्र और कर्नाटक	अघरकर अनुसंधान संस्थान, पुणे, महाराष्ट्र
7	एचआई 8759	प्रोटीन, आयरन और जिंक से भरपूर	मध्य प्रदेश, छत्तीसगढ़, गुजरात, राजस्थान और उत्तर प्रदेश	भाकृअनुप–भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, क्षेत्रीय स्टेशन, इंदौर
8	एचआई 1605	प्रोटीन, आयरन और जिंक से भरपूर	महाराष्ट्र, कर्नाटक और तमिलनाडु	भाकृअनुप–आईए आरआई, क्षेत्रीयस्टेशन, इंदौर, मध्य प्रदेश।
चावल				
9	सीआरधान 310	पॉलिश अनाज में प्रोटीन से भरपूर	उड़ीसा, मध्य प्रदेश और उत्तर प्रदेश	भाकृअनुप– राष्ट्रीय चावल अनुसंधान संस्थान, कटक, ओडिशा
10	डीआरआर धान 45	पॉलिश अनाज में जिंक से भरपूर	कर्नाटक, तमिलनाडु, आंध्र प्रदेश, तेलंगाना	भाकृअनुप– भारतीय चावल अनुसंधान संस्थान, हैदराबाद
मक्का				
11	पूसा विवेक क्यूपीएम9	देश का पहला प्रोविटामिन ए समृद्ध मक्का, प्रोविटामिन ए, लाइसिन और ट्रिप्टोफेन लाइसिन से भरपूर	जम्मू और कश्मीर, हिमाचल प्रदेश, उत्तराखंड, उत्तर पूर्वी राज्य, महाराष्ट्र, कर्नाटक, आंध्र प्रदेश, तेलंगाना और तमिलनाडु	भाकृअनुप–भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली

12	पूसाएचएम 4	ट्रिप्टोफेन और लाइसिन से भरपूर	पंजाब, हरियाणा, दिल्ली, उत्तराखंड (मैदान), उत्तर प्रदेश (पश्चिमी क्षेत्र)	भाकृअनुप–भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली
13	पूसा एचएम 8	ट्रिप्टोफेन और लाइसिन से भरपूर	महाराष्ट्र, कर्नाटक, आंध्र प्रदेश, तेलंगाना, तमिलनाडु	भाकृअनुप–भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली
14	पूसा एचएम 9	ट्रिप्टोफेन और लाइसिन से भरपूर	उत्तर प्रदेश (पूर्वी क्षेत्र), बिहार, झारखंड, ओडिशा और पश्चिम बंगाल	भाकृअनुप–भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली
बाजरा				
15	एचएचबी299	आयरन और जिंक से भरपूर	हरियाणा, राजस्थान, गुजरात, पंजाब, दिल्ली, महाराष्ट्र और तमिलनाडु	सीसीएस–हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार
16	एएचबी1200	आयरन से भरपूर	हरियाणा, राजस्थान, गुजरात, पंजाब, दिल्ली, महाराष्ट्र और तमिलनाडु	वसंतराव नाइक मराठवाड़ा कृषि विद्यापीठ, परभणी, महाराष्ट्र
सरसों				
17	पूसा सरसों 30	कम इरुसिक एसिड	उत्तर प्रदेश, उत्तराखंड, मध्य प्रदेश और राजस्थान	भाकृअनुप–भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली
18	पूसा डबल जीरो सरसों 31	कम इरुसिक एसिड और ग्लूकोसाइनोलेट्स	राजस्थान (उत्तर और पश्चिमी भाग), पंजाब, हरियाणा, दिल्ली, पश्चिमी उत्तर प्रदेश, जम्मू–कश्मीर के मैदान और हिमाचल प्रदेश	भाकृअनुप–भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली
आलू				
19	बीएचयू सोना	β–कैरोटीन से भरपूर	उड़ीसा	भाकृअनुप– केंद्रीय कंद फसल अनुसंधान संस्थान, तिरुवनंतपुरम, केरल
शकरकंद				
20	बीएचयू कृष्णा	उच्च एंथोसायनिन	उड़ीसा	भाकृअनुप– केंद्रीय कंद फसल अनुसंधान संस्थान, तिरुवनंतपुरम, केरल

को विभिन्न सरकार प्रायोजित कार्यक्रमों जैसे राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा मिशन, राष्ट्रीय कृषि विकास योजना के साथ–साथ पोषण हस्तक्षेप कार्यक्रम जैसे एकीकृत बाल विकास सेवा योजना, 'मध्याह्न भोजन' और सामुदायिक भोजन के माध्यम से पोषण शिक्षा और प्रशिक्षण में शामिल करके गरीब लोगों को आवश्यक संतुलित भोजन उपलब्ध कराने में पोषण विस्तार इकाईयाँ मदद कर पाएंगी। राष्ट्रीय पोषण रणनीति (एनएनएस) 2017 में नीति आयोग द्वारा प्रकाशित की गई है जिसका उद्देश्य और लक्ष्य एनएफएचएस–4 स्तरों से 2022 तक बच्चों (0–3 वर्ष) में कम वजन के प्रसार में 3.0 प्रतिशत/वर्ष की कमी और एनीमिया में 1/3 कमी है।

बच्चों, किशोरों और प्रजनन आयु की महिलाओं आदि में भी 2022 का विजन "कुपोषण मुक्त भारत" है। बायोफोर्टिफाइड फसलों को धीरे–धीरे अपनाने का एक मुख्य कारण उनके स्वास्थ्य लाभों के बारे में समझ की कमी है। परिवार के मुखिया की शैक्षिक पृष्ठभूमि के साथ–साथ किसानों द्वारा प्रदर्शन परीक्षणों, बायोफोर्टिफाइड फसलों के बारे में जागरूकता बढ़ाने के लिए आवश्यक तत्व हैं। इसके अलावा, बायोफोर्टिफाइड फसलों को स्वीकार करने और फिर छोटे बच्चों को पौष्टिक भोजन प्रदान करने के घरेलू निर्णय आवश्यक पहलू हैं जिनका बच्चों के पोषण और स्वास्थ्य पर प्रभाव पड़ता है। बायोफोर्टिफाइड किस्मों की कम उत्पादन क्षमता के डर को भी किसानों द्वारा धीमी गति से अपनाने के एक प्रमुख कारक के रूप में पहचाना गया है। यह पहले से ही स्पष्ट रूप से सिद्ध हो चुका है कि बायोफोर्टिफाइड खेती में मानक के बराबर उपज क्षमता होती है। ऐसी परिस्थितियों में जब प्रो–विटामिन ए और एंथोसायनिन जैसे पोषक तत्वों से उत्पाद की उपस्थिति में परिवर्तन होता है। ग्रामीण क्षेत्रों में ग्राहक बायोफोर्टिफाइड उत्पाद को भोजन के रूप में स्वीकार करने में हिचकिचाते हैं। कृषि खाद्य प्रसंस्करण उद्योग के साथ जुड़ाव से बायोफोर्टिफाइड फसलों के प्रसार में भी मदद मिलेगी। किसानों,उद्योग और उपभोक्ताओं को प्रक्षेत्र प्रदर्शन, टीवी चर्चा, रेडियो शो और लाइव–ड्रामा के माध्यम से संदेश को संप्रेषित करने जैसी मजबूत प्रचार गतिविधियों के माध्यम से बायोफोर्टिफाइड फसलों की लाभों के बारे में जागरूक किया जा सकता है।

जैविक फसल उत्पादनः गुणवत्ता दृष्टिकोण एवं महत्ता

निशा वर्मा[1], पीयूष पुनिया[1], ललिता कुमारी[1], कुशाग्रा जोशी[2], पूनम कश्यप[1] एवं आजाद सिंह[2]
[1]भाकृअनुप–भारतीय कृषि प्रणाली अनुसंधान संस्थान मोदीपुरम, मेरठ
[2]भाकृअनुप–विवेकानन्द पर्वतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, अल्मोड़ा

जैविक खेती कृषि करने का वह तरीका जिसमें रसायनों के प्रयोग को बहुत कम किया जाता है। बदलते पर्यावरण का स्वरूप, बढ़ती प्रतिस्पर्धा और मानव के रहन–सहन से आए बदलाव से स्वास्थ्य पर दूरगामी दुष्प्रभाव देखे जा सकते हैं। उपभोक्ताओं हेतु पर्याप्त, सुरक्षित और पौष्टिक भोजन समाज में अच्छे स्वास्थ्य एवं विकास का द्योतक है तथा जैविक खेती इस उद्देश्य की प्राप्ति का एक विकल्प है। उपभोक्ताओं के स्वस्थ जीवनशैली की ओर जागरूक होने के कारण आज जैविक उत्पादों की मांग बाजार में लगातार बढ़ रही है। शहरी उपभोक्ता जैविक उत्पादों की अधिक कीमत देने को तैयार हैं तथा यह एक बाजार सुनिश्चित करता है। जैविक कृषि अपनाकर कृषक जैविक उत्पादों का विपणन कर अपनी आमदनी में वृद्धि कर सकते हैं। जैविक कृषि किसानों को हर तरीके से आत्मनिर्भर बनाती है। लेख में जैविक कृषि उत्पादों की गुणवत्ता, महत्ता एवं संभावनाओं के बारे में चर्चा की गई है।

जैविक कृषि एक समग्र उत्पादन प्रबंधन प्रणाली है जोकि रासायनिक उर्वरकों, कीटनाशकों, आनुवंशिक रूप से संशोधित जीवों, अन्य हानिकारक या संभावित हानिकारक पदार्थों के अपमिश्रण से हवा, मिट्टी और पानी के प्रदूषण को कम कर इन्हें प्रदूषित होने से रोकती है।

हम कह सकते हैं कि जैविक कृषि एक ऐसी उत्पादन प्रणाली है जो मिट्टी, पारिस्थितिक तंत्र और लोगों के स्वास्थ्य को बनाए रखने में सहायक है। जैविक खेती, स्थानीय स्तर पर उपलब्ध संसाधनों के साथ पारिस्थितिक रूप से खा़द्य सुरक्षा, आदि विषय शामिल हैं। इसके अतिरिक्त बेहतर स्वाद, पशु कल्याण पर मनन व पर्यावरण में गिरावट, आदि विषयों का समाधान भी इसके द्वारा किया जा सकता है।

खाद्य गुणवत्ता और इसका मूल्यांकन

खाद्य गुणवत्ता उत्पाद की उत्कृष्टता या किसी विशेष उपयोग के लिए उत्पाद की उपयोगिता मापने के लिए एक आवश्यक पैमाना है। खाद्य गुणवत्ता को किसी उत्पाद अभिविन्यास या उपभोक्ता उन्मुखीकरण से परिभाषित किया जा सकता है। उत्पादन की गुणवत्ता में कार्यात्मक गुण और दोष, पोषक मूल्य, संवेदी गुण जैसे कि पोषकतत्वों की उपस्थिति, बनावट, स्वाद व सुगंध, अन्य रासायनिक घटक, यांत्रिक गुण, आदि शामिल हैं। खाद्य मूल्यांकन दृष्टिकोण में विश्लेषणात्मक और समग्र मानदंड शामिल हैं। इस दृष्टिकोण के अनुसार, जैविक खाद्य गुणवत्ता मूल्यांकन को इसके सभी पहलुओं और सभी संभावित दृष्टिकोणों, यानी कि समग्र मॉडल पर केंद्रित किया जाना चाहिए। यह समग्र दृष्टिकोण सभी विभिन्न मानदंडों जैसे कि कार्यात्मक मूल्य, पोषण मूल्य, संवेदी मूल्य, जैविक मूल्य और नैतिक संकेतक को एक साथ लाता है।

कार्यात्मक मूल्य

कार्यात्मक मूल्य खाद्य पदार्थों की अलग–अलग विशेषताओं को आवश्यकताओं के अनुरूप इनके भंडारण और प्रसंस्करण जरूरतों को निर्धारित करता है। खाद्य पदार्थ श्रृंखला में सम्मिलित निर्माता, प्रसंस्करण इकाईयां, वितरक और उपभोक्ताओं, आदि के लिए अलग–अलग विशेषताएं सबसे विशिष्ट मापदण्ड हो सकती हैं जिनके लिए खाद्य उत्पाद को निर्मित करने की कल्पना की गई हो।

शुष्क पदार्थ

जैविक पदार्थों के संचय और पोषण संरचना को मापने के लिए इनका शुष्क अवयव एक महत्वपूर्ण संकेतक है क्योंकि इसके मापन से जैव पदार्थों में उपस्थित स्टार्च, सेल्यूलोज, प्रोटीन, वसा, अकार्बनिक खनिज आदि अवयवों की मात्रा का आसानी से अनुमान लगाया जा सकता है। वैज्ञानिकों के द्वारा किये गए अध्ययनों से यह ज्ञात हुआ है कि जैविक फल और सब्जियों में पारंपरिक खाद्य पदार्थों की अपेक्षा शुष्क पदार्थ की मात्रा अधिक होती है, इसके विपरीत अत्यधिक रासायनिक उर्वरकों के उपभोग करने पर पारंपरिक पौधों द्वारा अधिक पानी का अवशोषण कर लेने के कारण यह मात्रा कम हो जाती है। उदाहाण के तौर पर पारंपरिक उत्पादों की तुलना में, जैविक नाशपाती, काले करंट, चुकंदर और अजवाइन में शुष्क पदार्थ की मात्रा अधिक पाई गयी लेकिन इसके विपरीत जैविक गाजर और सेब में कम देखी गयी। अतः हम कह सकते हैं कि जैविक पौधों के उत्पादों का उच्च कार्यात्मक मूल्य उनके अन्दर पाये जाने वाले शुष्क पदार्थ की मात्रा से निर्धारित होता है इसलिए उच्च शुष्क पदार्थ के रहते जैविक उत्पाद बेहतर भंडारण गुणवत्ता का प्रदर्शन भी करते हैं।

कुल शर्करा

फसल उत्पादकों में कुल उच्च चीनी अवयव न केवल स्वाद में सुधार करता है बल्कि उनकी सक्रिय गुणवत्ता के लिए भी एक महत्वपूर्ण घटक है। वैज्ञानिकों द्वारा किए गए विभिन्न अध्ययनों से ज्ञात हुआ है कि जैविक उत्पादों में कुल शर्करा

मुख्य रूप से सुक्रोज की उच्च मात्रा जो अनिवार्य रूप से कुछ सब्जियों और फलों जैसे कि गाजर, शकरकंद लाल चुकंदर, आलू, पालक, गोभी, चेरी और सेब आदि में पायी जाती है– इनके स्वाद एवं सक्रिय गुणवत्ता को बनाए रखने में अहम कारक है।

भंडारण

कटाई के बाद के नुकसान को कम करने, खाद्य गुणवत्ता को बनाए रखने एवं खाद्य सुरक्षा सुनिश्चित करने के लिए एक स्थायी खाद्य प्रणाली का होना अति आवश्यक है। एक ऐसी उत्पादन प्रणाली का होना जरूरी है जो कि कटाई के बाद के नुकसान को कम करने के साथ पर्यावरणीय दृष्टिकोण से भी अनुकूल हो। ऐसी प्रणाली उत्पाद को खराब होने से रोकने के साथ कार्बन डाइऑक्साइड उत्सर्जन को कम करने में भी सहायक होती है। ऐसा देखा गया है कि पारंपरिक फलों की तुलना में जैविक फलों का लंबे समय तक भंडारण किया जा सकता है। जैविक उर्वरकों के साथ उगाई गयी जड़ व कंद वाली सब्जियों जैसे कि गाजर, शलजम, कंद तथा आलू इत्यादि की भण्डारण क्षमता अधिक पायी गई है। इसके विपरीत खनिज उर्वरकों के साथ उगाई गई सब्जियों में पानी का अवशोषण अधिक मात्रा में होता है एवं आसानी से घुलनशील खनिज यौगिक भी पानी के साथ अवशोषित हो जाते हैं। ये कारक भण्डारण अवधि को कम करने का काम करते हैं। खनिज उर्वकों के साथ उगाई गई फसलों में औसत भण्डारण नुकसान 46.4% पाया गया जबकि जैविक खाद के साथ उगाई गई फसलों में यह हानि केवल 28.9% देखी गयी है।

ठोसपन

फलों का ठोसपन बहुत से फल उत्पादों की गुणवत्ता का आंकलन करने के लिए उपयोग की जाने वाली सबसे महत्वपूर्ण विशेषताओं में से एक है। ऐसा देखा गया है कि कटाई के उपरांत भण्डारण और आपूर्ति श्रृंखला के दौरान कुछ फलों के ठोसपन में कमी आ जाती है जोकि पानी की मात्रा में आई कमी तथा व्यवसाय परिवर्तनों से जुड़ी समस्या है। फलों में उच्च कैल्शियम स्तर की मात्रा आमतौर पर फल की धनात्मक गुणवत्ता के साथ उनके ठोस बने रहने से भी जुड़ा हुआ है। इसके विपरीत नत्रजन तथा पोटाशियम फलों के ठोसपन पर नकारात्मक प्रभाव डालती है। जैविक तौर पर जैव प्रबंधित मिट्टी में नत्रजन कैल्श्यिम अनुपात का स्तर निम्न पाया जाता है, जबकि पारंपरिक तौर पर प्रबंधित मिट्टी में यह अनुपात उच्च स्तर पर पाया जाता है। इसलिए भी जैविक विधि द्वारा उगाये गये फलों की भण्डारण क्षमता अधिक पायी गयी है।

भौतिक रासायनिक और खाना बनाने की गुणवत्ता

जैविक पोषक तत्वों का उपयोग कर उगाये हुए धान के चावल पकने की भौतिक रासायनिक गुणवत्ता के कुछ मापदण्डों में बेहतर पाये गये हैं। जैविक चावल में अमाइलोज अवयव की मात्रा अधिक होने के कारण जैल स्थिरता, चावल के दानें का फैलाव क्षेत्र और परिधि अधिक पायी गई, जबकि पतवार व मिलिंग तथा चावल पकने की गुणवत्ता में कोई विशेष अंतर नहीं पाया गया। उच्च– मध्यमवर्ती जिलेटेनाइजेशन तापमान के आधार पर जैविक चावल पारबोइलिंग हेतु पारंपरिक प्रजातियाँ उपयुक्त पायी गयीं क्योंकि ये प्रजातियाँ एक कठोर जैल बनाती हैं जिससे स्थिरता बनी रहती है जोकि चावल पकने की महत्वपूर्ण गुणवत्ता है।

जैविक प्रणाली द्वारा उगाई गेहूँ की पारंपरिक प्रजातियों में अच्छी बेकिंग गुणवत्ता नहीं पायी गई हालाकि पौराणिक कृषि की जैविक किस्मों में अधिक प्रोटीन व ग्लूटेन अवयव होने के कारण यह बेकिंग गुणवत्त में अच्छी होती है।

पोषण का महत्व

खाद्य पदार्थों में उपस्थित प्रदूषकों जैसे कीटनाशक अवशेष, नाइट्रेटस व भारी तत्व आदि के न्यूनतम स्तर या अनुपस्थित होने को अच्छा माना गया है। इसके साथ–साथ महत्वपूर्ण पोषक तत्वों जैसे कि विटामिन, खनिज तत्व व प्रोटीन इत्यादि की प्रचूरता का सर्वोत्तम स्तर पर पाया जाना अति उत्तम समझा गया है। जैविक विधि से उगाई जाने वाली फसलों में प्रदूषक न के बराबर होते हैं तथा ये फसलें स्वाद व महत्वपूर्ण पोषक तत्वों से भी परिपूर्ण होती हैं इन्हीं वजहों से इन फसलों का पारंपरिक विधि द्वारा उगाई गई फसलों की तुलना में पोषक मूल्य अधिक होता है तथा बाजार में भी अधिक मूल्य प्राप्त होता है।

प्रोटीन

जैसा कि हम जानते है कि पारंपरिक उर्वरकों को जैविक फसल उत्पादन में अनुमोदित नहीं किया जाता है। जैविक खेती आमतौर पर प्राकृतिक उर्वरकों जैसे कि पशु और हरी खाद जनित खादों पर आधारित होती है इन कार्बनिक खादों से आमतौर पर कम पादप पोषक तत्व होते हैं। इसलिए पौधों को दिये जाने वाले कुछ पोषक तत्वों जैसे कि नाइट्रोजन की सम्पूर्ण मात्रा इन खादों द्वारा अपर्याप्त आपूर्ति के कारण कम मिल पाती है और इसीलिए हम कह सकते हैं कि पारंपरिक कृषि की तुलना में जैविक कृषि कुछ हद तक कम प्रोटीन अवयव पैदा करने के लिए जिम्मेदार है क्योंकि नाइट्रोजन प्रोटीन उत्पत्ति का एक महत्वपूर्ण अवयव है। यद्यपि उत्पाद से अच्छी प्रोटीन का होना आवश्यक है लेकिन फसल की गुणवत्ता को केवल प्रोटीन अवयव की मात्रा के आधार पर परिभाषित नहीं किया जा सकता है बल्कि प्रोटीन की गुणवत्ता भी विशेष महत्व रखती है। उच्च गुणवत्ता वाली प्रोटीन को आसानी से पचाया जा सकता है और इसमें

आवश्यक अमीनों एसिड भी प्रचुर मात्रा में होते हैं। एक अध्ययन के अनुसार जैविक गेहूँ (14%) के आटे में पारंपरिक आंटे (17%) की तुलना में कम औसत प्रोटीन अवयव पाया गया परन्तु पारम्परिक आटे की तुलना में जैविक आटे में 3 से 5% उच्च. प्रोटीन गुणवत्ता भी पायी गई जो कि खाद्य गुणात्मक दृष्टिकोण से बहुत महत्वपूर्ण है।

वसा

मांस और डेयरी उत्पादों की गुणवत्ता मुख्य रूप से वसा की मात्रा में अन्तर के कारण से निर्धारित होती है। पॉलीअनसैचुरेटेड फैटी एसिड मानव शरीर की बुहत सी आवश्यक शारीरिक क्रियाओं के लिए आवश्यक है, उदाहरण के लिए लिपिड द्वारा चयापचय को विनियमित करना, सेंट्रम सेरेब्रोवास्कुलर रोगों को रोकना और उपचार करने में अपना योगदान देना आदि मुख्य कार्य है। ऑर्गेनिक बीफ और मटन में पारंपरिक उत्पादों के विपरीत समृद्ध पॉलीअनसैचुरेटेड फैटी एसिड अधिक मात्रा में होते हैं। जैविक दूध में भी पॉलीअनसेचुरेटेड फैटी एसिड की मात्रा अधिक पायी गई है। जैविक दूध के उपयोग से मानव स्वास्थ्य के लिए अधिक लाभप्रद ऐसे फैटी एसिड मिल जाते हैं, जिनमें मुख्य रूप से बहुत से पॉलीअनसैचुरेटेड फैटी एसिड जैसे कि लिनोलिक एसिड, लिनोलेनिक एसिड, ट्रांस–11–एसिड और ट्रांस–18–ऑक्टाडेनिक एसिड शामिल हैं। इसके अलावा, जैविक डेयरी उत्पादों में फाइटेन एसिड और प्रिस्टेनिक एसिड भी पाए गये हैं जो मानव शरीर के लिए आवश्यक होने के साथ हृदय रोगों को कम करने के लिए जाने जाते हैं।

फीनोलिक यौगिक और एंटीऑक्सिडेंट फीनोलिक यौगिक, द्वितीयक चयापचय यौगिकों की श्रेणी में हैं जिनमें मुख्यतः फ्लेवोनोइड्स (एंथोसायनिन, फ्लेवोनोल, फ्लेवोनोन, आदि), टर्पिनोइड्स (कैरोटीनॉयड,ल्यूटिन) और नाइट्रोजन यौगिक (ग्लाइकोसाइड, एमाइन, अल्केलॉइड आदि) शामिल हैं। जैविक फलों और सब्जियों में फिनोलिक यौगिकों की एक विस्तृत श्रृंखला पायी गयी है जो एंटीऑक्सिडेंट प्रभाव होने के कारण मानव प्रतिरक्षा को बढ़ाने में मदद करने एवं मुक्त कणों को खत्म करने में सहायक है तथा यह कैंसर विरोधी और इम्युनोमोड्यूलेशन में भी सकारात्मक कार्य कर सकती है।

टमाटर के फीनोलिक यौगिकों का अध्ययन किया गया जिसमें जैविक टमाटर में पारंपरिक उत्पादों की तुलना में क्वेरसेटिन, फीनॉल की उच्च मात्रा पाई गई। ये पदार्थ शक्तिशाली एंटीऑक्सिडेंट हैं, और कैंसर एवं एंटी– बैक्टीरिया जनित रोगों में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। एंथोसायनिन एक प्राकृतिक एंटी–एजिंग पोषक तत्व है, जो अब तक का एक ऐसा प्रभावी एंटीऑक्सिडेंट माना गया जो शरीर की उम्र को धीमा कर सकता है एवं आँखों की थकान को कम कर सकने के साथ ही आँखों की रोशनी में भी सुधार ला सकता है। जैविक अंगूर में एंथोसायनिन की मात्रा पारंपरिक अंगूरों की तुलना में लगभग दो गुना (700.0 मि0ग्रा0 / कि0ग्रा0 ताजा वजन) जबकि पारंपरिक अंगूरों में इसकी मात्रा केवल (329.6 मिलीग्राम / किग्रा ताजा वजन) पाई गई है। जैविक फलों और सब्जियों में पाये जाने वाले फीनोलिक यौगिकों को सारणी 1 में दर्शाया गया है।

तालिका 1. जैविक फलों और सब्जियों में फीनोलिक यौगिक

सामग्री कुल फीनोलिक तत्व	जैविक	पारंपरिक
टमाटर (मि.ग्रा. / 100ग्रा. ताजा वजन)	51.74	45.35
आलू (मि.ग्रा. / 100ग्रा. सूखा वजन)	355.00	292.00
बैंगन (मि.ग्रा. / 100ग्रा. ताजा वजन)	13.64	11.61
स्ट्रॉबेरी (मि.ग्रा. / गैलिक एसिड समकक्ष / 100ग्रा. ताजा वजन)	260.00	288.00
अंगूर / (मि.ग्रा. / कि.ग्रा.)	982.00	973.10
ब्लूबेरी / (मि.ग्रा. / 100ग्रा. ताजा वजन)	319.3	190.3
पेपरमिंट / (मि.ग्रा. / गैलिक एसिड समकक्ष / ग्रा. ताजा वजन)	190.90	191.80

कैरोटीनॉयड

कैरोटीनॉयड प्राकृतिक वर्णकों का एक ऐसा वर्ग है, जिसमें मुख्यतः कैरोटीनॉयड और ल्यूटिन होते हैं। मानव शरीर कैरोटीनॉयड को संश्लेषित नहीं कर पाता है। अतः इसे भोजन मुख्यतः फल और सब्जियाँ आदि के माध्यम से ही ग्रहण कर सकते है। कैरोटिनॉयड मानव शरीर में कैंसर रोधी, एंटी–ऑक्सीडेशन, आँखों की रोशनी और त्वचा की सुरक्षा के साथ–साथ ऑस्टियोपोरोसिस की रोकथाम में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। विभिन्न अध्ययनों से पता चला है कि विभिन्न प्रणालियों का फलों में पाये जाने वाले कैरोटीनॉयड के संचय पर काफी प्रभाव पड़ता है।

यद्यपि पारंपरिक और जैविक उत्पादन प्रणाली पद्धतियों द्वारा उगायी फसलों के उत्पादों में उपस्थित कैरोटीन की मात्रा में कोई विशेष अंतर नहीं है। कैरोटीन या कैरोटीनॉयड की मात्रा पर उत्पादन प्रणाली के नगण्य प्रभाव की व्याख्या करना आसान नहीं है क्योंकि यह कई कारकों पर निर्भर

करता है। मिट्टी में नाइट्रोजन सामग्री का स्तर कैरोटीनॉयड संश्लेषण के साथ निकटता से जुड़ा हुआ है, लेकिन इसके साथ फलने के दौरान धूप के दिनों की संख्या भी एक महत्वपूर्ण कारक है। परम्परागत उत्पादन प्रणालियों में अक्सर तेजी से उच्च नाइट्रोजन ग्रहण करने की विशेषता होती है जो कि वानस्पतिक विकास को बढ़ावा देती है, इससे पादप कोशिकाओं के भीतर क्लोरोप्लास्ट के उत्पादन में वृद्धि होती है। कैरोटीनॉयड संश्लेषण क्लोरोप्लास्ट के भीतर होता है, फलस्वरूप, अत्यधिक वनस्पति विकास वाले पौधों में कैरोटीनॉयड के संचय के लिए कई स्थान मिल जाते हैं। जैविक उत्पादन प्रणाली की तुलना में पारंपरिक उत्पादन प्रणाली द्वारा उगाई फसलों में कैरोटीनॉयड की उच्च मात्रा का होना अधिकांश रूप से देखा गया है। विभिन्न उत्पादन प्रणालियों के व्यवहार को केरोटोनाइडस के ऊपर पड़ने वाले प्रभाव को सारणी–2 में दर्शाया गया है।

आर्गेनिक अम्ल

फलों की गुणवत्ता और समग्र ऑर्गेनोलेप्टिक गुणों में आर्गेनिक अम्लों की महत्वपूर्ण भूमिका पाई गयी है। फलों और सब्जियों में उपस्थित मुख्य आर्गेनिक अम्लों में मैलिक, साइट्रिक, ऑक्जेलिक और फ्यूमेरिक एसिड आदि शामिल हैं। फलों में मैलिक एसिड ताजगी का एक अच्छा संकेतक है, जबकि साइट्रिक एसिड फलों के विशिष्ट अम्लीय स्वाद में योगदान देता है। जैविक उत्पादन आर्गेनिक अम्लों के संचय को काफी बढ़ावा देता है। पारंपरिक उत्पादन प्रणालियों में अक्सर नाइट्रोजन उर्वरकों की उच्च मात्रा का उपयोग किया जाता है इसके विपरीत जैविक खेती में इस तरह के उर्वरक आर्गेनिक अम्लों की सघनता को मंद कर सकते हैं। पारंपरिक खेती में रसायन द्वारा कीट प्रबंधन से फलों में आर्गेनिक अम्लों का स्तर कम हो सकता है। इसी कारण कुछ कीटनाशकों को आर्गेनिक अम्ल के अग्रिम मार्ग अवरोधकों के

तालिका 2 : विभिन्न उत्पादन प्रणालियों के व्यवहार को केरोटोनाइडस के ऊपर पड़ने वाले प्रभाव

फल	उत्पादन प्रणाली के लिए प्रतिक्रिया	विश्लेषण
असरोल	↓	↑जैविक =25%
अंगूर	↓	
संतरा	↑	↓पारम्परिक =37.5%
कृष्णा फल	↓	
तेन्दु फल	=	प्रभावहीन =25%
आलूचा	=	
स्ट्रॉबेरी	↑	

रूप में वर्गीकृत किया जा सकता है और ऐसे कीटनाशक फलों में आर्गेनिक अम्लों के संचय को नकारात्मक रूप से प्रभावित कर सकते हैं।

विटामिन

विटामिन मानव शरीर में बीमारियों के प्रति लड़ने व अनेकों सामान्य शारीरिक कार्यों को बनाए रखने के लिए अति आवश्यक पोषक तत्व हैं, जो मुख्य रूप से पानी में घुलनशील विटामिन और वसा में घुलनशील विटामिन के रूप में जाने जाते हैं। पानी में घुलनशील विटामिन मुख्य रूप से विटामिन सी होता है जोकि मानव शरीर के लिए आवश्यक एक प्रकार का एंटीऑक्सीडेंट भी है यह केवल ताजे फलों और सब्जियों में पाया जाता है।

खनिज तत्व

खनिज तत्व मानव शरीर के ऊत्तकों के लिए आवश्यक संरचनात्मक सामग्री है, जो सामान्य चयापचय व जीवन को बनाए रखने के लिए अति आवश्यक होते हैं। मानव शरीर प्राकृतिक पर्यावरण से अकार्बनिक खनिजों का उपयोग करने में सक्षम नहीं हैं । अतः इन खनिज तत्वों को भोजन से प्राप्त करना चाहिए। जैविक उत्पादों में फास्फोरस, लौह, मैग्नीशियम, जिंक, क्रोमियम की उच्च मात्रा होती है। खनिज तत्वों पर वैज्ञानिको द्वारा किए गए विभिन्न शोधों से यह पता चलता है कि जैविक खेती द्वारा उगाई गई मक्का में जिंक व लौह तत्व अधिक होते हैं जबकि जैविक टमाटर में पारंपरिक टमाटर की अपेक्षा पोटाशियम, कैल्शियम व जिंक अधिक पाये जाते है। जैविक ब्रोकली, केल व लेट्यूस में पोटाशियम, कैल्शियम, मैग्नीशियम, फासफोरस, मैग्नीज व क्रोमियम अधिक पाये जाते है। जैविक काले तिल में पोटाशियम, कैल्शियम, जिंक, मैग्नीशियम, सोडियम, फास्फोरस व लौह तत्व अधिक पाये जाते हैं। जैविक दूध में क्रोमियम व लौह तत्व अधिक पाए जाते हैं।

खाद्य प्रदूषक

नाइट्रेट्स और नाइट्राइट्स

नाइट्रेट द्वारा खाद्य प्रदूषण उपभोक्ताओं के लिए एक प्रमुख स्वास्थ्य चिंता है। नाइट्रेट युक्त खाद्य ग्रहण करने से दूषित नाइट्रेटस अनायास रूप से नाइट्रॉइट में परिवर्तित हो जाते हैं जिसके कारण उपभोक्ताओं में मिथामोग्लोबीनीमिया तथा

तालिका 3. जैविक एवं पारम्परिक उत्पादन प्रणाली में विटामिन

फल	उत्पादन प्रणाली के लिए प्रतिक्रिया	विश्लेषण
असरोल	↓ विटामिन ए	↑जैविक =60%
नींबू	↑ विटामिन सी	
संतरा	= विटामिन सी	↓पारम्परिक =20%
कृष्णा फल	↑ विटामिन सी	
कृष्णा फल	↑ विटामिन ई	
तेन्दु फल	= विटामिन सी	प्रभावहीन =20%
आलूचा	↑ विटामिन सी	
आलूचा	↑ विटामिन ई	

अनोक्सिया हो जाता है। मानव शरीर में प्रवेश करने के बाद, नाइट्राइट हीमोग्लोबिन का ऑक्सीकरण कर सकता है और कैंसर के साथ विषैलेपन का कारण भी बन सकता है। जैविक कृषि से पादप उत्पादों की गुणवत्ता से पता चलता है कि जैविक खेती की तुलना में पारंपरिक रूप से खेती की जाने वाली फसलों में नाइट्रेट और नाइट्राइट अपरिवर्तनीय रूप से अधिक हैं। दैनिक आहार में मानव सब्जियों से 80% नाइट्रेट हो सकते हैं। अध्ययनों से पता चला है कि जैविक सब्जियों और फलों में नाइट्रेट का तत्व परंपरागत सब्जियों और फलों खासकर पत्तेदार सब्जियों की तुलना में 50% कम होता है। पारंपरिक रूप से उगाए गए फलों में नाइट्रेट का स्तर जैविक रूप से उगाए गए फलों से लगभग दो गुना अधिक होता है।

भारी धातुएं

भारी धातु तत्वों का घनत्व 6.0 ग्रा/से. मी.^{3} से अधिक होता है। आर्सेनिक में धातुओं के गुण होते हैं, इसलिए इसे भारी धातुओं में से एक माना जाता है। खाद्य श्रृंखला के माध्यम से भारी धातुएं मानव शरीर में प्रवेश करने के बाद जमा हो सकती हैं, और पता लगे बिना स्थाई क्षति के लिए जिम्मेदार हो सकती हैं। पारंपरिक कृषि प्रणाली में, अधिकांश रासायनिक उर्वरकों, कीटनाशकों में भारी धातुएं होती हैं। भारी धातुओं की अधिकता से स्मरण शक्ति क्षीण हो सकती है, तंत्रिका तंत्र को नुकसान पहुंच सकता है, जिससे कैंसर का खतरा और बांझपन बढ़ सकता है। जैविक खेती में कृषि पारिस्थितिकी तंत्र के लिए हानिकारक तत्वों का इस्तेमाल सख्ती से मना होता है, इसलिए जैविक उत्पादों में भारी धातुओं की मात्रा अपेक्षाकृत कम पायी जाती है। अध्ययनों से पता चला है कि जैविक गेहूँ के आटे में कैडमियम और लेड की मात्रा पारंपरिक गेहूँ के आटे की तुलना में में क्रमश 50% और 95% कम होती है।

कीटनाशक के अवशेष

कीटनाशकों में मुख्य रूप से ऑर्गेनोक्लोरिन, ऑर्गोफॉस्फोरस, पाइरेथ्रॉइड और आर्गेनिक नाइट्रोजन आदि शामिल हैं। अत्यधिक कीटनाशक अवशेषों ने खाद्य सुरक्षा के लिए एक बड़ा खतरा पैदा कर दिया है। अत्यधिक कीटनाशक अवशेष खाद्य श्रृंखला में जमा हो सकते हैं और शरीर को कार्सिनोजेनिक, टेराटोजेनिक और म्यूटाजेनिक नुकसान पहुँचा सकते हैं। क्योंकि किसी भी रासायनिक रूप से बने कृत्रिम कीटनाशकों का प्रयोग जैविक उत्पादन प्रक्रिया में निषिद्ध है, इसलिए जैविक खाद्य पदार्थों में कीटनाशकों के अवशेष नहीं होते हैं।

जीवाणुतत्व–संबंधी गुणवत्ता

फसल कटाई के बाद के संचालन और वितरण के दौरान फफूंदीय उत्पत्ति या सूक्ष्मजीवों द्वारा अक्रमण एक गंभीर समस्या है, जिसके परिणामस्वरूप उत्पाद की शेल्फ लाइफ कम हो जाती है, और खाद्य जनित बीमारियों का खतरा बढ़ जाता है। आमतौर पर जैविक उत्पादों में सकारात्मक गुण पाए जाते हैं। जैविक खेती में फफूंदनाशकों की अनुपस्थिति जैविक फलों में विकारों के विकास के लिए अनुकूल वातावरण बना सकती है। इसके अतिरिक्त, चूंकि जैविक खेती कृत्रिम कीटनाशकों का उपयोग नहीं करती है, इसलिए कीट और कृन्तक आसानी से फलों के छिलके को नुकसान पहुंचाते हैं, जिसके कारण कवक फलों में प्रवेश कर सकते हैं। जैविक खेती में अपनाए जाने वाले खाद के स्रोतों को जैविक फलों की सूक्ष्मजीव सुरक्षा के रूप में भी उद्धृत किया गया है। जैविक खेती में खाद के उपयोग से मुख्य रूप से *एस्चेरिचिया कोलाई, साल्मोनेला, लिस्टेरिया मोनोसाइटोजेनेस* एवं *एंटरोबैक्टर एरोजेन्स* प्रजातियों के जीवाणुओं के आक्रमण की आशंका बनी रहती है, हालांकि उपचार किया हुआ खाद निर्विवाद रूप से एक अच्छा उर्वरक होता है। अनुपचारित खाद के प्रयोग से उपचारित खाद की तुलना में प्रदूषण का जोखिम अधिक होता है क्योंकि उपचारिक खाद में उल्लेखनीय रूप से कम रोगजनक रोगाणु होते हैं। प्रदूषण के स्तर को कम करने के लिए, उपयोग से पहले पशु खाद तैयार की जानी चाहिए ऐसा करने से दूषित फल द्वारा रोगजनकों का खतरा कम हो जाता है। पके आम के फलों में नाइट्रोजन के स्तर एवं एन्थ्रेक्नोज रोग की गंभीरता के बीच एक मजबूत संबंध पाया गया है। उच्च नाइट्रोजन स्तर पर एन्थ्रेक्नोज रोग अधिक स्पष्ट था। सूक्ष्मजीवी भार को कम करने और जैविक फल उत्पादन में सुधार की लाभप्रदता के लिए संतुलित पोषण और व्यवस्थित रूप से प्रमाणित पौध संरक्षण उत्पादों का उपयोग महत्वपूर्ण पहलू है।

संवेदी गुणवत्ता

संवेदी गुणवत्ता को मानवीय संवेदनाओं के आधार पर मानकीकृत परीक्षणों जैसे कि स्वाद, गंध, स्पर्श, दृष्टि और श्रवण के उपयोग द्वारा निर्धारित किया जाता है। इन मानदंडों में दिखावट के साथ–साथ स्वाद, गंध या संरचना जैसी अन्य संगठनात्मक विशषताएँ कच्चे माल और तैयार उत्पादों के मूल्यांकन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। संवेदी गुणवत्ता का बहुत महत्व है क्योंकि यह भोजन खरीदते समय चुनाव करने की प्रक्रिया को प्रभावित करती है। खाद्य उत्पादों का संवेदी मूल्यांकन दो मुख्य तरीकों पर आधारित है। पहला उपभोक्ता परीक्षणों में मूल्यांकित की गई वांछनीयता, स्वीकृति और उपभोक्ता पसंद का आकलन करना है। कई अध्ययनों ने साबित किया है कि जैविक खेती द्वारा उगाई सब्जियों और फलों में बेहतर स्वाद और गंध होती है। यह सम्बंध गाजर, आलू, अजवाइन, लाल चुकंदर, गोभी, टमाटर के साथ–साथ सेब, चेरी और रेड कुंरट में भी पाया गया। जैविक फलों में अधिक शक्कर होती है, जो संभवतः उपभोक्ताओं की बेहतर स्वाद धारणा को प्रभावित करती है। जैविक अनाज से बने ब्रेड में स्वाद और गंध के साथ साथ लचीलापन भी बेहतर पाया गया है। जानवरों की खाद्य पसंद पर दिलचस्प अध्ययन किया गया जिसमें जानवरों को जैविक एवं पारंपरिक चारा दिया गया एवं पाया गया कि पशुओं ने जैविक चारे को अधिक पसंद किया। इसका कारण जैविक और पारंपरिक चारे के बीच स्वाद में अंतर था।

जैविक मूल्य

जैविक मूल्य मानव स्वास्थ्य पर भोजन के प्रभाव को परिभाषित करता है। यह मानदंड भोजन की गुणवत्ता के लिए समग्र दृष्टिकोण और इस विश्वास पर आधारित है कि खाद्य पदार्थों की रासायनिक संरचना का ज्ञान उपभोग किए गए भोजन और मानव स्वास्थ्य के बीच संबंध निर्धारित करने के लिए पर्याप्त है कि नहीं है। स्वास्थ्य को न केवल बीमारी की अनुपस्थिति के रूप में समझा जाता है, बल्कि कल्याण, प्रजनन और जीवन शक्ति के रूप में भी समझा जाता है। एक औपचारिक, तार्किक और आर्थिक प्रकृति की कई बाधाओं के कारण, मानव स्वास्थ्य पर जैविक भोजन के प्रत्यक्ष प्रभाव का आकलन करने वाले बहुत कम अध्ययन किए गए हैं। एक ही मिट्टी और कृषि–जलवायु स्थिति में जैविक रूप से उगाई और पारंपरिक रूप से उगाई गई सब्जियों (पालक, टमाटर, चुकंदर और गाजर) की कुल एंटीऑक्सीडेंट क्षमता का इन विट्रो जैव उपलब्धता में अध्ययन किया गया। इन विट्रो पाचन से पहले और बाद में सब्जियों की एंटीऑक्सीडेंट क्षमता के अंतर के आधार पर प्रतिशत प्रतिलाभ का अध्ययन किया गया, परिणामस्वरूप पारंपरिक चुकंदर में उपस्थित एंटीऑक्सिडेंट पाचन के बाद सबसे अधिक प्रभावी पाये गये। पालक, चुकंदर और टमाटर के विषय में जैविक सब्जियों की तुलना में पाचन के बाद एंटीऑक्सिडेंट क्षमता का प्रतिलाभ पारंपरिक सब्जियों में थोड़ा बेहतर पाया गया, जबकि जैविक और पारंपरिक गाजर की इन विट्रो जैव उपलब्धता में कोई महत्वपूर्ण अंतर नहीं पाया गया।

नैतिक मूल्य

भोजन की गुणवत्ता के नैतिक मूल्य में तीन पक्ष शामिल हैं। पर्यावरणीय प्रभाव का पक्ष, सामाजिक–आर्थिक पक्ष और कृषि पशु पक्ष। उत्पादों की गुणवत्ता का निर्धारण करने वाले मुख्य कारकों में से एक पर्यावरण की गुणवत्ता है। हम सबसे अच्छी फसल की गुणवत्ता की उम्मीद तभी कर सकते हैं जब हवा, मिट्टी, जमीन और सतह का पानी आवश्यक गुणवत्ता मानकों को पूरा करता हो। जैविक खेती पर एक कानूनी विनियमन कृषि वातावरण की गुणवत्ता की परिभाषा पर विशिष्ट मार्गदर्शन प्रदान नहीं करता है जहाँ जैविक उत्पादन हो सकता है। जैविक किसानों को पर्यावरण को अच्छी स्थिति में बनाए रखना आवश्यक है और उन्हें चक्र के दृष्टिकोण का समर्थन करने का प्रयास करना चाहिए। जैविक उत्पादन विधियां कृषि पहलुओं के दबाव के खिलाफ सभी पर्यावरणीय घटकों के संरक्षण पर केंद्रित हैं। जैविक और पारंपरिक खेती के पर्यावरणीय प्रभाव पर शोध किया गया, जिसमें पाया गया कि जैविक खेती से ऊर्जा की कम खपत होती है, जिसका बहुत महत्व है। आजकल, जब विश्व ऊर्जा संकट पर केंद्रित है, जैविक कृषि में कम ऊर्जा की खपत होती है क्योंकि यह उर्वरकों और कीटनाशकों पर निर्भर नहीं होती जिनके उत्पादन के लिए उच्च ऊर्जा लागत की आवश्यकता होती है। इसके अलावा, उच्च ऊर्जा का प्रयोग ग्रीनहाउस गैसों के बड़े उत्सर्जन को जन्म देता है और पारंपरिक खेती उनके लिए एक बहुत बड़ा उत्सर्जन स्रोत है। इसलिए, जैविक संयंत्र उत्पादन ग्रीनहाउस गैस उत्सर्जन को कम करने में महत्वपूर्ण योगदान देता है। इसके अलावा, पारंपरिक कृषि में कीटनाशकों के इस्तेमाल से जल संसाधनों का प्रदूषण होता है। जैविक कृषि परिदृश्य की स्थानिक जटिलता से उत्पन्न जैविक विविधता तीन महत्वपूर्ण कार्यों का समर्थन करती है: एक पारिस्थितिक कार्य, जो कि जैविक विविधता और होमियोस्टेसिस को बनाए रखता है, रोगों और कीटों से लड़ने के बजाय रोकथाम पर आधारित उत्पादन कार्य और स्वास्थ्य एवं कल्याण का कार्य, जोकि मनुष्य का अभिन्न अंग है। यह कार्य प्रकृति के साथ सामंजस्यपूर्ण सह–अस्तित्व के माध्यम से ही अस्तित्व में हो सकता है। इसके अलावा, पर्यावरण के प्रति जागरूक उपभोक्ता अब अधिक से अधिक आश्वस्त हैं कि खाद्य उत्पादों की खरीद के बारे में निर्णय लेने के दौरान भी पशुपालन के तरीके महत्वपूर्ण हैं। इसका कारण जानवरों की पीड़ा है, जो पशुपालन (भीड़, आक्रामकता, बीमारी) की बहुत अनुचित परिस्थितियों का परिणाम है।

कुपोषण को दूर करने के लिए बायोफोर्टिफाइड खेती की भूमिका और उनके पोषण का गठन

सुजाता एच टी, दीक्षा गुप्ता, सत्यप्रिय, सीताराम बिश्नोई, सत्य प्रकाश एवं वी संगीता
कृषि प्रसार संभाग, भाकृअनुप–भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली

गरीबी, भूख और कुपोषण भारत में हरित क्रांति से पहले की प्रमुख समस्याएं थीं। लेकिन, भारतीय कृषि ने पिछले कुछ वर्षों में प्रभावशाली प्रगति की है और फसल उत्पादन में अभूतपूर्व वृद्धि देखी गई है। हरित क्रांति खाद्यान्न के उत्पादन में पांच गुना वृद्धि के कारण भूख की समस्या में कमी हुई है। हालांकि, अभी भी भारत में 21.9 प्रतिशत आबादी अत्यधिक गरीबी में है और 15.2 प्रतिशत लोग कुपोषित हैं। विश्व स्तर पर, लगभग दो अरब लोग कुपोषण से पीड़ित हैं, जबकि 815 मिलियन लोग कुपोषित हैं। अब, देश की बढ़ती जनसंख्या का प्रमुख मुद्दा कुपोषण है। कुपोषण संतुलित आहार की अपर्याप्त खपत के कारण होने वाला सबसे आम पोषण संबंधी विकार है और यह विकासशील और अविकसित देशों में गंभीर सामाजिक–आर्थिक प्रभाव डालता है। राष्ट्रीय परिवार स्वास्थ्य सर्वेक्षण–4 (2015–16) के अनुसार, 38.4 प्रतिशत भारतीय बच्चे (<5 वर्ष) अविकसित हैं, 21.0 प्रतिशत वेस्टेड हैं और 35.7 प्रतिशत बच्चे कम वजन के हैं। एनीमिया भी एक गंभीर स्वास्थ्य समस्या है, जहां 58.4 प्रतिशत भारतीय बच्चे (6–59 महीने) और 53 प्रतिशत वयस्क महिलाएं (15–49 वर्ष) इस कमी से प्रभावित हैं। यह आंकड़ा वयस्क पुरूषों में भी चिंताजनक है क्योंकि 22.7 प्रतिशत एनीमिया से ग्रसित पाए गए। इसके अलावा, दुनिया भर में लगभग दो अरब लोग एक अन्य प्रकार की भूख से पीड़ित हैं, जिसे "छिपी हुई भूख" के रूप में जाना जाता है, जो दैनिक आहार में आवश्यक सूक्ष्म पोषक तत्वों के अपर्याप्त सेवन के कारण होता है। वैश्विक समुदाय के 17 सतत विकास लक्ष्यों में से 12 पोषण से जुड़े हुए हैं; जो स्वस्थ समाज और सफल राष्ट्र के निर्माण में पोषण की भूमिका को दर्शाता है। इसलिए, कुपोषण और छिपी भूख को रोकने के लिए कुपोषित आबादी को अधिक पौष्टिक भोजन पहुंचाना समय की मांग है।

कुपोषण से निपटना

कुपोषण का तात्पर्य प्रोटीन, ऊर्जा, विटामिन और खनिज पोषक तत्वों की कमी, अधिक या असंतुलित सेवन से है। पोषण पूरकता से कुपोषण या छिपी हुई भूख को दूर किया जा सकता है। कई अलग–अलग रणनीतियाँ या विधियाँ हैं जिनका पालन पोषण पूरकता के लिए किया जाता है जैसे कि आहार विविधीकरण, चिकित्सा पूरकता, वाणिज्यिक दृढ़ीकरण और फसल जैवसंवर्धन। सबसे वांछनीय दृष्टिकोण भोजन सेवन की विविधता को बढ़ाना है जिसे 'आहार विविधीकरण' कहा जाता है। हालांकि, कम आय वाले कई विकासशील देशों में आहार–विविधता का अभ्यास संभव नहीं हो सकता है। मेडिकल सप्लीमेंट कृत्रिम रूप से पोषक तत्वों को जोड़ने से संबंधित है, या तो विटामिन ए और आयरन की गोलियां/कैप्सूल जैसे पूरक प्रदान करके। इसके अलावा, बुनियादी खाद्य उत्पादों जैसे कि आयोडीनयुक्त नमक, आयरन–और फोलेट–फोर्टिफाइड आटा और विटामिन ए युक्त खाना पकाने के तेल में पोषक तत्वों को जोड़ना खाद्य/वाणिज्यिक दृढ़ीकरण है। बायोफोर्टिफिकेशन एक स्थायी दृष्टिकोण है जहां मुख्य खाद्य फसलों के पोषण संबंधी प्रोफाइल को बढ़ाया जाता है। हालांकि, इन उपर्युक्त विधियों में से प्रत्येक आदर्श परिस्थितियों में प्रभावी है, लेकिन प्राकृतिक रूप में आहार के माध्यम से पोषक तत्वों के वांछित स्तर को प्रदान करने के लिए 'बायोफोर्टिफिकेशन' सबसे टिकाऊ और लागत प्रभावी साधन बना हुआ है।

बायोफोर्टिफाइड फसलें

बायोफोर्टिफिकेशन वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा खाद्य फसलों के खाद्य हिस्से की पोषक सामग्री को जानबूझकर पारंपरिक पौधों के प्रजनन, या उन्नत कृषि विज्ञान की विधाओं और आधुनिक जैव प्रौद्योगिकी के माध्यम से उपभोक्ताओं द्वारा पसंद की जाने वाली किसी भी विशेषता का त्याग किए बिना महत्वपूर्ण रूप से बढ़ाया जाता है। यह बायोफोर्टिफाइड प्रधान खाद्य फसलों और किस्मों के बड़े पैमाने पर परिचय के माध्यम से कम आय वाली आबादी में सूक्ष्म पोषक तत्व कुपोषण को कम करने के लिए खाद्य आधारित रणनीति है। फसलों के बायोफोर्टिफिकेशन को पोषण–संवेदनशील–कृषि हस्तक्षेप के रूप में भी मान्यता प्राप्त है जो विटामिन और खनिज की कमी को कम कर सकता है। भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद, राज्य कृषि विश्वविद्यालयों और अन्य अनुसंधान संस्थानों (आईसीआरआईएसएटी और बीएआरसी इत्यादि) के केंद्रित प्रयासों से कई फसलों में बायोफोर्टिफाइड किस्मों को विकसित करने और जारी करने में असाधारण परिणाम प्राप्त हुए हैं। वर्तमान में, चावल, गेहूँ, मक्का, बाजरा, दाल, मूंगफली, अलसी, फूलगोभी, आलू, शकरकंद, रतालू और अनार जैसी फसलें पोषक तत्वों (प्रोटीन, लोहा, जस्ता, लाइसिन, ट्रिप्टोफेन, प्रोविटामिन–ए, विटामिन–सी, बीटा–कैरोटीन, ओलिक एसिड, लिनोलिक एसिड और एंथोसायनिन) के लिए जैव–समृद्ध हैं और सरसों और सोयाबीन जैसी फसलें पोषण–विरोधी कारकों (एरुसिक एसिड, ग्लूकोसाइनोलेट्स, कुनिट्ज़ ट्रिप्सिन इनहिबिटर और लिपोक्सिनेज) के लिए जानी जाती हैं। बायोफोर्टिफाइड फसलों और किस्मों के कई उदाहरण उनके गुण वाले पोषण या पोषण–विरोधी कारकों के साथ तालिका 1 में दिए गए हैं।

बायोफोर्टिफाइड फसलें	बायोफोर्टिफाइड किस्मों का विमोचन	पोषक तत्व	आधारभूत स्तर	प्राप्त किए गए स्तर
पोषण संबंधी कारक				
धान	बायोफोर्टिफाइड किस्मों का विमोचन धन 45, डीआरआर धन 48, डीआरआर धन 49, चावल एमएस, सीआर धन 311 (मुकुल) और सीआर धन 315	प्रोटीन (प्रतिशत) जिंक (पीपीएम)	7–8 12–16	10.1–10.3 20.1– 27.4
गेहूँ	डब्ल्यूबी 02, एचपीबीडब्ल्यू 01, पूसा तेजस (एचआई–8759) ड्यूरम, पूसा उजाला (एचआई–1605), एचडी 3171, एचआई–8777 (ड्यूरम), एमएसीएस–4028 (ड्यूरम), पीबीडब्ल्यू 752, पीबीडब्ल्यू 757, करण वंदना (डीबीडब्ल्यू–187), डीबीडब्ल्यू 173, यूएएस 375, डीडीडब्ल्यू 47, पीबीडब्ल्यू 771, एचआई–8802 (ड्यूरम), एचआई–8805 (ड्यूरम), एचडी–3249, एमएसीएस–4058 (ड्यूरम), एचडी–3298, एचआई 1633, डीबीडब्ल्यू 303 और डीडीडब्ल्यू–48 (ड्यूरम)	आयरन (पीपीएम) जिंक (पीपीएम) प्रोटीन (प्रतिशत)	28–32 30–32 8–10	40.0–48.7 40.0–47.1 12.0–14.7
मक्का	विवेक क्यूपीएम 9, पूसा एचएम–4 इम्प्रूव्ड, पूसा एचएम–8 इम्प्रूव्ड, पूसा एचएम–9 इम्प्रूव्ड, पूसा वीएच–27 इम्प्रूव्ड, पूसा एचक्यूपीएम–5 इम्प्रूव्ड, पूसा एचक्यूपीएम–7 इम्प्रूव्ड, आईक्यूएमएच–201, आईक्यूएमएच–202 और आईक्यूएमएच–203	प्रोविटामिन–ए (पीपीएम)	28–32	40.0–48.7
बाजरा	एचएचबी 299, एएचबी 200 एफइ, एएचब1269 एफइ, एबिवी 04, फुले महाशक्ति, आरएचबी 233, आरएचबी 234 और एचएचबी 311	आयरन (पीपीएम) जिंक (पीपीएम)	45–50 30–35	73.0–91.0 41.0–63.0
रागी	वीआर–929 (वेगावती), सीएफएमवी–1 (इंद्रावती) और सीएफएमवी–2	कैल्शियम (मिली ग्राम/100 ग्राम) जिंक (पीपीएम)	200 16	428–454 25.0–44.0
थोड़ा बाजरा	सीएलएमवी1	आयरन (पीपीएम) जिंक (पीपीएम)	25 20	59 35
मसूर	पूसा अगेती मसूर और आईपीएल 220	आयरन (पीपीएम) जिंक (पीपीएम)	45–50 35–40	65–73 51
मूंगफली	गिरनार 4 और गिरनार 5	ओलेक एसिड (प्रतिशत)	45–52	78.4–78.5
अलसी	टीएल 99	लिनोलिक एसिड (प्रतिशत)	20–25	58.9

गोभी	पूसा बीटा केसरी–1	प्रोविटामिन–ए (पीपीएम)	नगण्य	8.0–10.0
शकरकंद	भू सोना और भू कृष्णा	प्रोविटामिन–ए (मिलीग्राम/100 ग्राम)	2.0–3.0	14.0
ग्रेटर यम	श्री नीलिमा और दा–340	एंथोसायनिन (मिलीग्राम/100 ग्राम)	नगण्य	50.0–141.4
		क्रूड प्रोटीन (प्रतिशत)	2.7	15.4
		जिंक (पीपीएम)	22–32	49.8
		आयरन (पीपीएम)	70–120	136.2
		कैल्शियम (पीपीएम)	800–1200	1890
अनार	सोलापुर लाल	आयरन (मिलीग्राम/100 ग्राम)	2.7–3.2	5.6–6.1
		जिंक (मिलीग्राम/100 ग्राम)	0.50–0.54	0.64–0.69
		विटामिन–सी (मिलीग्राम/100 ग्राम)	14.2–14.6	19.4–19.8
पोषण विरोधी कारक				
सरसों	पूसा सरसों 30, पूसा डबल जीरो सरसों 31 और पूसा सरसों 32	इरुसिक एसिड (प्रतिशत)	>40.0	<1.32
		ग्लूकोसाइनोलेट्स (पीपीएम)	>120.0	<29.41
सोयाबीन	एनआरसी 127, एनआरसी 132 और एनआरसी 147	केटीआई (मिलीग्राम /ग्राम बीज) 30–45	नगण्य	एनआरसी 127, एनआर सी 132 और एनआरसी 147
		लिपोक्सिजिनेज–2	उपस्थित	अनुपस्थित
		ओलेक एसिड (प्रतिशत)	22–25	42.0

फसलों में बायोफोर्टिफिकेशन की प्रक्रियाएं

फसल पौधों में आवश्यक सूक्ष्म पोषक तत्वों का बायोफोर्टिफिकेशन विभिन्न प्रक्रियाओं के माध्यम से किया जा सकता है, जिसमें पारंपरिक प्रजनन, आनुवंशिक इंजीनियरिंग, पारस्परिक प्रजनन और कृषि सम्बंधी दृष्टिकोण शामिल हैं। पारंपरिक प्रजनन ने बायोफोर्टिफाइड खाद्य फसलों के विकास के लिए शोधकर्ताओं का ध्यान मुख्य रूप से आकर्षित किया है। पारंपरिक पौधों के प्रजनन में दो पौधों के बीच पर परागण शामिल है जो आनुवंशिक रूप से करीबी रिश्तेदार हैं, अनुकूल चयनित लक्षणों के साथ नए पौधों के उत्पादन के उद्देश्य से लैंगिक यौन पुनर्संयोजन को प्रेरित करते हैं।

जबकि, जेनेटिक इंजीनियरिंग में पौधे में एक वांछित विशेषता पैदा करने के उद्देश्य से पौधे की आनुवंशिक सामग्री में एक अलग प्रजाति या जीव से प्राप्त चयनित आनुवंशिक सामग्री को सम्मिलित करना शामिल है। इस प्रक्रिया का पालन पारंपरिक पौधों के प्रजनन द्वारा किया जा सकता है। पारस्परिक प्रजनन एक दो–चरणीय प्रक्रिया को संदर्भित करता है जिसके द्वारा प्रेरित उत्परिवर्तजन के बाद पारंपरिक पौधों के प्रजनन द्वारा वांछित लक्षणों वाले पौधों का उत्पादन किया जाता है। उत्परिवर्तन उस प्रक्रिया को संदर्भित करता है जिसके द्वारा पौधों की आनुवंशिक सामग्री में उत्परिवर्तन को रसायनों या विकिरण का उपयोग करके प्रेरित किया जाता है जिसके परिणामस्वरूप पौधे में नए, वांछित लक्षण उत्पन्न होते हैं। कृषि संबंधी सुदृढ़ीकरण मृदा प्रयोग, पर्णीय छिडकाव या सिंचाई के पानी में पोषक तत्वों के अतिरिक्त के माध्यम से प्राप्त किया जा सकता है। यह दृष्टिकोण आयोडीन, सेलेनियम, लोहा और जस्ता सहित कुछ सूक्ष्म तत्वों तक सीमित रहता है, जिनकी कुछ भौगोलिक क्षेत्रों की मिट्टी में कमी होती है।

लाभ और सीमाएं

बायोफोर्टिफिकेशन मुख्य रूप से ग्रामीण गरीबों के लिए लक्षित है, जो अपने पोषण के प्राथमिक स्रोत के रूप में स्थानीय रूप से उत्पादित मुख्य खाद्य पदार्थों पर बहुत अधिक निर्भर हैं और जिनके पास अकसर व्यावसायिक रूप से संसाधित फोर्टिफाइड खाद्य पदार्थों के लिए वित्तीय या बाजार पहुंच प्रतिबंधित है। यह किसानों के हाथों में एक समाधान भी रखता है, सूक्ष्म पोषक तत्वों को अन्य कृषि विज्ञान और उपभोग लक्षणों के साथ जोड़ता है जो किसान पसंद करते हैं। बायोफोर्टिफाइड फसलों के लिए लक्षित सूक्ष्म पोषक स्तर मौजूदा खपत पैटर्न के आधार पर महिलाओं और बच्चों की विशिष्ट आहार संबंधी जरूरतों को पूरा करने के लिए निर्धारित हैं। घर की खाद्य जरूरतों को पूरा करने के बाद, अधिशेष बायोफोर्टिफाइड फसलें ग्रामीण और शहरी खुदरा दुकानों में अपना रास्ता बनाती हैं। पोषण पूरकता के अन्य तरीकों की तुलना में बायोफोर्टिफिकेशन प्रकृति में दीर्घकालिक और लागत प्रभावी है। बायोफोर्टिफाइड फसलें ग्रामीण आबादी तक पहुंचने का एक व्यवहार्य साधन भी हैं, जिनकी विविध आहार या अन्य सूक्ष्म पोषक हस्तक्षेपों तक सीमित पहुंच हो सकती है। सूक्ष्म तत्वों से भरपूर बीज बीमारियों और पर्यावरणीय तनावों सहित जैविक और अजैविक तनावों का विरोध करने के लिए अधिक मजबूत होते हैं। गढ़वाले या समृद्ध बीजों में भी अधिक पौधे की शक्ति, अंकुर जीवित रहने, तेजी से प्रारंभिक उद्भव और अनाज की उपज होती है। हालांकि, पारंपरिक प्रजनन और कृषि संबंधी दृष्टिकोण जैसे बायोफोर्टिफिकेशन विधियों की कुछ सीमाएँ हैं जैसे कि पर्यावरण पर उर्वरकों के हानिकारक प्रभाव, यदि उर्वरकों का दुरुपयोग किया जाता है, या कुछ फसलों में सीमित आनुवंशिक भिन्नता मौजूद है। ये सीमाएं विश्व स्तर पर बायोफोर्टिफिकेशन विधियों की प्रभावकारिता और अनुप्रयोग को कम करती हैं। इसके अतिरिक्त, बायोफोर्टिफाइड खाद्य पदार्थ आमतौर पर सूक्ष्म पोषक तत्वों की मात्रा और सीमा में सीमित होते हैं। इसके अलावा, फाइटिक एसिड और टैनिन जैसे एंटीन्यूट्रिशनल यौगिक सीमित कारक हैं जो आंत में खनिजों (आयरन, जिंक और कैल्शियम) के अवशोषण को रोकते हैं।

निष्कर्ष

पोषण असुरक्षा को दुनिया की आधी से अधिक आबादी को प्रभावित करने के लिए जाना जाता है और कुपोषण को मानव जाति के लिए सबसे गंभीर वैश्विक चुनौतियों में से एक माना जाता है। कई अलग–अलग रणनीतियाँ या विधियाँ हैं जिनका पालन पोषण पूरकता के लिए किया जाता है जैसे कि आहार विविधीकरण, चिकित्सा पूरकता, वाणिज्यिक दृढ़ीकरण और फसल जैवसंवर्धन। इन सभी रणनीतियों में से, प्राकृतिक रूप में आहार के माध्यम से पोषक तत्वों के वांछित स्तर प्रदान करने के लिए 'बायोफोर्टिफिकेशन' सबसे टिकाऊ और लागत प्रभावी साधन है। बायोफोर्टिफिकेशन के विभिन्न तरीकों में से, पौधों का प्रजनन ऐतिहासिक रूप से न केवल उच्च कृषि उपज प्राप्त करने के लिए बल्कि पोषण गुणवत्ता की ओर भी उन्मुख रहा है। इन बिंदुओं को ध्यान में रखते हुए, भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद, राज्य कृषि विश्वविद्यालयों और अन्य अनुसंधान संस्थानों (आईसीआरआईएसएटी और बीएआरसी इत्यादि) ने कई फसलों के तहत बायोफोर्टिफाइड किस्मों को विकसित करने और जारी करने में अपने प्रयासों को केंद्रित किया है। यह ऐसी फसलों और किस्मों को स्वीकार करने, अपनाने और खेती करने का अवसर है, न केवल दुनिया को कुपोषण और छिपी हुई भूख से मुक्त करने के लिए बल्कि हमारी खेती और ग्रामीण समुदाय को पोषण और आर्थिक रूप से मजबूत बनाने का भी।

नोटः केटीआई–कुनिट्ज़ ट्रिप्सिन इनहिबिटर

(स्रोतः भाकृअनुप वेबसाइट, https%@@icar-org-in@content@biofortified&varieties&sustainable&way&alleviate&malnutrition)

कृषि और पोषाहार पद्धतियों के माध्यम से कुपोषण के बचाव की तकनीकियाँ

दीक्षा गुप्ता, सुजाता एच टी, सत्यप्रिय, सीताराम बिश्नोई, सत्य प्रकाश एवं वी संगीता
कृषि प्रसार संभाग, भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली

1974 में, विश्व खाद्य सम्मेलन ने घोषणा की, ''प्रत्येक पुरुष, महिला और बच्चे को भूख और कुपोषण से मुक्त होने का मौलिक अधिकार है।'' हालांकि, दुनिया में हर आठ लोगों में से एक, लगभग एक अरब लोगों को अभी भी संसाधनों की कमी के कारण सक्रिय और स्वस्थ जीवन के लिए पर्याप्त भोजन नहीं मिल पा रहा है। कुपोषण वह अवस्था है, जिसमें पौष्टिक पदार्थ और भोजन अव्यवस्थित रूप से लेने के कारण शरीर को पूरा पोषण नहीं मिल पाता है और जिसके कारण गंभीर स्थिति पैदा हो जाती है। कुपोषण और इसके दो घटक मैरास्मस और क्वाशरकोर (प्रोटीन–ऊर्जा कुपोषण) और सूक्ष्म पोषक तत्वों की कमी (लौह, आयोडीन, विटामिन ए और जस्ता) के साथ, विकासशील देशों में एक प्रमुख स्वास्थ्य बोझ बना हुआ है। संयुक्त राष्ट्र के खाद्य और कृषि संगठन (एफ.ए.ओ.) के आकलन के आधार पर, दुनिया में लगभग 800 मिलियन से 1000 मिलियन लोग कुपोषण से पीड़ित हैं। इनमें से रोजाना कुल चालीस हजार लोग कुपोषण के कारण मर जाते हैं। विश्व स्वास्थ्य संगठन (डब्ल्यूएचओ) के अनुसार, दुनिया भर में 5 साल से कम उम्र के 30 से 40 फीसदी बच्चे कुपोषित हैं, 165 मिलियन अवरुद्ध (स्टंटेड) और 99 मिलियन कम वजन के बच्चे हैं। यह विश्व स्तर पर बीमारी और मृत्यु के लिए सबसे महत्वपूर्ण जोखिम कारक है, जो लाखों गर्भवती महिलाओं और युवाओं को प्रभावित करता है।

व्यक्तिगत और सामाजिक दोनों स्तरों पर कुपोषण के हानिकारक स्वास्थ्य परिणाम होते हैं। यह शरीर में लगभग हर प्रणाली को नकारात्मक रूप से प्रभावित करता है और अवरुद्ध विकास, मांसपेशियों की ताकत और सहनशक्ति में कमी, आंत के कार्य में कमी आदि, जिससे शरीर तपेदिक, कैंसर, हृदय की धड़कन रुकना, लंबे समय तक फेफड़ों में रुकावट और हेपेटाइटिस जैसे संक्रामक रोगों की चपेट में आता है। सामाजिक स्तर पर, यह रुग्णता, मृत्यु दर और आर्थिक लागतों में काफी बोझ डालता है। बाल कुपोषण का प्रभाव लंबे समय तक रहता है और बचपन से भी आगे जाता है। इस प्रकार, एक उपयुक्त हस्तक्षेप की योजना के लिए समस्या की सीमा और अंतर्निहित कारणों के ज्ञान की आवश्यकता होती है।

कुपोषण के बचाव की तकनीकियाँ

बायोफोर्टिफिकेशन

एफएओ, डब्ल्यूएफपी और यूनिसेफ के अनुसार, 2016 में 815 मिलियन लोग भूख से पीड़ित थे। पोषक तत्वों की कमी के स्तर भी खतरनाक रूप से उच्च हैं। दो अरब लोग सूक्ष्म पोषक तत्वों की कमी से पीड़ित हैं, जिन्हें ''छिपी हुई भूख'' भी कहा जाता है। इसलिए, पूरक कार्यक्रमों के साथ–साथ सूक्ष्म पोषक तत्वों की मजबूती राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय स्वास्थ्य एजेंसियों का फोकस बन गया है। बायोफोर्टिफिकेशन एक अपेक्षाकृत नई रणनीति है जो पारंपरिक प्रजनन तकनीकों, जैव प्रौद्योगिकी और कृषि संबंधी प्रथाओं का उपयोग पोषण–विरोधी कारकों को कम करने या मुख्य खाद्य फसलों के आर्थिक भागों में सूक्ष्म पोषक तत्वों (विटामिन ए, जिंक और आयरन) को बढ़ाने के लिए करती है। यह दृष्टिकोण न केवल गंभीर रूप से कुपोषित लोगों की संख्या को कम करेगा, जिन्हें पूरक हस्तक्षेपों द्वारा उपचार की आवश्यकता होती है, बल्कि उन्हें बेहतर पोषण स्थिति बनाए रखने में भी मदद मिलेगी। इसके अलावा, बायोफोर्टिफिकेशन कुपोषित ग्रामीण आबादी तक पहुँचने का एक व्यवहार्य साधन प्रदान करता हैं।

चिकित्सीय आहार तकनीकी (एफ–75 और एफ–100 या रेडी–टू–यूज चिकित्सीय खाद्य पदार्थ

विकासशील दुनिया में मुख्य रूप से एशिया में प्रमुख सार्वजनिक स्वास्थ्य समस्या गंभीर तीव्र कुपोषण (एसएएम) है। लगभग 20 मिलियन बच्चे गंभीर तीव्र कुपोषण से पीड़ित हैं। एसएएम को ठीक करने के लिए व्यावसायिक रूप से उपलब्ध उपचारात्मक सूत्र हैं (एफ–75 और एफ–100) और रेडी–टू–यूज चिकित्सीय खाद्य पदार्थ (आरयूटीएफ) जो विटामिन ए के साथ पूर्ण होते हैं और डब्ल्यूएचओ के विनिर्देशों के साथ निर्दिष्ट मानकों को पूरा करते हैं। पर्याप्त भूख न लगने वाले रोगियों को शुरू में रोगी सुविधाओं में भर्ती कराया जाता है। इस चरण में प्रयोग किया जाने वाला सूत्र एफ–75 है। यह सामान्य चयापचय समारोह और पोषण इलेक्ट्रोलाइटिक संतुलन को बढ़ावा देता है। इस स्तर पर तेजी से वजन बढ़ना अनिश्चित होता है, इसीलिए एफ–75 तैयार किया जाता है ताकि इस चरण के दौरान रोगियों का वजन न बढ़े। एक बार गंभीर तीव्र कुपोषण वाले बच्चों को इन–पेशेंट देखभाल में स्थिर कर दिया जाता है, तो चिकित्सीय आहार को एफ–100 में बदलने की सिफारिश की जाती है। यह वजन को बढ़ाने और दुबले शरीर के ऊतकों के नुकसान को सक्षम बनाता है। रेडी–टू–यूज थैरेप्यूटिक फूड (आरयूटीएफ) एक व्यापक शब्द है जिसमें विभिन्न प्रकार के खाद्य पदार्थ शामिल हैं, जैसे कि दूध पाउडर, वनस्पति तेल, चीनी, मूंगफली का मक्खन और विटामिन–खनिज प्रीमिक्स का मिश्रण होता है। चूंकि आरयूटीएफ में बैक्टीरिया की वृद्धि सीमित होती है और इसे बिना रेफ्रिजरेशन के घर पर सुरक्षित रूप से संग्रहित किया जा सकता है, इसका उपयोग उन क्षेत्रों में भी किया जा सकता है जहां इसे लेने से पहले स्वच्छ स्थितियां इष्टतम

नहीं हैं क्योंकि इसे पानी, बर्तन आदि की आवश्यकता नहीं है। इस प्रकार, गैर–आपातकालीन स्थितियों और आपदा राहत कार्यक्रमों दोनों में, बाल कुपोषण से लड़ने के लिए आरयूटीएफ लगातार सबसे अधिक इस्तेमाल किया जाने वाला चिकित्सीय समाधान बन गया है।

प्रोबायोटिक खाद्य पदार्थ

गंभीर कुपोषित बच्चों में डायरिया की घटनाएं अधिक होती हैं, जो पांच साल से कम उम्र के बच्चों की मृत्यु का मुख्य कारण है। प्रोबायोटिक्स में बैक्टीरिया (बिफीडोबैक्टीरिया) की विविधता को उत्तेजित करके प्रतिरक्षा उत्तेजक गतिविधि और आंत की कार्यक्षमता की बहाली होती है। इसलिए, प्रोबायोटिक उत्पादों की डिलीवरी सूक्ष्म पोषक कुपोषण में सुधार करके लाखों लोगों के जीवन में सुधार कर सकती है। प्रोबायोटिक्स युक्त किण्वित खाद्य पदार्थों का सेवन एक अवसर है जिसके द्वारा बच्चों के स्वास्थ्य में सुधार किया जा सकता है। किण्वन एक संरक्षण तकनीक है जो प्रोबायोटिक्स के लिए वाहन के रूप में कार्य करती है, और आंत माइक्रोबायोटा को प्रभावित कर सकती है, शरीर को डिटॉक्सीफाई कर सकती है और साथ ही पोषक तत्वों का सेवन बढ़ा सकती है और एनीमिया और कुपोषण जैसी बीमारियों को कम कर सकती है।

किचन गार्डनिंग

किचन गार्डनिंग का मुख्य उद्देश्य परिवार को रोजाना पोषक तत्वों और ऊर्जा से भरपूर ताजी सब्जियां उपलब्ध कराना है। उनके पास विटामिन ए पर प्रभाव डालने, कुपोषित और बीमार बच्चों के लिए सहायता प्रदान करने और पूरक आहार का समर्थन करने के लिए संभावित रूप से पोषण विविधता प्रदान करने की क्षमता है। विश्व स्वास्थ्य संगठन इस बात की वकालत करता है कि पर्याप्त आवश्यक सूक्ष्म पोषक तत्वों के साथ स्वस्थ आहार बनाए रखने के लिए फलों और सब्जियों के पांच भागों (सामूहिक रूप से 400 ग्राम) का सेवन किया जाना चाहिए। साक्ष्यों से पता चलता है कि खाद्यानों को कुपोषण के खिलाफ एक बफर के रूप में कार्य करने में कुछ सफलता मिली है। सूक्ष्म पोषक तत्वों की पोषण स्थिति पर प्रभाव डालने के लिए, पर्याप्त विटामिन ए समृद्ध खाद्य पदार्थ उगाने की आवश्यकता होती है (बटरनट, नारंगी, मांस, शकरकंद, गाजर, गहरे हरी पत्तेदार सब्जियां और कद्दू)। सब्जियां पोषक तत्वों से भरपूर बायोएक्टिव यौगिकों का समृद्ध स्रोत हैं। यह विटामिन, खनिज, एंटीऑक्सिडेंट, फोलिक एसिड और फाइबर जैसे सुरक्षात्मक पोषक तत्वों के महत्वपूर्ण स्रोत हैं। इसलिए, यह सावधानीपूर्वक प्रस्तावित किया जाता है कि, एक खाद्य उद्यान के अस्तित्व में सूक्ष्म पोषक तत्वों के सेवन में वृद्धि और संभावित रूप से लाभकारी आय प्रतिस्थापन विकल्पों के संदर्भ में पोषण लाभ प्रदान करने की क्षमता है। भूख और कुपोषण को दूर करने के लिए विविध और अत्यधिक पोषक सब्जियां सस्ती और लागत प्रभावी समाधान हैं।

पोषण के लिए कृषि प्रणाली

पोषण के लिए खेती प्रणाली (एफएसएन) एक पारंपरिक दृष्टिकोण है जिसमें उन्नत फसल उत्पादन प्रथाओं, बायोफोर्टिफिकेशन, फलों और सब्जियों के सामुदायिक पोषण उद्यानों को बढ़ावा देना, पशुधन और कुक्कुट विकास, छोटे पैमाने पर उच्च आय और बेहतर पोषण उत्पादन प्रदान करने के लिए उत्तेजक के रूप में मत्स्यपालन और पशु चिकित्सा सेवाओं को नियमित करना एक मुख्य उद्देश्य है। भोजन और आहार में विविधता की कमी और पोषण पर ध्यान केंद्रित किए बिना, कृषि प्रणाली या तो आय बढ़ाने (केवल अप्रत्यक्ष प्रभाव) या नीरस आहार (एकमात्र प्रत्यक्ष प्रभाव) और स्वास्थ्य की स्थिति में सुधार के लिए उपयुक्त नहीं हो सकता है। नवीन एफएसएन रणनीतियों का एक संयोजन जो आहार (प्रत्यक्ष) में विविधता ला सकता है और पोषण संबंधी पर्याप्तता (अप्रत्यक्ष रूप से) के लिए आय का बेहतर उपयोग कर सकता है य शिक्षा, स्वास्थ्य, स्वच्छता और घरेलू बुनियादी ढांचे में सुधार के लिए अन्य हस्तक्षेपों के साथ–साथ कुपोषण और सूक्ष्म पोषक तत्वों की कमी की समस्याओं से निपटने का एक बेहतर मौका है।

निष्कर्ष

उपर्युक्त रणनीतियाँ कुपोषण से निपटने में मदद कर सकती हैं। पोषण संबंधी समस्या को दूर करने और मुख्य खाद्य फसलों और सब्जियों में महत्वपूर्ण सूक्ष्म पोषक तत्वों की जैव उपलब्धता बढ़ाने के लिए बायोफोर्टिफिकेशन की शुरुआत की गई है। एफ–100 और आरयूटीएफ जैसे चिकित्सीय आहारों का उपयोग एनीमिया और विटामिन की कमी से होने वाली बीमारियों जैसी कई स्वास्थ्य समस्याओं को ठीक करता है। जबकि किचन गार्डनिंग से पोषक तत्वों से भरपूर सब्जियों की उपलब्धता सुनिश्चित होती है। इसके अलावा, प्रोबायोटिक्स बच्चों में पोषक तत्वों के बेहतर अवशोषण की अनुमति देते हैं, जबकि एफएसएन रणनीतियाँ आहार में विविधता लाती हैं और पोषण संबंधी पर्याप्तता के लिए आय का बेहतर उपयोग करती हैं।

फसल प्रसंस्करण से किसानों की आय बढ़ाने की एक पहल

धर्मेंद्र सिंह एवं योगेश कुमार
चौधरी चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार
कृषि विज्ञान केंद्र, भाकृअनुप–राष्ट्रीय डेरी अनुसंधान संस्थान, करनाल

भारत की पहली हरित क्रांति 60 के दशक में आई थी जिसने भारतीय कृषि के स्वरूप को पूरी तरह से बदल दिया था। लेकिन अब भारतीय कृषि की स्थिति एक बार फिर चिंता का विषय बनी हुई हैं। सरकार की विभिन्न योजनाओं के बावजूद, 2014–15 से 2018–19 (भारत सरकार 2019–20) के दौरान कृषि क्षेत्र ने कुल मिलाकर 2.9% की मामूली वृद्धि दर के साथ एक कमजोर प्रदर्शन किया है। भारत में अधिकांश किसान कम आय के जाल में फंसे हुए हैं। 2015–16 में, सीमांत जोत वाले लगभग 68% किसानों ने खेती से रूपये 33,636 की वार्षिक आय अर्जित की, जोकि रूपये 2,803 की मासिक आय में तब्दील हो जाती है, जो राष्ट्रीय औसत (भारत सरकार 2015–16) का बामुश्किल पांचवां हिस्सा है (ओ.ई.सी.डी. / आई.सी.आर.आई.ई.आर., 2018)

तालिका 1 : फसलों में कटाई उपरांत होने वाला नुकसान (सीआईपीएचईटी 2018–19)

क्र.स.	फसलें	कटाई उपरांत नुकसान (प्रतिशत)
1	अनाज	3.9 से 6%
2	दालें	4.3 से 6.1%
3	तिलहन	2.8 से 10.1%
4	फल	5.8 से 18.1%
5	सब्जी	6.9 से 13%

ए.पी.ई.डी.ए. की एक कृषि रिपोर्ट (2016) में कहा गया है कि भारत की प्रमुख फसल और उसकी कटाई के बाद का नुकसान 92,651 करोड़ रुपये होने का अनुमान है। यह ध्यान देने योग्य बात है कि यह नुकसान राशि उस वर्ष कृषि क्षेत्र के बजट का लगभग 3 गुना थी (वर्ष 2016–17 में बजट 35,984 करोड़)। इस कुल नुकसान की राशि में से, प्रमुख हिस्सा फलों और सब्जियों का था, जिसका मूल्य 40, 811 करोड़ रुपये था यह फलों और सब्जियों के कुल उत्पादन का लगभग 16% था। खाद्य–प्रसंस्करण मंत्रालय ने यह भी बताया कि 7% मांस, जिसका मूल्य 3,942 करोड़ रुपये है, इसका लगभग 60 प्रतिशत भाग भंडारण के दौरान खराब हो गया। कटाई के बाद के नुकसान का ये आकलन, सिफेट, लुधियाना द्वारा प्रमुख भारतीय कृषि उत्पादों की कटाई और उसके बाद के नुकसान का आकलन करने के लिए किए गए एक अध्ययन के माध्यम से किया गया है।

इस परिदृश्य में, 2022 तक किसानों की आय दोगुनी करने को सुनिश्चित करने के लिए कटाई के बाद का प्रसंस्करण प्रमुख हस्तक्षेपों में से एक है। बाजार आधारित कृषि के दौर में फसलों का उचित प्रसंस्करण इसमें बहुत महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकता हैं। फसल कटाई के बाद का प्रबंधन मुख्य रूप से फसल मूल्य श्रृंखला के साथ मूल्य सृजन के साथ–साथ मूल्य वितरण दोनों में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

फसल कटाई उपरांत नुकसान

फसल के बाद के नुकसान को हम कई स्तर पर विभाजित कर सकते हैं। हर स्तर पर नुकसान की मात्रा भिन्न भिन्न होती हैं। फसल कटाई के बाद नुकसान के स्तर को हम इस प्रकार समझ सकते हैं।

संयुक्त राष्ट्र खाद्य और कृषि संगठन (एफएओ) का अनुमान है कि भारत में उत्पादित 40 प्रतिशत से अधिक भोजन बर्बाद हो जाता है, और इसकी लागत हर साल 14 अरब अमेरिकी डॉलर तक हो सकती है। (इंडिया टुडे 22 दिसम्बर 2020) भारत में अनाज के कुल उत्पादन में, जो लगभग 30 करोड़ टन है, एफ.सी.आई. केवल 8 करोड़ टन की खरीद करता है, जो कि भारत के किसानों द्वारा उत्पादित खाद्यान्न के एक चौथाई से थोड़ा ही अधिक है। (फाइनेंसियल एक्सप्रेस, फरवरी 2020)

भारत सरकार के अनुसार अनाज की बर्बादी में निरंतर कमी दर्ज की जा रहीं हैं। सरकारी आंकड़ों के अनुसार सरकार ने 2015–16 में किसानों से कुल 62.3 मिलियन टन चावल

और गेहूँ खरीदा, जिसमें से 3,116 टन अनाज बर्बाद हो गया, जो कुल खरीद का सिर्फ 0.005 प्रतिशत है। 2016–17 में कुल 61 मिलियन टन की खरीद में, अपव्यय सिर्फ 0.014 प्रतिशत था। 2017–18 और 2018–19 के लिए, यह क्रमशः 0.003 प्रतिशत और 0.006 प्रतिशत था। 2019–20 में सरकार ने 75.17 मिलियन टन खाद्यान्न खरीदा, जिसमें से 1,930 टन बर्बाद हो गया, जो कुल खरीद का 0.002 प्रतिशत है। (रामविलास पासवानः द इकोनॉमिक टाइम्स 2020)

खाद्य प्रसंस्करण मंत्रालय का हालिया अनुमान है कि कृषि उपज भारत में हर साल 580 अरब रुपये की बर्बादी होती है। (एसीएफ–जनवरी 2014 "फसल कटाई के बाद के नुकसान पर तकनीकी पेपर")। अतः यह स्पष्ट हैं कि भारत जितना ज्यादा उत्पादन कर रहा हैं उतना ही यह बर्बाद भी कर रहा हैं। यह फिर चाहे जमीनी स्तर पर सरकारी योजनाओ के अभाव के कारण हो या फिर किसानों में पर्याप्त जागरूकता की कमी के कारण हो। अगर किसान किसी तरह से कटाई उपरान्त होने वाले नुकसान को कम करने में सफल हो जाता हैं तो निश्चित रूप से उसकी आय में काफी बढ़ोत्तरी हो सकती हैं। अगर हम फसल कटाई के बाद की प्रक्रियाओं को ध्यान में रखते हुए आय सृजन की बात करे तो यह मुख्यतः इन उपायों को अपनाकर की जा सकती हैं।

1.कटाई उपरान्त नुकसान को कम करके
2.उचित प्रसंस्करण द्वारा
3.आई.सी.टी. और आधुनिक तकनीक का उपयोग

एफएओ के अध्ययन के अनुसार, कृषि उपज का लगभग 70 प्रतिशत किसानों द्वारा उनके खुद का उपभोग, बीज, चारा और अन्य उद्देश्य लिए संग्रहित किया जाता है। किसान अपने स्तर पर ग्रामीण क्षेत्रों में भंडारण संरचनाओं के लिए प्रमुख निर्माण सामग्री मिट्टी, बांस, पत्थर और पौधों की सामग्री का उपयोग करते हैं। ऐसे में हमारा ध्यान इस और आकर्षित करना बहुत जरूरी हो जाता हैं जब हम कटाई उपरान्त नुकसान और आय के सम्बन्ध की बात करते हैं।

1. कटाई उपरान्त नुकसान को कम करके

कटाई के बाद उपज को होने वाले नुकसान को कम करने के तरीकों को हम तभी व्यवस्थित रूप से उपयोग में ला सकते हैं जब हमे पता हो नुकसान करने वाले प्रमुख कारक कौन–कौन से हैं। भारत में फसल कटाई के बाद के नुकसान कई कारकों से उपजते हैं जिनमें शामिल हैः

- कटाई के बाद भंडारण के बुनियादी ढांचे में कमी।
- अच्छी कृषि पद्धतियों के बारे में सीमित ज्ञान और अपर्याप्त तकनीकी जानकारी।
- अपर्याप्त बाजार पहुंच।
- इन कारकों को हम सरकारी, निजी और आपसी सहयोग के स्तर के कार्यक्षेत्र के तौर पर भी विभाजित कर सकते हैं। इससे हमे यह समझने में आसानी होगी कि ये क्षेत्र किस किस तरह से कटाई उपरांत होने वाले नुकसान को कम करने में किसान की मदद कर सकते हैं जिससे किसान को उपज का पूर्ण वित्त लाभ प्राप्त हो सकें।

1. सरकारी क्षेत्र

- निजी क्षेत्र को समर्थन देने पर विशेष ध्यान देने के साथ योजनाओं और सुधारों की आवश्यकता।
- देश में अनाज भंडारण और प्रसंस्करण बुनियादी ढांचे में वृद्धि।
- वैकल्पिक बाजार विकास और मौजूदा बाजारों के लिए सुधार।

2. निजी क्षेत्र

- सरकारी प्रोत्साहनों द्वारा समर्थित खाद्य प्रसंस्करण, खुदरा और निर्यात में अधिक भागीदारी।
- कटाई के बाद के बुनियादी ढांचे के निर्माण और प्रौद्योगिकी की शुरुआत करके कटाई के बाद उचित मूल्य श्रृंखला स्थापित करना।
- आई.सी.टी.–सक्षम समाधानों और विभिन्न किसान एकत्रीकरण मॉडलों का निर्माण।

3. आपसी सहयोग के स्तर पर

- प्रशिक्षण और ज्ञान प्रसार के माध्यम से जागरूकता और क्षमता का निर्माण।
- प्राथमिक प्रसंस्करण, भंडारण समाधान में किसानों को प्रोत्साहित करना।
- कृषि मशीनरी और उपकरण का आदान प्रदान।
- किसानों को उनकी उपज और विपणन के लिए निजी क्षेत्र के साथ संबंध बनाने में मदद करना।
- भारत में कृषि भंडारण, कोल्ड स्टोरेज, रीफर वैन सुविधाओं आदि की अनुमानित क्षमता 162 मिलियन मीट्रिक टन है। वेयरहाउसिंग क्षेत्र में प्रमुख सार्वजनिक क्षेत्र की भारतीय खाद्य निगम, केंद्रीय भंडारण निगम और राज्य–स्तरीय भण्डारागार निगम हैं। छोटे किसानों के लिए फसल कटाई के बाद की पहल (ई.एनएएम) की गयी हैं। इनका

सार्थक रूप से लाभ उठाने के लिए किसानों को जागरूक होने की आवश्यकता है। सरकार की नई पहल 10,000 किसान उत्पादक संगठनों (एफ.पी.ओ.) का गठन और संवर्धन इस सम्बंध में महत्वपूर्ण कदम हो सकता है।

2. उचित प्रसंस्करण द्वारा

खाद्य प्रसंस्करण उद्योग भारत के सबसे बड़े उद्योगों में से एक है और प्रसंस्करण के मामले में भारत पांचवें स्थान पर है। प्रसंस्करण सुविधाओं के अभाव में किसानों को कम आय अर्जित होती हैं और उपज का पूर्ण लाभ नहीं मिल पाता। मूल्यवर्धन का अधिकांश हिस्सा बिचौलियों और निजी क्षेत्र की बड़ी फर्मों को मिलता है। प्रसंस्करण कृषि उपज के मूल्य में सुधार कर सकता है, किसानों के लिए लाभकारी मूल्य सुनिश्चित कर सकता है और फसल उपरांत नुकसान को न्यूनतम कर सकता है।

क्रॉप कटिंग एक्सपेरिमेंट कृषि विभाग द्वारा एक नया प्रयोग हैं जिससे हम यह अनुमान लगा सकते हैं कि किसानों को गलत तकनीक के उपयोग के कारण लगभग कितना नुकसान हो रहा हैं। उदाहरण के लिए, धान की नियमित उपज 25 किलोग्राम प्रति पांच वर्ग मीटर थी, लेकिन किसानों को क्रॉप कटाई एक्सपेरिमेंट के बाद पता चला कि अब पांच किलोग्राम से भी कम मिल रहा है। इसी तरह, कटा हुआ पुआल सामान्य 45 किलोग्राम के मुकाबले सिर्फ नौ किलोग्राम मिल रहा हैं। किसानों को अपनी आय को बढ़ाने के लिए उचित तकनीकों का उपयोग करना सीखना होगा।

3. आई.सी.टी. और आधुनिक तकनीक का उपयोग

फसल के बाद के उपज प्रबंधन में सूचना और संचार प्रौद्योगिकी (आई.सी.टी.) का उपयोग करने की दिशा में भारत में सरकार की कुछ हालिया पहल जैसे कृषि गोदामों, रीफर वाहनों और कोल्ड स्टोरेज की जियोटैगिंग सही दिशा में एक कदम है। कृषि सम्बंधित कंपनियां डिजिटल प्लेटफॉर्म विकसित करने के लिए आईसीटी का लाभ उठा रही हैं इन ऐप्प के जरिये किसान मंडियों में उपज का मोल भाव जान सकता हैं। यह किसानों को उपयुक्त जानकारी और सलाह, प्रत्यक्ष बिक्री, पट्टे, उधार के माध्यम से खेती और कटाई के लिए मशीनरी तक पहुंचने में मदद करता हैं। यह तंत्र किसानों को उनके आसपास के खरीदारों से जुड़ने में सक्षम बनाता है, जिससे किसानों को बेहतर बाजार भाव प्राप्त करना संभव हो पाता है।

भारत में कटाई के बाद (प्रत्यक्ष विपणन, गुणवत्ता ग्रेडिंग आदि) में काम कर रहे कुछ उल्लेखनीय निजी क्षेत्र के उपक्रम काफी उल्लेखनीय कार्य कर रहे जैसे निंजाकार्ट, एग्रोग्रेड सभी कृषि–भंडारण, कोल्ड स्टोरेज, रीफर वैन सुविधाओं को जियो–टैग करने की पहल फसल कटाई के बाद के कार्यों में दक्षता सुनिश्चित करने में आई.सी.टी. का एक महत्वपूर्ण अनुप्रयोग है।

निष्कर्ष

- सरकार ने ग्रामीण अर्थव्यवस्था को ऊपर उठाने के लिए कई योजनाएं शुरू की हैं। हाल के वर्षों में, कृषि क्षेत्र और किसानों को बढ़ावा देने के लिए प्रधानमंत्री किसान सम्मान निधि, राष्ट्रीय कृषि बाजार (ईएनएएम), प्रधान मंत्री कृषि सिंचाई योजना और प्रधान मंत्री फसल बीमा योजना जैसी केंद्र और राज्य द्वारा प्रचारित योजनाएं शुरु की गई हैं।
- खाद्य हानि और कटाई उपरांत नुकसान को कम करने के लिए शोधकर्ताओं, ग्रामीणों, निजी क्षेत्र, नीति निर्माताओं, किसानों, विस्तार सेवाओं के तंत्र, और एक विस्तृत श्रृंखला द्वारा कार्रवाई की आवश्यकता है। यह स्पष्ट हैं कि कोई भी व्यक्ति या समूह अकेले इस समस्या से पर्याप्त रूप से निपट नहीं सकता है इसके लिए सबके साथ और सहयोग की जरूरत है।
- किसान हितैषी तकनीकियाँ बहुत हैं लेकिन किसी कारणवश प्रयोगशाला से सामुदायिक हस्तांतरण में नहीं आ पायी हैं, उनपर ध्यान देने की विशेष आवश्यकता हैं।
- उपर लिखित विधियों और समाधान के उपायों को अगर हम जमीनी स्तर पर उतार पाते हैं तो जल्द ही भारतीय कृषि की तस्वीर बदली हुई नजर आने लगेगी और किसानों की आय में निश्चित रूप से बढ़ोत्तरी होगी जोकि सरकार का प्रथम ध्येय हैं।

खाद्य अपमिश्रण : मिलावट का ज़हर करे स्वस्थ्य पर कहर

मोहिनी नागपाल एवं पूनम जसरोटिया
भाकृअनुप– भारतीय गेहूँ एवं जौ अनुसंधान संस्थान, करनाल

भोजन जीवन की मूलभूत आवश्यकता है। हम जो भोजन खाते हैं, वह हमारे शरीर द्वारा अवशोषित किया जाता है और इसका उपयोग चयापचय प्रक्रियाओं को चलाने और जीवन को बनाए रखने में होता है। भोजन वृद्धि और विभिन्न जीवन प्रक्रियाओं के लिए भी अति आवश्यक है। हमारे दैनिक आहार में भोजन की श्रृंखला में सब्जियां, फल, फलियां, दालें, अनाज आदि शामिल हैं। इन सभी को या तो कच्चा खाया जाता है या व्यंजनों के रूप में बनाया जाता है। लेकिन, आजकल कच्ची दालों में सफेद, पीले या काले कंकड़; चावल में मिश्रित सफेद छोटे–छोटे पत्थर आदि तो आपने देखे ही होंगे। खाद्य पदार्थों के साथ तत्वों का यह मिश्रण मिलावट कहलाता है। मिलावट एक कानूनन अपराध है और जब भोजन सरकार द्वारा निर्धारित कानूनन मानकों को पूरा करने में विफल रहता है, तो इसे मिलावटी कहा जाता है। खाद्य अपमिश्रण तब होता है जब जानबूझकर या अनजाने में भोजन की गुणवत्ता को कम करने वाले पदार्थ इसमें मिलाए जाते हैं। मिलावटी खाद्य पदार्थ ज्यादातर हानिकारक होते हैं और उत्पाद की शक्ति को कम करने की क्षमता रखते हैं। मिलावट हानिकारक न होने पर भी भोजन के पोषण मूल्य को काफी हद तक कम कर देती है। कुछ मिलावटों को लंबे समय तक संपर्क में रहने के पश्चात कार्सिनोजेनिक या घातक के रूप में भी पहचाना जाता है। अलग–अलग तरह के खाने में मिलावट करने के लिए अलग–अलग तरह के मिलावट का इस्तेमाल किया जाता है।

खाद्य अपमिश्रण के प्रकार :

खाद्य अपमिश्रण चार प्रकार के होते है;

जानबूझकर मिलावट– जब भोजन के घटकों के समान दिखने वाले पदार्थों को इसमें मिलाया जाता है, तो इसका वजन बढ़ाने और अधिक लाभ प्राप्त करने के लिए जानभूजकर मिलावट की जाती है। उदाहरण– कंकड़, पत्थर, कंचे, बालू, मिट्टी, गन्दगी, चाक चूर्ण, दूषित जल आदि का मिश्रण।

प्रासंगिक मिलावट– भोजन को संभालने में लापरवाही के कारण प्रासंगिक मिलावट होती है। जैसे अनाज में कीटनाशकों के अवशेष, लार्वा की वृद्धि, आदि।

धात्विक अपमिश्रण– भोजन में सीसा या पारा जैसे धात्विक पदार्थों की मिलावट को धात्विक अपमिश्रण कहा जाता है। यह गलती से या जानबूझकर भी हो सकता है।

पैकेजिंग खतरा– जिस पैकिंग सामग्री में भोजन पैक किया जाता है, वह भी भोजन के घटकों के साथ हस्तक्षेप और मिश्रण कर सकती है।

खाद्य अपमिश्रण क्यों किया जाता है?

आपने कई वर्षों तक दूध की मात्रा बढ़ाने और दूध की कम मात्रा से अधिक लाभ प्राप्त करने के लिए उसमें पानी मिलाने की प्रथा पर ध्यान दिया होगा। इसी प्रकार खाद्य पदार्थों में मिलावट खाद्य निर्माताओं और उद्योगों द्वारा विभिन्न कारणों से की जाती है;

- खाद्य अपमिश्रण को सस्ते माध्यमों से अधिक लाभ प्राप्त करने के लिए व्यापार रणनीति के एक भाग के रूप में अभ्यास किया जाता है।
- यह भोजन को प्रस्तुत करने योग्य बनाने के लिए और किसी अन्य भोजन की नकल के रूप में भी किया जाता है जिसकी मांग अधिक हो।
- खाद्य अपमिश्रण कई बार उनके द्वारा किया जाता है जिन्हें इसके खतरों की उचित समझ नहीं होती। जागरूकता और उचित ज्ञान की कमी के कारण यह अभी भी व्यापक रूप से प्रचलित है।
- मिलावट से भोजन का वजन बढ़ता है, अधिक लाभ प्राप्त करने में मदद मिलती है और सस्ते तरीकों से बिक्री बढ़ती है।

- जनसंख्या की बढ़ती दर भी खाद्य अपमिश्रण में एक प्रमुख भूमिका निभाती है।
- इसे नियंत्रित करने के लिए सरकार की पहल की अक्षमता खाद्य अपमिश्रण के बढ़ने का एक मुख्य कारण है।
- अशिक्षा के कारण लोग पैकेट के पीछे लिखे मिलावटी रसायनों को पढ़ने में असमर्थ रहते हैं, जिसके कारण फूड कम्पनियां मिलावटी खाना बेच पाती हैं।

खाद्य अपमिश्रण के प्रभाव

खाद्य पदार्थों में मिलावट का हमारे स्वास्थ्य पर बहुत अधिक प्रभाव पड़ता है। किसी भी प्रकार की मिलावट हो, इस प्रकार के भोजन का लंबे समय तक सेवन शरीर के लिए बहुत हानिकारक होता है। ऐसे भोजन के सेवन से शरीर में विषाक्तता बढ़ जाती है। चूंकि मिलावटी भोजन का पोषण मूल्य कम हो जाता है, ऐसे भोजन अब शरीर के लिए पोष्टिक नहीं रह गए हैं। रासायनिक मिलावट और रंगों का मिलाना कई बार जानलेवा साबित होता है। वे स्वास्थ्य जोखिमों और कार्सिनोजेन्स की शुरुआत भी करते हैं। कुछ मिलावटी भोजन हमारे आंतरिक अंगों को भी सीधे प्रभावित कर सकता है जिससे हृदय, गुर्दे, यकृत और कई अन्य अंग विकार और विफलता हो सकती है।

उदाहरण

1. हल्दी और बेसन में की जाने वाली मिलावट

मिलावटः मेटानिल पीली, खेसारी दाल

टेस्टः 20 मिली गुनगुने पानी में एक चम्मच हल्दी पाउडर

या बेसन घोलें। नींबू (एसिटिक एसिड), संतरे (साइट्रस एसिड) या कोई एस्कॉर्बिक एसिड (विटामिन सी फल) जैसे घरों में आसानी से उपलब्ध कोई भी एसिड मिलाएं। अगर पानी गुलाबी, बैंगनी या बैंगनी हो जाता है, तो यह मिलावटी है।

हानिकारक प्रभावः यह अत्यधिक कार्सिनोजेनिक है और अगर इसका लगातार सेवन किया जाए तो यह पेट की बीमारियों को जन्म दे सकता है।

2. कॉफी में की जाने वाली मिलावट

मिलावटः इमली के बीज, चिकोरी पाउडर

टेस्टः एक गिलास में कॉफी पाउडर को पानी की सतह पर धीरे से छिड़कें। कॉफी तैरने लगेगी जबकि कासनी कुछ ही सेकंड में डूबने लगेगी। बड़ी मात्रा में केरेमल होने के कारण गिरते हुए कासनी पाउडर रंग का निशान छोड़ देगा।

हानिकारक प्रभावः ये दस्त, पेट के विकार, चक्कर और गंभीर जोड़ों के दर्द का कारण बन सकते हैं।

3. हरी मिर्च / हरी सब्जियों में की जाने वाली मिलावट

मिलावटः हरा मैलाकाइट

टेस्टः एक रुई का टुकड़ा लें, उसे पैराफिन में भिगोएँ और सब्जी की बाहरी सतह पर रगड़ें। यदि रुई हरा हो जाता है तो हम कहते हैं कि सब्जी में मैलाकाइट हरे की मिलावट है।

हानिकारक प्रभावः कृत्रिम रंग खतरनाक हो सकते हैं।

भारत में खाद्य अपमिश्रण के खिलाफ नियम व विनियमन

भारत में, खाद्य सुरक्षा एक बढ़ती हुई समस्या है, जिसमें हर दूसरे दिन मीडिया में आवश्यक खाद्य पदार्थों में मिलावट और संदूषण की खबरें आती रहती हैं। खाद्य अपमिश्रण की अवधारणा अनादि काल से भारतीय समाज का हिस्सा रही है। भारत 19वीं सदी की शुरुआत में और लोकप्रिय हिंदी मुहावरे ''दूध का दूध, पानी का पानी'' से प्रमाणित है। 'जागो ग्राहक जागो' के प्रसिद्ध ब्रांड के तहत जनता को उनके अधिकारों और कर्तव्यों के प्रति जागरूक किया गया है। मिलावट के मुख्य कारणों में से एक उपभोक्ता की सुरक्षित खाद्य प्रथाओं के प्रति अपने अधिकारों और जिम्मेदारियों के

बारे में अज्ञानता है जिसके परिणामस्वरूप दोषपूर्ण खरीद प्रथाएं होती हैं। मिलावट की रोकथाम में उपभोक्ता महत्वपूर्ण हितधारक हैं और उनकी जागरूकता इस खतरे से लड़ने और स्वास्थ्य में सुधार करने में मदद करेगी। खाद्य सुरक्षा एक मांग–संचालित विशेषता होनी चाहिए और उपभोक्ताओं को 'खाद्य लेबल पर क्या देखना है' के बारे में जागरूक किया जाना चाहिए और सूचित विकल्प बनाने में सक्षम होना चाहिए। भारतीय बाजारों में, एफएसएसएआई सरकारी लाइसेंस की एक संस्था है जो खाद्य सुरक्षा के लिए काम करती है। इस प्रकार, हमेशा खाद्य पैक पर एफएसएसएआई सामग्री की सूची, निर्माण और समाप्ति तिथियों को देखना सुनिश्चित करें। हालाँकि, उद्योग स्तर पर, खाद्य अपमिश्रण को केवल सख्त और कड़े कानूनों और सरकारी हस्तक्षेपों और जाँचों से ही रोका जा सकता है। धारा 272 और 273 में खाद्य पदार्थों और पेय पदार्थों को हानिकारक बनाने के लिए मिलावट और ऐसे हानिकारक पेय की बिक्री से संबंधित है। इस प्रकार मिलावट आईपीसी के तहत एक अपराध है जिसमें छह महीने की कैद और 1000 रुपये तक का जुर्माना है। 2006 के खाद्य सुरक्षा और मानक कानून में नियामक FSSAI, द्वारा प्रस्तावित संशोधनों के अनुसार खाद्य उत्पादों में मिलावट करने वालों को आजीवन कारावास और 10 लाख रुपये तक के जुर्माने का सामना करना पड़ सकता है।

निष्कर्ष

उपभोक्ता के अधिकारों की रक्षा के साथ–साथ उनके स्वास्थ्य को सुरक्षित रखना भी ज़रूरी है। इसके अलावा, धोखाधड़ी या गलत प्रथाओं को रोकना खाद्य उद्योग के सामने महत्वपूर्ण और चुनौतीपूर्ण मुद्दे हैं। इसलिए, खाद्य उद्योग और निर्माताओं को भी खाद्य अपमिश्रण के खतरे को रोकने के लिए अपनी भूमिका निभानी चाहिए। निर्माताओं और कंपनियों को खाद्य उत्पादों और उनके घटकों की प्रामाणिकता और स्रोत भी प्रदान करने चाहिए। इसके अलावा, बढ़ते उपायों से निपटने के लिए कड़े कानून लागू किये जाने चाहिए।

कृषि सम्बन्धी एवं कृषि सहायक कुटीर उद्योगों द्वारा महिला सशक्तिकरण

अंजना ठाकुर[1] एवं मधु पटियाल[2]
[1]चौ श्र कु हिमाचल प्रदेश कृषि विश्वविधालय, पालमपुर
[2]भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान क्षेत्रीय केंद्र, टुटीकंडी, शिमला

किसानों का ग्रामीण क्षेत्रों से शहरों की ओर पलायन होता आया है, जिसकी सबसे बड़ी वजह रोज़गार की संभावनाओं को तलाशना है। परन्तु कोरोना लॉक डाउन के चलते एक बार फिर लोग ग्रामीण क्षेत्रों में लौट आए हैं। खेती में इस प्रकार उत्पादन किया जा रहा है कि कम भूमि में अच्छा उत्पादन तथा बाजार के अनुरुप रहे, इसके साथ ही कृषि में अधिक से अधिक रोज़गार का सृजन किया जा सकें। महिलाओं ने पुरूष किसानों के साथ समन्वय स्थापित कर कृषि को विकसित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। महिला शक्ति का रूप है व इनके सहयोग से ही समाज और कृषि का विकास संभव है। वर्तमान परिस्थितियों में ग्रामीण क्षेत्रों में रोज़गार बढाने की आवश्यकता है। सरकार ने अब ग्रामीण क्षेत्रों में कृषि आधारित लघु व कुटीर उद्योग लगाने के लिए प्रोत्साहित करने का फैसला लिया है। महिलाओं के बिना कृषि कार्य को संबल मिलना कठिन हो सकता है। इसलिए आज की परिस्थितियों में महिलाएं सजग हैं व महिला सशक्तिकरण के लिए उन्हें प्रेरित करने की आवश्यकता है।

कुटीर उद्योग की परिभाषा

देश की अर्थव्यवस्था और सामाजिक ढांचे के लिए कुटीर उद्योगों का महत्वपूर्ण स्थान है। एशिया एवं सुदूर पूर्व के आर्थिक आयोग द्वारा कुटीर उद्योगों को इस प्रकार परिभाषित किया गया हैं –''कुटीर उद्योग वे उद्योग हैं, जिनका एक ही परिवार के सदस्यों द्वारा पूर्णरूप से अथवा आंशिक रूप से संचालन किया जाता है।''

भारत के द्वितीय योजना आयोग द्वारा इसी परिभाषा को मान्यता प्रदान की गयी है। इसके अतिरिक्त 'प्रो. काले' ने कुटीर उद्योगों को परिभाषित करते हुए कहा है ''कुटीर उद्योग इस प्रकार के संगठन को कहते हैं जिसके अन्तर्गत स्वतन्त्र उत्पादनकर्ता अपनी पूंजी लगाता है और अपने श्रम के कुल उत्पादन का स्वयं अधिकारी होता है।''

भारत की अर्थव्यवस्था में प्राचीन काल से ही कुटीर उद्योगों का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। अंग्रेजों के भारत आगमन के पश्चात् देश में कुटीर उद्योग तेजी से नष्ट हुए एवं परम्परागत कारीगरों ने अन्य व्यवसाय अपना लिये। किन्तु स्वदेशी आन्दोलन के प्रभाव से पुनः कुटीर उद्योगों को बल मिला और वर्तमान में तो कुटीर उद्योग आधुनिक तकनीकी के समानान्तर भूमिका निभा रहे हैं। अब इनमें कुशलता एवं परिश्रम के अतिरिक्त छोटे पैमाने पर मशीनों का भी उपयोग किया जाने लगा है। स्पष्ट है कि कुटीर उद्योगों के विकास से ही गांधी जी के "गाँव में बसने वाले भारत" का विकास हो पाएगा।

हिमाचल प्रदेश के 80 प्रतिशत परिवार कुटीर उद्योग में लगे हुए हैं। प्रदेश की अधिकांश महिलाएँ गाँवों में रहती हैं। वह अपने घर के कार्य के अलावा अपने दिन का अधिकांश भाग खेतों के कामकाज में गुज़ारती हैं। पुरूषों के साथ ग्रामीण महिलाओं का भारतीय कृषि में बहुत बडा योगदान रहा है। कृषि का अधिकतर काम ग्रामीण महिलाएँ ही करती आ रही हैं। इसलिए यह कहना गलत नहीं होगा कि ग्रामीण महिलाएँ पुरूषों से काफी आगे हैं। लेकिन उचित ज्ञान न होने की वजह से वे पारम्परिक ढ़ंग से ही खेती करती हैं, जिससे वह कृषि से उतना लाभ नहीं हासिल कर पाती जितना हो सकता है। इसका मुख्य कारण देश की अधिकतर कृषक महिलाओं में शिक्षा व अवसरों का अभाव है। ग्रामीण महिलाओं को अपनी और अपने घर की दैनिक ज़रूरतों को पूरा करने के लिए बाज़ार का सहारा नहीं लेना चाहिए। उन्हें सब कुछ अपने घर और जमीन से ही उत्पन्न करना चाहिए। लॉक डाउन के चलते घर की आर्थिकी सुधरने में महिलाएं भी आगे आ रही हैं व उनकी महत्वकांक्षा जगी है कि वे भी कुछ योगदान करें। अब वक्त आ गया है कि महिलाओं को कृषि के कुटीर उद्योगों से जोड़कर उसके समग्र विकास पर ध्यान दिया जाए।

प्रदेश के किसानों के पास खेती हेतु जमीन तो है लेकिन कम है और अलग–अलग भागों में बटी है। परन्तु फिर भी वह अपने खाने–पीने की चीजें अपने खेतों से ही पैदा करके अपने जीवन का निर्वाह करते हैं। कृषक महिलाओं को चाहिए कि वह अपने खेतों के कुछ भाग में अनाज वाली फसलें जैसे मक्की, धान, गेहूँ लगाएं। कुछ एक हिस्से में दलहनी व तिलहनी फसलों की खेती करें। सब्जियों की खेती कुछ एक भाग में करें व अपने खेतों के बीचों बीच अपने क्षेत्र की जलवायु के अनुरूप फलदार पौधे लगाकर अपनी व अपने परिवार की निजी आर्थिक जरूरतों को पूरा कर सकते हैं। अगर परिवार में गाय, भैंस इत्यादि पाल रखी है तो उनके चारे के लिए खेतों की बीड़ो में घास भी लगा सकती हैं। अगर कृषकों के पास अपने खाने–पीने की जरूरतों को पूरा कर लेने के बाद कुछ उपज बच जाती है तो वह उस उपज को बाजार में ले जाकर विपणन भी कर सकती हैं

जिससे कि घर की दूसरी ज़रूरतों को पूरा करने के लिए आय भी प्राप्त हो सकें।

ग्रामीण महिलाएँ अधिक धन अर्जित करने के लिए अपने घर में खुम्भ उत्पादन, मुर्गी पालन, मौन–पालन, मत्स्यपालन, आदि का लघु स्तर पर व्यवसाय भी आरम्भ कर सकती हैं। इससे एक तो के घर के सदस्यों को रोजगार भी मिल जाएगा व उनकों रोजगार के लिए इधर–उधर भटकना नहीं पड़ेगा और परिवार ज्यादा धन भी अर्जित कर सकेगा। इन व्यवसाओं को आरम्भ करने के लिए प्रारम्भ में प्रशिक्षण ग्रहण करना पड़ेगा। इन व्यवसाओं के बारे में प्रशिक्षण कृषि विश्वविद्यालयों के द्वारा व अनुसन्धान केन्द्रों, उपकेन्द्रों व प्रदेश के प्रत्येक जिले में स्थित कृषि विज्ञान केन्द्रों से सम्पर्क करके व आवेदन देकर अथवा गाँव की पंचायत द्वारा समूह में आकर ग्रहण कर सकते हैं। कृषि विज्ञान केन्द्रों के वैज्ञानिक जिले के अलग–अलग पंचायतों में जाकर भी किसानों के लिए प्रशिक्षण शिविर लगाते हैं ताकि किसान कृषि के बारे में नवीनतम जानकारियाँ हासिल कर जागरूक हो जाए जिससे कृषि से ज्यादा से ज्यादा धन कमा सकें।

कृषक महिलाएँ धन कमाने के लिए अपने गाँव में आटा चक्की, कोल्हू, खण्डी जैसे लघु उद्योग भी चला सकती हैं। ग्रामीण महिलाएँ मूल्य सवंर्धित उत्पाद बनाकर व उनका विपणन करके भी धन कमा सकती हैं। इससे एक तो परिवार के सदस्यों को रोज़गार मिलेगा व दूसरा बची हुई उपज खराब होने से बच जाएगी और अपनी मेहनत के पूरे दाम वसूल कर सकेंगी।

कृषि सम्बन्धी एवं कृषि सहायक उद्योग के तरीकें

1. **फसल उगाना**– आज के समय मे खेती के लिए कई संसाधन उपलब्ध है जिससे खेती करना बहुत आसान व फायदेमन्द हो गया है। इनमें गेहूँ धान, मक्का – भुट्टा उत्पादन, दाल उत्पादन (चना, मसूर, उड़द, सोयाबीन, आदि), कपास उत्पादन, जूट उत्पादन, लहसुन, प्याज, आलू उत्पादन, कन्द की खेती, गन्ना की खेती, मसाला खेती आदि करने से अच्छी पैदावार ली जा सकती है।

2. **तिलहन फसलों**– जैसे सूरजमुखी, मुंगफली, राई, सरसों, सोयाबीन, तिल आदि से तेल उत्पादन कर आय अर्जित की जा सकती है।

3. **सब्जी उगाना**– इसमें टमाटर, बैंगन, गोभी, मूली, गाजर, मिर्ची, ककड़ी, मटर, अदरक आदि सब्जियाँ उगाकर अच्छी कमाई की जा सकती है। यह व्यवसाय मौसमी होता है। जिससे मौसम के अनुसार इनकी मांग घट और बढ़ जाती है। इसी को ध्यान में रखकर इनका उत्पादन करना चाहिए।

4. **फलों के पेड़**– इसमें फलदार पौधे जैसे आम, अमरूद, अंगूर, नींबू, मोसम्बी, सीताफल, जामुन, आँवला, केला, पपीता आदि का बगीचा लगाकर इनसे बहुत अच्छी कमाई की जा सकती है। पर इस व्यवसाय को शुरू करने में 2–3 साल के लंबे वक्त की जरूरत है क्योंकि पेड़ो को बड़ा होने में समय लगता है पर इससे अच्छी आमदनी होगी।

5. **फूलों की खेती**– भारत की जलवायु फूलों की खेती के लिए बिल्कुल अनुकूल है। इसमे गुलाब, रजनीगंधा, कार्नेशन, गेंदा, गुलाब, चमेली आदि के फूलों को उगाकर अच्छी कमाई की जा सकती है। इनका उपयोग गुलदस्ता, माला बनाने, भगवान को अर्पित करने आदि के लिए किया जाता है। सूखे फूल का व्यवसाय भी किया जा सकता है।

6. **औषधीय व सुगंधित पौधों की खेती**– इसमें ऐलोवेरा, अश्वगंधा, आदि औषधीय व सुगंधित पौधों को उगाया जा सकता है। इसके लिए उन कंपनियों से संपर्क करना होगा जो आयुर्वेद दवाईयां और श्रृंगार प्रसाधान बनाती है। उन कंपनियों को उनकी मांग अनुसार औषधीय व सुगंधित पौधों को उगाकर बहुत अच्छी कमाई की जा सकती है।

7. **नर्सरी प्लांट**– इसमे कई प्रकार के पौधे, फूल जैसे गेंदा, गुलाब, जासमीन, चमेली, सब्जी नर्सरी आदि को उगाकर बाजार में बेचा जा सकता है, जिससे कम भूमि मे अधिक लाभ कमाया जा सके।

8. **दुग्धशालाओं का संचालन/डेयरी**– पिछले कई सालों से दूध का व्यापार बहुत फल–फूल रहा है। डेयरी में गाय, भैंस को पाला जा सकता है।

9. **दूध आधारित उद्योग**– दूध से कई प्रकार के उत्पाद मिठाइयां, पनीर, मावा आदि बनाए जा सकते है और इनके भाव भी आसमान छू रहे है।

10. **मुर्गीपालन**– मुर्गी का भाव आज के समय में बहुत तेज है साथ ही इसके दिए हुए अंडे और चूजों के भी अच्छे दाम मिलते है। इस व्यवसाय को शुरू करने में ज्यादा लागत की जरूरत भी नही होती है ।

11. **मधुमक्खी पालन**– शहद व अन्य उत्पादो की बाजार में अच्छी खासी मांग है जिससे अच्छी आमदनी होगी।

12. **अन्य सहायक उद्योग**– मशरूम की खेती, बकरी पालन, मछली पालन, घोंघा पालन, खरगोश पालन, सुअर पालन, रेशम कीट पालन आदि।

13. **जैविक खाद**– खाद का निर्माण करके इससे अच्छा कमाई मिल सकती है। इसके लिए उपयोग होने वाली सामान जैसे पत्ते, गोबर, केंचुआ आदि गांव में सब कुछ उपलब्ध होता है जिससे खाद बनाने में कोई परेशानी भी नही आती।

20. **कंडा/उपला**– गाँव में लोग पशुपालन करते हैं,

जिससे भारी मात्रा में गोबर का उत्पादन होता है। इसके कंडे (उपले) बनाकर मार्केट में बेचा जा सकता है।

21. **खाद्य प्रसंस्करण :** विभिन्न प्रकार की चटनियाँ, मुरब्बे एवं अचार बनाना, आलू चिप्स उत्पादन, मसाला उत्पादन, पापड़ बनाने का काम, जूस बनाना, बड़ी बनाना, आदि।
22. जैविक कीटनाशक उत्पादन
23. गन्ना रस का व्यवसाय, गुड़, शक्कर तथा खांडसारी का निर्माण
24. गोबर से गोबर–गैस उत्पादन
25. हैंडलूम और पावर लूम उद्योग
26. रेशमी वस्त्र व ऊनी वस्त्र उद्योग
27. मिट्टी के बर्तनों का उद्योग
28. बांस की खेती, बांस की पिंचो से टुकना–सूपा बनाना
29. लकड़ी उद्योग
30. धान से चावल बनाना, गेहूँ एवं अन्य अनाजों की पिसाई उद्योग

कृषि आधारित कुटीर उद्योग में निवेश पूंजी भी कम लगती है व कृषि आधारित होने के कारण कच्चे सामान की उपलब्धता भी आसान होती है।

कुटीर उद्योग के लिए लोन और सब्सिडी

इन लघु उद्योगों को स्थापित करने की जानकारी हर एक जिले में स्थित जिला उद्योग केन्द्र द्वारा उपलब्ध करवाई जाती है। ये उद्योग केन्द्र किसानों को इन लघु उद्योगों को स्थापित करने के लिए लाईसेंस देता है व बैंको से बड़े ही कम ब्याज पर ऋण उपलब्ध करवाने में सहायता करता है। सरकार ने कुटीर उद्योग के लिए कम ब्याज दरों पर लोन देने की योजना बना रखी है। यह लोन किसान क्रेडिट कार्ड योजना के जरिए मिल जाता है, इसमें किसी दस्तावेज की जरूरत भी नहीं होती है। छोटे–छोटे व्यवसाय को संरक्षित करने के लिए सरकार ने सब्सिडी का प्रावधान बनाया है। सरकार की विकास योजनाओं के द्वारा कुटीर उद्योग को बेहतर बनाया जा सकता है। इसकी जानकारी के लिए अपने नजदीकी बैंक या जिला उद्योग केंद्र से संपर्क कर सकते हैं। भारत सरकार के अलावा बैंक शाखाओं ने भी महिलाओं के हौंसलों को नई उड़ान देने के लिए विशेष प्रकार के ऋण उपलब्ध करवाने के प्रयास किए हैं ताकि वह शुरुआती व्यवसाय बड़ी आसानी से शुरू कर सकें। स्टार्ट अप में महिलाओं के लिए विशेष व्यवस्था की गई है।

कुटीर उद्योग का पंजीकरण

कुटीर उद्योग का पंजीकरण करवाने से फायदा यह है कि वक्त पड़ने पर बड़ा लोन मिल सकता है, जिससे अपने व्यवसाय का विस्तार भी कर सकते हैं। इसके अलावा ग्राहक को पक्का बिल दे सकते हैं। कुटीर उद्योगों को जिला उद्योग केंद्र द्वारा संरक्षण भी दिया जाता है, तो इस तरह कुटीर उद्योगों से आप अपने भविष्य को बेहतर बना सकते हैं, जिसमें सरकार भी आपकी पूरी सहायता करती है।

लघु व कुटीर उद्योग स्थापित करने से महिलाए घर सम्भलने के साथ आमदनी भी कमा सकती हैं। महिलाओं को लघु व कुटीर उद्योगों में निर्णय लेने का अधिकार होना चाहिये। बाजार में सामान ले जाने व विपणन हेतु विषयों का अधिकार होना चाहिये, ऐसे उपाए करने से ही उन्हें उचित दाम मिलेंगे। महिलाएं स्वावलम्बी बन सकती हैं व गर्व से सर ऊँचा करके अपनी पहचान बना सकती हैं और घर से बाहर निकलकर, नई बातें सीखकर, अपने परिवार व समाज की उन्नति में भागीदार बढ़ा सकती हैं।

हमारे स्वास्थ्य पर कीटनाशकों के प्रभाव और इनसे बचाव

हनीफ खान, ओम प्रकाश, चंद्र नाथ मिश्र, गोपालरेड्डी के, सुनील कुमार एवं ज्ञानेंद्र प्रताप सिंह
भाकृअनुप–भारतीय गेहूँ एवं जौ अनुसंधान संस्थान, करनाल

विभिन्न प्रकार के कीटनाशकों और रसायनों का उपयोग फसल उत्पादन में विशेष रूप से फलों और सब्जियों के उत्पादन में किया जाता है। कीटनाशक ऐसे रसायन हैं जिन्हें जीवों के कुछ समूहों के लिए विषाक्त होने के लिए डिज़ाइन किया गया है ताकि वे कीट प्रजातियों को प्रभावी ढंग से नियंत्रित कर सकें। कीटनाशक विषाक्त पदार्थ हैं और दुर्भाग्य से वे उन ''कीटों'' जिन पर उन्हें लक्षित किया जाता है के अलावा अन्य नुकसान कहीं अधिक कर सकते हैं। जहरीले कीटनाशकों के संपर्क में आने से कई स्वास्थ्य खतरे पैदा हो सकते हैं। ये प्रभाव सांस की समस्याओं से लेकर कैंसर तक कई गंभीर बीमारियों से जुड़े हैं।

मनुष्य का कीटनाशकों के प्रति संपर्क कई तरह से हो सकता है। किसान और कृषि श्रमिक को फसलों पर छिड़काव और अनाज भंडार के उपचार के दौरान कीटनाशकों के माध्यम से स्वास्थ्य जोखिम हो सकता है। खेतों के निकट रहने वाले ग्रामीण निवासी कीटनाशकों के बहाव के संपर्क में आ सकते हैं। वानिकी, पेशेवर और घरेलू कीट नियंत्रण में, परिरक्षकों के साथ लकड़ी के उपचार और परजीवी रोधी रसायन के साथ पशुधन के उपचार के माध्यम से भी हानिकारक संपर्क हो सकता है। बहुत से लोग घर और बगीचे के उपयोग के लिए कीटनाशक खरीदते हैं।

कीटनाशकों के संभावित हानिकारक प्रभाव

कीटनाशक तीव्र रूप से जहरीले हो सकते हैं। इसका अभिप्राय यह है कि वे अन्तः ग्रहण श्वसन या त्वचा के संपर्क के केवल एक प्रकरण के बाद हानिकारक या घातक प्रभाव पैदा कर सकते हैं। लक्षण एक्सपोजर के तुरंत बाद स्पष्ट होते हैं या 48 घंटों के भीतर उत्पन्न हो सकते हैं। कीटनाशक दीर्घ काल तक अल्प मात्रा में लगातार शरीर में जाते हैं तो धीमा जहर कई बीमारियां पैदा करता है। कीटनाशकों के संपर्क से होने वाले दो व्यापक प्रकार के प्रभाव हैं; स्थानीय शरीर संपर्क और प्रणालीगत (शरीर में सिस्टेमिक)।

स्थानीय प्रभाव

त्वचा, आंखों या श्वसन प्रणाली के संपर्क के क्षेत्र में हो सकते हैं। उन्हें संपर्क लक्षण या प्रभाव के रूप में जाना जाता है।

स्थानीय संपर्क प्रभावों के उदाहरण

त्वचा में जलन या घाव, खुजली, लालिमा, चकत्ते, छाले, जलन और मलिनीकरण

- कई शाकनाशी और कवकनाशी (फंजीसाइड) त्वचा की सूजन का कारण बनते हैं। फ्यूमिगेंट्स गंभीर फफोले पैदा कर सकते हैं।

आंखों में जलन या घाव, सूजन, चुभन और जलन

- खरपतवारनाशी, कवकनाशी, कीटनाशक और धुमको संपर्क के माध्यम से आंखों में जलन या चोट का कारण बन सकते हैं, जिसके परिणामस्वरूप कभी–कभी स्थायी क्षति हो सकती है।

नाक, मुंह या गले में जलन या घाव, सूजन, चुभन और जलन

- श्वसन तंत्र में स्थायी क्षति कदाचित हो सकती है।

सिस्टेमिक (प्रणालीगत) प्रभाव

एक बार पदार्थ अवशोषित हो जाने और पूरे शरीर में वितरित होने के बाद प्रणालीगत प्रभाव हो सकते हैं। ये प्रभाव घातक या चिरकारी (क्रोनिक) हो सकते हैं। ये प्रभाव रसायन के विषाक्ता प्रोफाइल, अवशोषित मात्रा और व्यक्ति की रसायन को विषहरण और समाप्त करने की क्षमता पर निर्भर करते हैं। प्रणालीगत प्रभावों के उदाहरण हैं।

- तंत्रिका तंत्र को नुकसान
- रक्त का थक्का जमने की क्षमता कम होना
- कई तरह के कैंसर
- प्रजनन सम्बंधी समस्याएं
- बिगड़ा हुआ चयापचय (शरीर की ऊर्जा का उपयोग करने की क्षमता)
- हार्मोन असंतुलन
- विभिन्न अंग प्रणालियों को नुकसान, जैसे कि गुर्दे या यकृत (लिवर)

एलर्जी के प्रभाव हानिकारक होते हैं जो कुछ लोगों में कुछ पदार्थों/रसायनों के संपर्क में आने के बाद होते हैं। किसी उत्पाद के निर्माण में निहित रसायन द्वारा एलर्जी से त्वचा में जलन, छाले, कर्कश गला या पित्ती हो सकती है। कभी–कभी, अधिक गंभीर समस्याएं, जैसे कि अस्थमा या यहाँ तक कि जानलेवा सदमा भी हो सकता है। कीटनाशक एलर्जी के लक्षणों में ऑखें लाल या आंखों में खुजली, सांस लेने में तकलीफ और अस्थमा जैसे प्रभाव शामिल हैं। दुर्भाग्य से यह अनुमान लगाने का कोई तरीका नहीं है कि कौन से

लोग किसी विशेष उत्पाद से एलर्जी प्रतिक्रिया विकसित करेंगे। एलर्जी की प्रतिक्रिया होने से यह अनुमान नहीं लगाया जा सकता है कि कौन व्यक्ति कीटनाशक के अन्य प्रभावों यथा क्रोनिक या विलंबित प्रभाव के प्रति अधिक संवेदनशील होगा। इस प्रकार के प्रभाव शरीर के भीतर विभिन्न रासायनिक प्रतिक्रियाओं पर निर्भर करते हैं।

एक्सपोजर–कीटनाशक शरीर में कैसे प्रवेश करते हैं

कीटनाशक का जोखिम तब होता है जब कीटनाशक शरीर पर या अंदर चले जाते हैं। आमतौर पर त्वचा शरीर में प्रवेश का मुख्य मार्ग है। जोखिम के चार प्राथमिक मार्ग हैं।

- त्वचा
- आंखें
- फेफड़े (श्वसन) और
- मुंह (मौखिक)

कीटनाशक विषाक्तता के लिए प्राथमिक उपचार

कीटनाशक के संपर्क में आने के 24 घंटों के भीतर होने वाले असामान्य या अस्पष्ट लक्षणों के लिए तुरंत चिकित्सा सलाह लें। प्राथमिक उपचार एक पीड़ित की सहायता करने का प्रारंभिक प्रयास है। जब पीड़ित चिकित्सा सहायता रास्ते में हो। यह सुनिश्चित करें कि वह सांस ले रहा है या नहीं और कीटनाशक के संपर्क में आना बंद हो गया है। सहायता देने से पहले और देते समय खुद को कीटनाशक के संपर्क में आने से बचाएं। उत्पाद लेबल प्राथमिक उपचार सूचना का प्राथमिक स्रोत है। लेबल के विशिष्ट प्राथमिक चिकित्सा निर्देशों का ध्यानपूर्वक पालन करें।

कीटनाशक आपात स्थिति के दौरान प्राथमिक उपचार देते समय याद रखने योग्य मुख्य बिंदु;

- सभी दूषित कपड़ों को तुरंत हटा दें।
- प्रभावित शरीर के अंग को साफ पानी से धोयें ।
- बालों सहित प्रभावित क्षेत्र को पानी और साबुन से धोएं।
- यदि त्वचा पर रासायनिक जलन है, तो प्रभावित क्षेत्र को एक साफ व मुलायम कपड़े से ढक दें।
- बेहोश व्यक्ति को कभी भी मुँह से कुछ भी देने की कोशिश न करें।
- यदि लेबल पर निर्देश न हों, तो उल्टी न कराएं।
- यदि साँस के संपर्क में आ गया है, तो पीड़ित को तुरंत ताजी हवा में ले जाएं।
- चूंकि आंखें सामग्री को आसानी से अवशोषित कर लेती हैं, इसलिए त्वरित ध्यान दें।
- पलक को खुला रखें और तुरंत साफ पानी की बूंदों से आँख को धीरे से धोना शुरू करें।
- 15 मिनट तक लगातार आंख को धोते रहें।
- आंख को किसी साफ कपड़े से ढक लें और तुरंत डॉक्टर से संपर्क करें।
- यदि पीड़ित को ऐंठन हो रही है, तो उसके सिर की रक्षा करें, सिर को बगल की ओर करें और देखें कि श्वास जारी है।
- सांस रुकने या अनियमित होने पर कृत्रिम श्वसन दें।
- अगर किसी के मुंह में कीटनाशक है लेकिन निगला नहीं गया हैं, तो खूब पानी से मुंह को धोएं।
- यदि पीड़ित बेहोश है या ऐंठन हो रही है तो उसे उल्टी न कराएं।

फलों और सब्जियों से कीटनाशकों को निष्कासन

- कीटनाशकों के अवशेष फसलों की कटाई के उपरांत रह सकते हैं जो कि हमारे भोजन में विशेषकर फलों और सब्जियों में पहुँच जाते हैं। उपभोक्ताओं के रूप में खेतों में फलों और सब्जियों पर छिड़काव किए जाने वाले कीटनाशकों पर हमारा कोई नियंत्रण नहीं है। लेकिन कुछ त्वरित तकनीकें हैं जो अवशेषों से काफी हद तक छुटकारा पाने में हमारी मदद कर सकती हैं।

धोना

- खाद्य उत्पादों से कीटनाशक अवशेषों को हटाने का पहला कदम धुलाई है। 2% नमक के पानी से धोने से अधिकांश संपर्क कीटनाशक अवशेष निकल जाएंगे जो आमतौर पर सब्जियों और फलों की सतह पर होते हैं।
- ठंडे पानी से धोने से लगभग 75–80% कीटनाशक अवशेष कम हो जाते हैं।
- अंगूर, सेब, अमरूद, आलूबुखारा, आम, आड़ू और नाशपाती और टमाटर, बैगन और भिंडी जैसी फलों और सब्जियों की सतह पर मौजूद कीटनाशक अवशेषों को दो से तीन बार धोने की आवश्यकता होती है।
- हरी पत्तेदार सब्जियों को अच्छी तरह से धोना चाहिए। हरी पत्तेदार सब्जियों से कीटनाशक अवशेषों को सामान्य प्रसंस्करण जैसे कि ब्लैंचिंग और पकाने से काफी हद तक हटा दिया जाता है।

ब्लांचिंग

- अधिकांश सब्जियों पर गर्म पानी या भाप में संक्षिप्त उपचार किया जाता है। कुछ कीटनाशक अवशेषों को ब्लांच करके प्रभावी ढंग से हटाया जा सकता है। लेकिन ब्लांच करने से पहले सब्जियों और फलों को अच्छी तरह से धो लेना बहुत जरूरी है।

छीलना

- फलों और सब्जियों की सतह पर पाए जाने वाले प्रणालीगत और संपर्क दोनों तरह के कीटनाशकों को छीलकर हटाया जा सकता है।

- कच्चे उत्पाद से गाढ़ा करना, निर्जलीकरण और निष्कर्षण द्वारा अंतिम उपभोक्ता उत्पाद में कीटनाशक अवशेषों को और कम कर सकते हैं।

अच्छी तरह से पकाना

- पशु उत्पाद भी मानव आहार में कीटनाशक अवशेषों के लिए संदूषण का प्रमुख स्रोत हैं क्योंकि पशु जो चारा खाते हैं। उन पर कीटनाशकों का छिड़काव अमूमन किया होता है।
- प्रेशर कुकिंग, फ्राइंग और बेकिंग द्वारा पशु वसा ऊतकों से कीटनाशक अवशेषों को हटा सकते हैं।

दुग्ध उत्पाद

- दूध को ऊंचे तापमान पर उबालने से लगातार बने रहने वाले कीटनाशक अवशेष नष्ट हो जाते हैं।

खाद्य वनस्पति तेल

- रिफाइंड तेलों में कम मात्रा में कीटनाशक अवशेष होंगे।
- घरेलू खाद्य तेल को एक विशेष फ्लैश प्वाइंट तक गर्म करने से कीटनाशक अवशेष निकल जाएंगे।

जैवप्रौद्योगिकी– जीवन की तकनीक : तब से अब

चारुलता[1], स्नेहा अधिकारी[1], प्रमोद प्रसाद[1], ओ पी गंगवार[1], सुबोध कुमार[1], रतन तिवारी[2], दिनेश चौधरी[1] एवं एस सी भारद्वाज[1]
[1]भाकृअनुप– भारतीय गेहूँ एवं जौ अनुसन्धान संस्थान, क्षेत्रीय केन्द्र, फ्लॉवरडेल, शिमला
[2]भाकृअनुप– भारतीय गेहूँ एवं जौ अनुसंधान संस्थान, करनाल

"जैवप्रौद्योगिकी या बायोटेक्नोलॉजी" यह शब्द आजकल चर्चा का विषय बन गया है। यह आमतौर पर समाचारपत्रों, पत्रिकाओं और सभी प्रकार के मीडिया आउटलेट्स में देखा जा सकता है, जिसमें प्रिंट मीडिया से लेकर इलेक्ट्रॉनिक मीडिया तक शामिल हैं। यह शब्द आपने कक्षाओं से लेकर कैफेटेरिया तक में सुना होगा। लोग जैवप्रौद्योगिकी पर विशाल बैठकें, सम्मेलन और कार्यशालाएँ आयोजित कर रहे हैं, जहाँ प्रतिभागी विज्ञान, उद्योग, प्रशासन, सामाजिक कार्य आदि जैसे विभिन्न क्षेत्रों से आते हैं। जैसे–जैसे समय बीत रहा है और जिस तरह से हमारा जीवन आगे बढ़ रहा है, ऐसा लगता है जैसे जैवप्रौद्योगिकी हमारे जीवन का एक अनिवार्य घटक बन गया है। वह दिन दूर नहीं, जब हम जैवप्रौद्योगिकी के बिना अपने जीवन की कल्पना नहीं कर सकेंगे। यदि हम इसे सरल शब्दों में कहें तो यह कहा जा सकता है कि "हम जैवप्रौद्योगिकी के साथ जागते हैं और हम जैवप्रौद्योगिकी के साथ बिस्तर पर चले जाते हैं"। यह भी संभव है कि भविष्य में हमारा जन्म और मृत्यु भी जैवप्रौद्योगिकी द्वारा निर्धारित किया जा सके। 'बायोटेक्नोलॉजी' शब्द को पिछले तीन दशकों के दौरान अत्यधिक महत्व मिला है, जो कि अभूतपूर्व है।

अब तक, जैवप्रौद्योगिकी ने हमारे जीवन के सभी पहलुओं, जैसे भोजन, स्वास्थ्य और पशु जीवन को छुआ है। जैवप्रौद्योगिकी की ओर सबका ध्यान खींचने का एकमात्र कारण मानवता की सेवा और लाभ में इसकी असीमित क्षमताओं का होना ही है। हमने अपने पर्यावरण में सुधार और बेहतर जीवन के लिए जैव प्रौद्योगिकी के महत्व और क्षमता पर भी ध्यान दिया है, उदाहरण के लिए जीवाश्म ईंधन (जो सीमित भंडार होने के कारण खत्म होता जा रहा है) के स्थान पर जैवप्रौद्योगिकी से जैवईंधन बनाना, क्योकि बढ़ती हुई जनसंख्या के कारण जीवाश्म ईंधन की मांग को पूरा करना बहुत मुश्किल होता जा रहा है। सरल शब्दों में हम कह सकते है, कि हमारी दिनचर्या की शुरुआत जैवतकनीकी रूप से विकसित टूथपेस्ट से होती है, दिन भर हम जैवतकनीकी रूप से विकसित ईंधन के साथ कार चलाते है, और हम दिन के अंत में जैवप्रोद्योगीकी से बनने वाली दवाओं (स्वस्थ रखने वाली या मधुमेह जैसी पुरानी बीमारियों को नियंत्रित करने वाली) के साथ हम बिस्तर पर जाते हैं, ये सब हमारे जीवन को बेहतर बनाता है। तर्कसंगत रूप से, 'बायोटेक्नोलॉजी' शब्द विज्ञान के दो सरल शब्दों, यानी'बायोलॉजी' और 'टेक्नोलॉजी' से लिया गया है। यदि हम इसको समझने की कोशिश करें, तो आम आदमी की भाषा में यह कह सकते है कि यह वह तकनीक है जो जैविक संसाधनों के उपयोग के द्वारा हमारे जीवन को सुविधाजनक और आरामदायक बनाती है। सवाल अभी भी बना हुआ है कि 'क्या जैवप्रौद्योगिकी विज्ञान की नई शाखा है?' तथ्य यह है कि जैव प्रौद्योगिकी 'बायोटेक्नोलॉजी' शब्द से बहुत पहले से ही चलन में है। यह जानना और समझना दिलचस्प है कि वास्तव में जैव प्रौद्योगिकी कैसे और कब विकसित हुई।

परिभाषा

"जैवप्रौद्योगिकी" शब्द सुनते ही आप क्या सोचते हैं ? हो सकता है आपके विचारों में समाचारों में जो देखी चीजें जैसे डॉली क्लोन भेड़, आनुवंशिक रूप से संशोधित जीव, या जीनथेरेपी कौंध जाए। यदि आप ऐसा सोचते हैं, तो आप बिल्कुल सही हैं: ये सभी जैवप्रौद्योगिकी के उदाहरण हैं। लेकिन दही ज़माने, बीयर बनाने, फसल प्रजनन और एंटीबायोटिक पेनिसिलिन के बारे में आपका क्या विचार है ? ये सभी प्रक्रियाएं और उत्पाद–जिनमें से कुछ हजारों वर्षों से चले आ रहे हैं जैवप्रौद्योगिकी के ही उदाहरण हैं। लगभग 10000 वर्षों से लोग अपने जीवन की गुणवत्ता में सुधार के लिए जैविक प्रक्रियाओं का उपयोग कर रहे हैं, जिसकी शुरुआत पहले कृषि समुदायों से हुई है। लगभग 6,000 साल पहले, मनुष्यों ने दही, ब्रेड, मादक पेय और पनीर बनाने और डेयरी उत्पादों को संरक्षित करने के लिए सूक्ष्मजीवों की जैविक प्रक्रियाओं का दोहन करना शुरू किया। वैज्ञानिक लुइस पास्चर ने इसे किण्वन अभिक्रिया नाम दिया जोकि जैवप्रौद्योगिकी का सफल उदाहरण है। लेकिन आज के समय में आधुनिक जैवप्रौद्योगिकी ऐसी प्रक्रियाओं से बहुत भिन्न है परन्तु सिद्धांत वही है कि जीवित इकाइयों या उनके उत्पादों का सीधे तौर पर या संशोधित अवस्था में मानव जीवन के कल्याण तथा जीवन को सुविधाजनक बनाने के लिए प्रयोग करना। जैवप्रौद्योगिकी शब्द का प्रयोग पहली बार हंगरी के एक इंजीनियर कार्ल एर्की ने 1919 में किया था। तो क्या यह जैव प्रौद्योगिकी की शुरुआत थी? उत्तर है नहीं। बाद में विभिन्न वैज्ञानिकों द्वारा जैवप्रौद्योगिकी को परिभाषित किया गया। जैवप्रौद्योगिकी की एक से अधिक परिभाषाएं स्वीकृत की गयी हैं, एक परिभाषा के अनुसार जैवप्रौद्योगिकी, "इंजीनियरिंग और जैविक विज्ञान के सिद्धांतों का प्रयोग करके जैविक मूल से नए उत्पाद बनाना" या दूसरे शब्दों में, इसे "मानव स्वास्थ्य, मानव जीवन और मानव पर्यावरण को संशोधित करने या सुधारने के लिए जीवित जीवों या उनके उत्पादों का उपयोग" कहें तो अनुचित नही होगा। परन्तु जैवप्रौद्योगिकी

लाभकारी होने के साथ साथ विनाशकारी भी हो सकती है। इसका सबसे अच्छा उदाहरण 'जैव आतंकवाद' है। विज्ञान पर आधारित एक काल्पनिक फिल्म "सप्लाईस" की कहानी द्वारा हम जैवप्रौद्योगिकी के फायदे और नुकसान दोनों को समझ सकते है। इस फिल्म में दो आनुवंशिकी वैज्ञानिक अलग अलग जीवों के डीएनए को मिलाकर नए–नए जीव बनाने पर काम करते हैं जिनसे मानव की बीमारियों के इलाज के लिए दवाई बनाई जा सके और आखिकार सफल भी हो जाते हैं। वह एक ऐसा जीव बनाते हैं जिसमे विभिन्न जीवों के डीएनए के साथ इंसान का डीएनए भी मौजूद होता है। जैसे–जैसे वह जीव बढ़ता है तो अपने स्वरुप को इतना बदल देता है कि अपने बनाने वाले वैज्ञानिकों पर आक्रमण करता है। अंत में एक को मार ही डालता है लेकिन दूसरी वैज्ञानिक उस जीव को मारकर अपनी जान बचाती है। इस प्रकार ये वैज्ञानिक इसको अपने फायदे के लिए बनाते है और यह जीव अपने ही बनाने वालो को मारता है। जैवप्रौद्योगिकी की परिभाषा बहुत व्यापक है, और जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, इसमें अत्याधुनिक प्रयोगशाला तकनीक और पारंपरिक कृषि और पाक तकनीक दोनों शामिल हो सकते हैं जिनका अभ्यास सैकड़ों वर्षों से किया जा रहा है। आइए जैवप्रौद्योगिकी के कुछ उदाहरणों को देखें और समझें कि वे परिभाषा में कैसे समायोजित होते हैं;

बीयर– इस प्रकरण में, माल्टेड जौ की शर्करा में छोटे कवक (खमीर) को मिलाते हैं, यह कवक किण्वन नामक प्रक्रिया के माध्यम से आसानी से चयापचय करते हैं और उत्पाद के रूप में एल्कोहल का निर्माण होता है, जो बीयर में पाया जाता है। इस उदाहरण में हम एक जीव देखते हैं। **खमीर–** जिसका उपयोग मानव उपभोग के लिए उत्पाद बनाने के लिए किया जाता है।

पेनिसिलिन– एंटीबायोटिक पेनिसिलिन कुछ कवकों द्वारा उत्पन्न होता है। प्रारंभिक परीक्षणों में उपयोग के लिए पेनिसिलिन की थोड़ी मात्रा बनाने के लिए, शोधकर्ताओं को एक सप्ताह में 500 लीटर "कवक जूस" बनाना पड़ता था। लेकिन औद्योगिक उत्पादन के लिए प्रक्रिया में सुधार किया गया तथा उत्पाद बढ़ाने के लिए उच्च–उत्पादक कवकों की स्ट्रेनों का चुनाव और परिस्थितियों में सुधार किया गया। इस उदाहरण में एक जीव (कवक) का उपयोग मानव उपयोग के लिए उत्पाद (जीवाणु संक्रमण के इलाज के लिए एक एंटीबायोटिक) बनाने के लिए किया जा रहा है।

जीन थेरेपी– एक उभरती हुई तकनीक है जिसका उपयोग आनुवंशिक विकारों (कुछ जीनों के अकर्मण्य होने की वजह से यह विकार होते हैं) के इलाज के लिए किया जाता है। इसमें अकर्मण्य जीन की जगह पर सामान्य जीन को शरीर की कोशिकाओं तक पहुंचा दिया जाता है। उदाहरण के लिए, आनुवंशिक विकार सिस्टिक फाइब्रोसिस में, फेफड़ों में उत्पादित क्लोराइड चैनल वाले जीन कार्य नहीं कर पाते हैं (नॉन फंक्शनल हो जाते हैं)। जीन थेरेपी क्लिनिकल परीक्षण में, कार्यात्मक जीन की एक प्रति को प्लाज्मिड में डालकर रोगियों के फेफड़ों की कोशिकाओं में स्थापित किया जाता हैं। इस उदाहरण में, विभिन्न स्रोतों से जैविक घटकों (मनुष्यों से एक जीन और बैक्टीरिया से बना एक प्लाज्मिड) को एक नया उत्पाद बनाने के लिए जोड़ा जाता है, जो सिस्टिक फाइब्रोसिस के रोगियों में फेफड़ों के कार्य को संपादित करने में मदद करता है।

जैवप्रौद्योगिकी के विकास के विभिन्न चरण

मानव की विभिन्न आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए जैवप्रौद्योगिकी का विकास विभिन्न चरणों में होता रहा है। जैवप्रौद्योगिकी की जटिलता समय के साथ नई

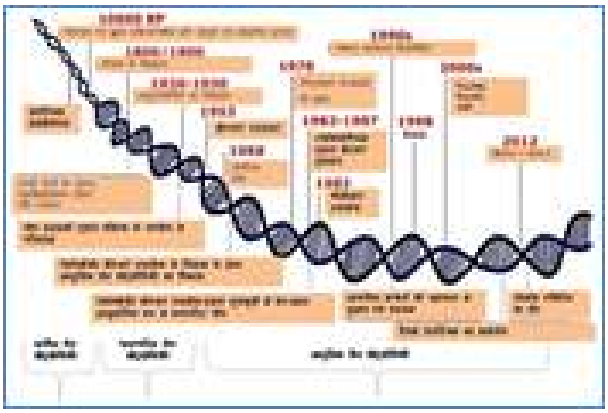

प्रौद्योगिकियों के विकास के कारण बढ़ी है, क्योंकि ये जैव–विज्ञान के विभिन्न सिद्धांतों की बेहतर समझ के साथ–साथ बेहतर तकनीक प्रगति पर आधारित हैं। यदि, हम जैवप्रौद्योगिकी के विकास को उसके वर्तमान चरण तक व्यवस्थित रूप से अध्ययन करते हैं, तो इसे तीन अलग–अलग चरणों या श्रेणियों में विभाजित किया जा सकता हैः (1) प्राचीन जैवप्रौद्योगिकी, (2) पारम्परिक या प्रचलित जैवप्रौद्योगिकी, और (3) आधुनिक जैवप्रौद्योगिकी।

प्राचीन जैवप्रौद्योगिकी

वर्ष 1800 से पहले जो भी खोजें हुई हैं यदि हम इन सभी विकासों का अध्ययन करें, तो हम यह निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि ये सभी आविष्कार प्रकृति के बारे में सामान्य टिप्पणियों पर आधारित थे, जिन्हें उस समय मानव जीवन की बेहतरी के परीक्षण के लिए रखा जाता था। भले ही प्राचीन काल हो या आधुनिक काल, भोजन, वस्त्र और आश्रय मनुष्य की सबसे महत्वपूर्ण बुनियादी जरूरतें हैं। एकमात्र कारक जो बदला है, वह है उनके प्रकार और उत्पत्ति। मनुष्य के अस्तित्व के साथ–साथ निरंतरता के लिए भोजन एक अनिवार्य आवश्यकता रही है। मानव अपना पेट भरने के लिए कंद, फल–फूल अथवा जानवरों के कच्चे

मांस पर ही निर्भर रहता था। लेकिन कठोर मौसम के दौरान, भोजन की कमी हो जाती थी। कहा जाता है कि, 'आवश्यकता सभी आविष्कारों की जननी है', जिसके कारण खाद्य उत्पादों को उगाना और संग्रह करना शुरू किया गया, जिसे 'कृषि' का नाम दिया गया। पुराने समय में मनुष्य ने अपने आश्रयों के आस–पास कृषि करके भोजन उपलब्ध करने की संभावनाओं का पता लगाया, ताकि भोजन जैसी मूलभूत आवश्यकता को आसानी से पूरा किया जा सके। पौधों के बीज (ज्यादातर अनाज) इकट्ठा किये और अपने आश्रयों के पास बोया। वे जल, प्रकाश और पौधे के विकास की अन्य आवश्कताओं के महत्व को समझने लगे। इसी तरह के सिद्धांतों और जरूरतों के लिए विभिन्न जंगली जानवरों को पालना शुरू कर दिया, जिससे उन्हें अपने रहने की स्थिति में सुधार करने और अपनी भूख को संतुष्ट करने में मदद मिलने लगी। चूंकि अब जानवर उनके पास नजदीक उपलब्ध थे तो उनको शिकार की जरूरत नहीं रही इसके कारण उनको जानवरों के शिकार की खतरनाक परिस्थितियों से भी जूझना नहीं पड़ता था। जंगली जानवरों को पालतू बनाना, पशु प्रजनन, निगरानी और प्रयोगों की शुरुआत थी। निश्चित रूप से, हम कह सकते हैं कि यह खेती के विकास का प्रारंभिक काल था, जिसके कारण खाद्य संरक्षण और भंडारण के तरीकों के विकास जैसी अन्य आवश्यकताएँ पैदा हुईं। उन्होंने लंबे समय तक भंडारण के लिए भोजन को संरक्षित करने के लिए ठंडी गुफाओं का इस्तेमाल किया। इससे खाद्य उत्पादों के भंडारण के लिए चमड़े के बैग, मिट्टी के जार आदि के रूप में बर्तनों के विकास का मार्ग खुला। खाद्य फसलों और जंगली जानवरों के पालन के बाद, मनुष्य अन्य नए अवलोकनों जैसे पनीर, दही, आचार आदि बनाने की ओर बढ़ने लगा। निश्चित रूप से पनीर बनने को जैवप्रौद्योगिकी के पहले प्रत्यक्ष उत्पादों (या उप–उत्पाद) में से एक माना जा सकता है, क्योंकि यह दूध में रेनेट (बछड़ों के पेट में पाया जाने वाला एक एंजाइम) को मिलाकर तैयार किया गया था, जो केवल दूध में सुक्ष्म जीवों की क्रिया से ही संभव है, हालाँकि उस समय यह खोजा नहीं गया था। खमीर सबसे पुराने सूक्ष्मजीवों में से एक है जिसका उपयोग मनुष्यों ने अपने लाभ के लिए किया। खमीर का उपयोग व्यापक रूप से ब्रेड, सिरका उत्पादन और अन्य किण्वन उत्पाद बनाने के लिए किया जाने लगा, जिसमें व्हिस्की, वाइन, बीयर आदि जैसे मादक पेय पदार्थों का उत्पादन शामिल हैं। कम पीएच होने के कारण सिरका बहुत महत्वपूर्ण रहा। सिरका कुछ कीटाणुओं के विकास को रोकने में सक्षम था और इसलिए, खाद्य संरक्षण के लिए सिरके का सफलतापूर्वक उपयोग किया जाने लगा। इन खोजों ने मानव को प्रक्रिया को समझने और सुधार पर काम करने के लिए प्रेरित किया। किण्वन एक महत्वपूर्ण प्रक्रिया साबित हुई, भले ही मानव इसके पीछे के सिद्धांत से अनभिज्ञ थे। इसके बाद मानव का रुझान जानवरों में क्रॉस ब्रीडिंग में दिखने लगा। क्रॉसब्रीडिंग के सबसे पुराने उदाहरणों में से एक खच्चर है जो कि मनुष्य ने अपने लाभ के लिए प्रयोग किया। खच्चर नर गधे और मादा घोड़े की संतान होता है। जब ट्रैक्टर या ट्रक नहीं थे, तब लोग परिवहन, भार ढोने और खेती के लिए खच्चरों का उपयोग करने लगे। हिनी (नर घोड़े और मादा गधे की संतान) की तुलना में खच्चर को प्राप्त करना आसान है। घोड़े (64) और गधे (62) से भिन्न, खच्चर और हिनी दोनों में गुणसूत्र संख्या 63 होती है।

पारम्परिक या प्रचलित जैवप्रौद्योगिकी

जैवप्रौद्योगिकी के विकास के दूसरे चरण को 'पारम्परिक या प्रचलित जैवप्रौद्योगिकी' कहा जा सकता है। यह चरण लगभग 1800 से बीसवीं शताब्दी के मध्य तक अस्तित्व में था। इस अवधि के दौरान विभिन्न अवलोकनों को वैज्ञानिकता के साथ प्रमाणित किया गया। इन प्रमाणों से जैवप्रौद्योगिकी की पहेलियाँ सुलझने लगी। विभिन्न वैज्ञानिक प्रयासों तथा योगदानों ने पहेलियों को सुलझाने और नई खोजों का मार्ग प्रशस्त करने में मदद की। आनुवंशिकता की जानकारी तथा हस्तांतरण जैवप्रौद्योगिकी के मूल हैं। यह, पहली बार मटर के पौधों में समझा गया था। ग्रेगर जॉन मेंडल (1822–1884) ने मटर के पौधों पर प्रयोग द्वारा जेनटिक ट्रांसफर को देखा, समझा और टिप्पणियों को डिकोड किया। उस समय मेंडल ने ऑस्ट्रिया के ब्रुन में प्राकृतिक विज्ञान सोसायटी को "लॉज ऑफ़ इनहेरिटेंस" के नाम से इन्हें प्रस्तुत किया। मेंडल ने प्रस्तावित किया कि एक पीढ़ी से अगली पीढ़ी में आनुवंशिकता की सूचना कुछ अदृश्य आंतरिक इकाइयाँ द्वारा जाती है जिन्हें 'कारक' और बाद में जीन कहा गया है। हालाँकि, कहानी का दुखद हिस्सा यह है कि मेंडल को अपनी मृत्यु के लगभग 34 वर्षों बाद तक भी अपनी खोज के लिए उचित मान्यता प्राप्त नहीं हुई। बाद में ह्यूगो डी व्रीस, एरिच वॉन शेचमार्क और कार्ल कोरेंस जैसे अन्य वैज्ञानिकों ने 1900 में मेंडल के काम को पुनः प्रमाणित किया। इतने लंबे समय तक मेंडल के अध्ययन पर किसी का ध्यान इसलिए नहीं गया क्योंकि उसी समय चार्ल्स डार्विन का विकासवाद का सिद्धांत इतना अधिक प्रचलित था कि इसने मेंडल द्वारा किए गए कार्य के महत्व को प्रकाश में नहीं आने दिया।

लगभग उसी समय रॉबर्ट ब्राउन ने कोशिकाओं में नाभिक की खोज की थी, जबकि 1868 में, स्विस जीव विज्ञानी फ्रेडरिक मिशर ने न्यूक्लिन (एक यौगिक जिसमें न्यूक्लिक एसिड होता है) की सूचना दी थी, जिसे उन्होंने मवाद कोशिकाओं यानी सफेद रक्त कोशिकाओं (डब्ल्यूबीसी) से

निकाला था। आनुवंशिक सामग्री के रूप में डीएनए की खोज और एक पीढ़ी से अगली पीढ़ी में हस्तान्तरण में डीएनए की भूमिका, ये दो खोजें आधुनिक आणविक जीव विज्ञान का आधार बनीं। 1881 में, एक जर्मन चिकित्सक रॉबर्ट कोच ने आलू के स्लाइस (पहले कभी ठोस माध्यम) पर बढ़ने वाली जीवाणु कॉलोनियों को देखा। उसी प्रयोगशाला के सहकर्मियों में से एक वाल्टर हेस्से ने अपनी पत्नी से पूछा कि गर्मी के उच्च तापमान पर भी जेली को ठोस कैसे रखा जाता है, तो उसकी पत्नी ने अगार बताया, इस प्रकार शुद्ध माइक्रोबियल कल्चर को प्राप्त करने, पहचान करने और रखने के लिए अगार–अगार को उपयोगी माध्यम स्वीकार किया गया। 1888 में, कोशिकाओं में मौजूद डीएनए और प्रोटीन की एक संगठित संरचना या कुंडलित डीएनए के एक टुकड़े की खोज हुई जिसे हेनरिक विल्हेम नामक वैज्ञानिक ने 'क्रोमोसोम' शब्द दिया। इस अवधि के दौरान ब्रिटिश चिकित्सक एडवर्ड जेनर और एक फ्रांसीसी जीवविज्ञानी लुई पाश्चर द्वारा चेचक और रेबीज के टीकों की महत्वपूर्ण खोज हुई। इस समय तक जीव विज्ञान का विकास चरम सीमा को छूने लगा था। वंशानुक्रम में आनुवंशिकी के सिद्धांत को टी एच मॉर्गन ने फिर से परिभाषित किया, जिन्होंने फल मक्खियों, यानी *ड्रोसोफिला मेलानोगास्टर* का उपयोग करके वंशानुक्रम और वंशानुक्रम में गुणसूत्रों की भूमिका को दिखाया है। टी एच मॉर्गन के इस ऐतिहासिक कार्य को 1926 में 'द थ्योरी ऑफ द जीन' नाम दिया गया था। मॉर्गन के काम के प्रकाशन से पहले, 1909 में ही विल्हेम जोहॉनसन ने 'जीन' शब्द और इसका वर्णन आनुवंशिकता के वाहक के रूप में किया था। जोहॉनसन ने 'जीनोटाइप' और 'फीनोटाइप' शब्द भी दिए। 'जीनोटाइप' एक जीव के आनुवंशिक संरचना का वर्णन करने के, जबकि फीनोटाइप' जीव के वास्तविक रूप का वर्णन करने के लिए था। इस समय तक आनुवंशिकी ने अपना महत्व प्राप्त करना शुरू कर दिया था। लगभग उसी समय, ब्रिटेन में, एक चिकित्सक अलेक्जेंडर फ्लेमिंग ने एंटीबायोटिक दवाओं की खोज की, जब उन्होंने देखा कि एक सूक्ष्मजीव का उपयोग दूसरे सूक्ष्मजीव को मारने के लिए किया जा सकता है। फ्लेमिंग ने नोट किया कि जब एक पेट्री डिश में एक मोल्ड बढ़ने लगा तब सभी बैक्टीरिया (स्टेफिलोकोकाई) मर गए। बाद में उन्होंने *पेनिसिलियम नोटेटम* मोल्ड से जीवाणुरोधी विष 'पेनिसिलिन' की खोज की, जिसका उपयोग कई संक्रामक रोगों के खिलाफ किया जाने लगा। फ्लेमिंग ने लिखा, "जब मैं 28 सितंबर, 1928 को भोर के तुरंत बाद उठा, तो मैंने निश्चित रूप से दुनिया की पहली एंटीबायोटिक की खोज करके सभी दवाओं में क्रांति लाने की योजना नहीं बनाई थी"। वास्तव में वैक्सीन टीके और एंटीबायोटिक्स मानवता के सबसे अच्छे रक्षक साबित हुए। क्या हम इन दो खोजों को दुनिया की लगातार बढ़ती आबादी के साथ–साथ उम्र बढ़ने वाली आबादी के लिए जिम्मेदार ठहरा सकते हैं?

आधुनिक जैवप्रौद्योगिकी

द्वितीय विश्व युद्ध की समाप्ति के बाद कुछ, बहुत महत्वपूर्ण खोजों की सूचना मिली, जिन्होंने आधुनिक जैवप्रौद्योगिकी और इसकी वर्तमान स्थिति के लिए मार्ग प्रशस्त किया। 1953 में, जेडी वाटसन और एफएचसी क्रिक ने पहली बार डीएनए के एक संरचनात्मक मॉडल, जिसे 'डीएनए का डबल हेलिक्स मॉडल' के रूप में जाना जाता है, एक आनुवंशिक सामग्री के रूप में डीएनए के रहस्यों को सुलझाया। यह मॉडल डीएनए रेप्लिकेशन से संबंधित विभिन्न घटनाओं और वंशानुक्रम में इसकी भूमिका की व्याख्या करने में सक्षम था। बाद में, जैकब और मोनाड ने 1961 में ऑपेरॉन कांसेप्ट प्रस्तुत किया, जबकि कोहलर और माइलस्टीन ने 1975 में, साइटोप्लाज्मिक हाइब्रिड का कंसेप्ट दिया और पहली बार मोनोक्लोनल एंटीबॉडी का उत्पादन किया। इस समय तक ऐसा लग रहा था कि दुनिया के वैज्ञानिक समुदाय के पास उनके अनुप्रयोगों के लिए लगभग सभी बुनियादी उपकरण उपलब्ध हैं, साथ ही अधिकांश बुनियादी अवधारणाओं को स्पष्ट कर दिया गया है, जिसने महत्वपूर्ण वैज्ञानिक खोजों को तेजी से आगे बढ़ाया है। डॉ. हरगोबिंद खुराना ने टेस्ट ट्यूब में डीएनए को संश्लेषित किया और वैज्ञानिक कैरी मुलिस ने टेस्ट ट्यूब में डीएनए की मूल मात्रा से हजार गुना तक बढ़ाने की तकनीक खोज निकाली जिसे पीसीआर का नाम दिया गया। इस तकनीकी प्रगति का उपयोग करते हुए, अन्य वैज्ञानिक एक डीएनए को दूसरे डीएनए में जोड़ने और यहां तक कि अगली पीढ़ी में डीएनए ट्रांसफर की निगरानी करने में सक्षम हो गए। इसे रेकॉम्बीनैंट डीएनए टेक्नोलॉजी का

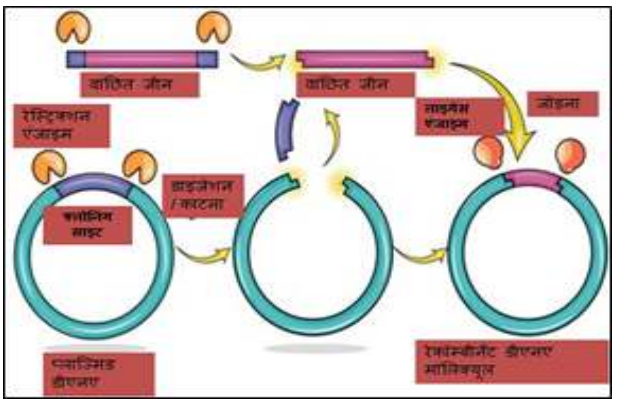

नाम दिया गया, इस तकनीक द्वारा बहुत सारी सफल खोजें हुई उनके उत्पाद बनने लगे।

इन सभी को जेनेटिक इंजीनियरिंग का नाम दिया गया। जेनेटिक इंजीनियरिंग/रिकॉम्बीनैंट डीएनए टेक्नोलॉजी को ही सही मायने में आधुनिक जैवप्रौद्योगिकी माना गया है जिससे वैज्ञानिक अपनी जरूरतों के हिसाब से डीएनए डिजाइन (जीनोटाइप) बनाने में सक्षम हैं और उसके अनुरूप

फीनोटाइप प्राप्त कर सकते हैं। दो या दो से अधिक स्त्रोतों से डीएनए को संयोजित करके रिकॉम्बीनैंट डीएनए बनाया जाता हैं, इस प्रक्रिया में अक्सर विभिन्न जीवों के डीएनए को जोड़ा जाता है। जिसमें वांछित डीएनए को पहचान कर टुकड़ों में किया जाता है तथा वेक्टर में जोड़ा जाता है, अब इस वेक्टर को दूसरे मेज़बान जीव में स्थानांतरण किया जाता है और इसकी पहचान की जाती है। इसलिए, मूल रूप से, इस प्रक्रिया के अंतर्गत जीनोम में डीएनए संरचना के एक विदेशी टुकड़े (फॉरेन डीएनए) को प्रवेश कराया जाता है जिसमें हमारी रुचि के अनुसार जीन शामिल होते हैं। जिस जीन को प्रवेश कराया जाता है उसको रिकॉम्बीनैंट जीन कहते है। हालाँकि मेजबान के जीनोम में वांछित जीन डालना उतना आसान नहीं है जितना की लगता है। इस प्रकार जीव के आनुवंशिक रूपांतरण में मूलभूत तीन चरण हैं:

- वांछित जीन युक्त डीएनए की पहचान
- चिन्हित डीएनए का परपोषी में स्थानांतरण
- स्थानांतरित डीएनए को परपोषी में सुरक्षित रखना तथा उसकी संतति में स्थानांतरित करना

इस बीच एक आयरिश वैज्ञानिक इयान विल्मट एक वयस्क जानवर का क्लोन बनाने में सफल रहे, और उन्होंने क्लोन भेड़ का नाम 'डॉली' रखा। चूँकि मानव क्लोनिंग पर अभी तक रोक है क्योंकि इसके परिणाम बहुत भयंकर हो सकते

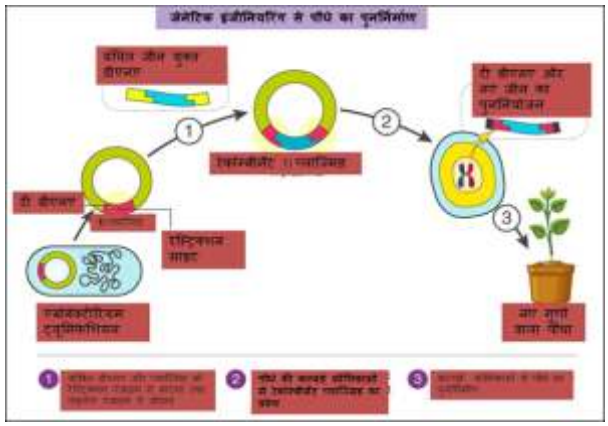

हैं, लेकिन पौधों और कृषि विज्ञान में जैव प्रौद्योगिकी की बहुत सारी सफलताये हैं जैसे कि बीटी कॉटन, बीटी बैंगन, फ्लेवर सेवर टमाटर, गोल्डन राइस, बायो फोर्टिफाइड फसलें इत्यादि। जिनमें दो डीएनए के टुकड़ों को मिलाकर अलग स्वरूप दिया जाता हैं और नया फीनोटाइप तैयार किया जाता है। पौधों की जेनेटिक इंजीनियरिंग में जीन ट्रांसफर के लिए *एग्रोबैक्टिरियम* का प्रयोग किया जाता है। अभी हाल ही में एक नई तकनीक सामने आई हैं जिसे क्रिस्पर/कास 9 का नाम दिया गया हैं जिसका फसल सुधार में महत्वपूर्ण योगदान है।

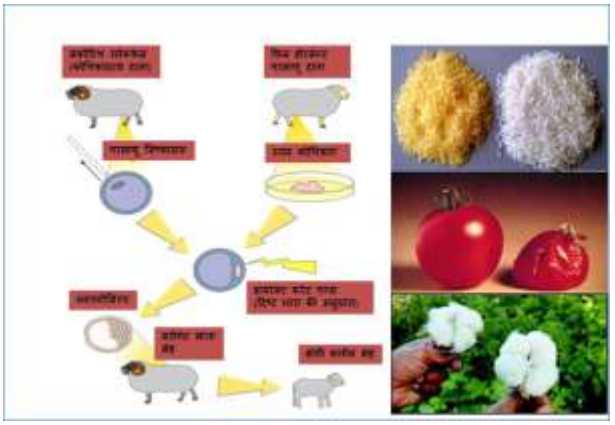

जैवप्रौद्योगिकी के मानव जीवन में कुछ महत्वपूर्ण योगदान

- रिकॉम्बीनैंट डीएनए तकनीक/जेनेटिक इंजीनियरिंग के द्वारा बीजों का ऐसा जीनोटाइप निर्मित कर लिया जाता है, जो ऊष्मा, नमी तथा विभिन्न रोगों के प्रति प्रतिरोधी गुण प्रदर्शित करता है। इस तकनीकी के द्वारा बिना उर्वरक के वातावरण से सीधे ही नाइट्रोजन का स्थिरीकरण करने वाले पादप, विभिन्न रोग प्रतिरोधी पादप किस्में, अधिक उत्पादन वाली फसलें, अत्यधिक सूखे तथा रोगों से लड़ने की क्षमता वाले ऐसे पौधे जिनको चौपाये जानवर नहीं खाते हैं, आदि का निर्माण किया गया है। कुछ ऐसे सूक्ष्मजीव भी बनाये गये है, जो विषाक्त पदार्थों एवं औद्योगिक अपशिष्ट के शुद्धिकरण में सहायक होते हैं।
- इस तकनीक के इस्तेमाल से बीटी कॉटन का निर्माण किया गया जिससे पौधों की रक्षा कीटों या बॉल वर्म्स से की जाती है।
- इस तकनीक द्वारा न केवल जीनों के स्वरूपों में संशोधन करके जीवों के आकार एवं गुणों में परिवर्तन किया जा सकता है, बल्कि इससे एकदम नए जीव का निर्माण भी संभव है।
- इस तकनीक द्वारा मनुष्य के आनुवंशिक रोगों में क्रांतिकारी परिवर्तन लाया जा सकता है. अगर समस्या उत्पन्न करने वाले जीन का सटीक पता प्राप्त हो जाए तो उसे डीएनए या संभव हो तो जीनपूल से दूर किया जा सकता है।
- आनुवंशिक इंजीनियरिंग का पशुपालन में प्रयोग करके विभिन्न प्रकार की उन्नत किस्में एवं वांछित गुणों को प्राप्त किया जा सकता है और कई रोगों को भी दूर किया जा सकता है।
- दवाओं में इस तकनीक का उपयोग कर डीएनए रिकॉम्बीनैंट टेक्नोलॉजी द्वारा इंसुलिन का उत्पादन किया गया है.

- इस तकनीक का प्रयोग क्लिनिकल निदान में भी होता है जिसका एलाईजा एक उदाहरण है जहां पुनः संयोजन डीएनए तकनीक का उपयोग होता है। इसका उपयोग किसी व्यक्ति में एच आई वी की उपस्थिति का पता लगाने के लिए किया जाता है।
- कुछ वर्षो पहले इंसुलिन हॉर्मोन का निर्माण गायों तथा सूअर से किया जाता था तथा इस इंसुलिन के उपयोग से मधुमेह के रोगियों में एलर्जी देखने को मिलती थी। लेकिन अब कल्चर्ड कोशिकाओं में इंसुलिन का उत्पादन प्रारंभ किया गया है। इसी प्रकार विभिन्न प्रकार की वैक्सीन, इंटरफेरोन, एन्जाइम्स तथा अन्य प्रोटीन का संश्लेषण व्यापक रूप से किया जा रहा है।
- इस तकनीकी के उपयोग से पादप आधारित पदार्थ तथा सूक्ष्मजीवों में रूपान्तरण करके औषधियों, मध्यम पदार्थों *इन्टरमीडिएअसबस्टैंसेस* तथा वैक्सीन का निर्माण कम लागत में किया जा सकता है।
- पुनर्योजी डीएनए तकनीकी का उपयोग औद्योगिक क्षेत्रों में भी किया जाता है। इस तकनीकी द्वारा ऊर्जा फसलों का निर्माण सम्भव हो पाया है। इनका उत्पादन अत्यधिक मात्रा में होता है, जिनको प्रत्यक्ष रूप से ईंधन के रूप में अथवा एल्कोहल व अन्य पदार्थों के उत्पादन हेतु उपयोग में लिया जा सकता है।

उपसंहार

सन् 2000 में क्रेग वेंटर ने मानव जीनोम को सीक्वेंस करने में सफलता हासिल की; पहला सार्वजनिक रूप से उपलब्ध जीनोम स्वयं जेडी वाटसन और क्रेग वेंटर का है। सन् 2010 में, क्रेग वेंटर ने प्रदर्शित किया कि एक मानव निर्मित (सिंथेटिक) जीनोम टेस्ट ट्यूब में रेप्लिकेट हो सकता है। यह टेस्ट ट्यूब में जीवन बनाने की एक नई संभावना हो सकती है, जिसे मानव द्वारा कलम, पेंसिल, कंप्यूटर और बायोइन्फोर्मेटिक विज्ञान का उपयोग करके नियोजित और डिजाइन किया जा सकता है और क्या हम भविष्य में अपनी कल्पना के अनुसार जीवन उत्पन्न कर सकते हैं? जैवप्रौद्योगिकी ने मानवता को आराम के इस स्तर पर ला दिया है; अगला सवाल यह है कि यह हमें कहां ले जाएगा? जैवप्रौद्योगिकी में लाभकारी और विनाशकारी दोनों क्षमताएं हैं। हमें यह तय करना चाहिए कि इस तकनीक का उपयोग मानवता की मदद के लिए किया जाए, न कि इसे नष्ट करने के लिए।

अधिक लाभ के लिए वैज्ञानिक विधि से खेती करें

उत्तम कुमार एवं राकेश कुमार
भाकृअनुप–राष्ट्रीय डेरी अनुसंधान संस्थान, करनाल

हमारे देश की कुल जनसंख्या की लगभग 70 प्रतिशत जनसंख्या कृषि पर आधारित है। पुराने जमाने में खेती को जीवन जीने का एक साधन समझा जाता था लेकिन आज के आधुनिक युग में कृषि को एक व्यवसाय के रूप में जाना जाता है। आज का किसान खेती को अपने तथा अपने परिवार के पालन पोषण के लिए ही नहीं करता बल्कि एक ऐसे व्यवसाय के रूप में करता है जिससे कि उसका रहन–सहन ऊंचा हो एवं अधिक धन कमाया जा सके। खेती से अधिक धन कमाने के लिए दो बातों का विशेष महत्व है एक तो खेती में लागत कम करें। दूसरे फसलों से अधिकतम पैदावार ली जा सके। अनेक अनुसंधानों के बाद यह परिणाम सामने आए हैं कि वैज्ञानिक तरीके से खेती करके 20 से 25 प्रतिशत कम लागत पर भी अधिकतम उपज प्राप्त की जा सकती है इसके लिए कुछ मुख्य बातों पर विशेष ध्यान देने की जरूरत है जो निम्न है;

खेत की तैयारी

आज के युग में यह साबित हो गया है कि किसी भी फसल के लिए बहुत ज्यादा जुताई करने की आवश्यकता नहीं है फसल को ध्यान में रखकर उचित गहराई तक 2 या 3 जुताई करके अधिकतम पैदावार ली जा सकती है तथा बार–बार जुताई करने के खर्च को कम किया जा सकता है ऐसा करने के लिए आधुनिक कृषि यंत्रों का प्रयोग करना जरूरी है जैसे–जीरो टिल मशीन, हैप्पी सीडर, रोटावेटर, रोटोड्रिल आदि।

उन्नतशील बीजों की बुवाई

किसी भी फसल की अच्छी पैदावार के लिए बीजों का उन्नत किस्म का होना सबसे महत्वपूर्ण है। यदि बीज खराब है उसका जमाव अच्छा नहीं है तो भले ही खेत भी अच्छा हो और वैज्ञानिक तरीके से आधुनिक कृषि यंत्रों का प्रयोग करके खेती की गई हो तब भी सारी मेहनत बेकार हो जाती है। अतः बीज हमेशा प्रमाणित संस्था से ही खरीदना चाहिए और रसीद भी जरूर लेनी चाहिए। केवल उन्हीं किस्मों का बीज बोना चाहिए जिनकी उस क्षेत्र में बुवाई के लिए सिफारिश की गई हो तथा जिनमें रोग व बीमारियां कम लगती हो ।

बीज उपचार

हम सभी जानते हैं कि उपचार से सुरक्षा बेहतर है और इसका तात्पर्य है कि यदि हम पहले से ही सुरक्षा के उपायों को अपनाएं तो उपचार कराने की जरूरत नहीं पड़ेगी वहीं बात बीजों पर भी लागू होती है। फसलों में बीमारियां मुख्यतः दो कारको से पैदा होती है;

(I) बीज द्वारा

(II) भूमि द्वारा

यदि हम बीजों को उपचारित करके बोये तो हमे बीमारियों का सामना नहीं करना पड़ेगा गेहूँ की फसल को कंडुवा रोग से मुक्त रखने के लिए हमें बीज को मई जून के महीने में एक डेढ़ घंटा साफ पानी में भिगोने के पश्चात बीज को पानी से निकालकर 6 से 7 घंटे तक पक्के फर्श पर तेज धुप में चाहिए इसके अलावा फफूंदी द्वारा लगने वाले रोगों से बचाव के लिए बीजों को फफूंदीनाशको जैसे विटावेक्स, बावस्टिन, रेक्सिल आदि किसी एक दवा से उपचारित करके बोना चाहिए। ऐसे ही गर्मियो के महीने में खेतो की गहरी जुताई करके कुछ समय के लिए खुला छोड़ देना चाहिए साथ ही साथ *ट्राईकोडर्मा* से भूमि का शोधन करना चाहिए।

बुवाई का समय

समय पर बुवाई ना करने से किसी भी फसल की उपज में 30 से 40 प्रतिशत तक की कमी आ जाती है। अतः अच्छी उपज लेने के लिए सभी फसलों की प्रजातियों को उसके लिए अनुमोदित किए गए समय पर ही बोना चाहिए। बुवाई जल्दी या देर से करने पर फसल की वृद्धि के लिए उचित वातावरण नहीं मिल पाता क्योंकि हर फसल की अच्छी वृद्धि विकास एवं पैदावार के लिए नमी तापमान एवं प्रकाश अवधि की जरूरत होती है। बुवाई करते समय भूमि में नमी के साथ साथ ही बीज की मात्रा, बीज की गहराई, लाईन से लाईन की दूरी तथा पौधे से पौधे की दूरी तथा प्रति वर्ग मीटर पौधों की संख्या पर विशेष ध्यान देना चाहिए। ऐसा करने से पौधों को उचित मात्रा में खाद पानी एवं धूप मिलती रहती है। जिससे अधिकतम उपज प्राप्त होती है।

खाद एवं उर्वरक

खाद एवं उर्वरक के ऊपर अधिक खर्चे से बचने के लिए हमेशा संतुलित मात्रा में ही उर्वरकों का प्रयोग करना चाहिए। ऐसा करने के लिए हमें मिट्टी की जांच अवश्य करानी चाहिए। फसल उत्पादन में उर्वरकों का लगभग 40 प्रतिशत योगदान होता है। अतः उर्वरकों को उचित मात्रा में उचित समय पर ही देना चाहिए अन्यथा लागत बेकार हो जाती है। नाइट्रोजन की आधी मात्रा तथा फास्फोरस पोटाश एवं जिंक की पूरी मात्रा बुवाई के समय ही डालनी चाहिए। नाइट्रोजन की शेष मात्रा पहली सिंचाई के बाद डाल देनी चाहिए।

सिंचाई

फसल में उसकी आवश्यकता के अनुसार ही सिंचाई करनी चाहिए अंधाधुंध सिंचाई करने से पानी व ईंधन की तो अत्यधिक हानी होती ही है साथ ही कभी–कभी फसल के उत्पादन में भी भारी गिरावट आ जाती है। अनुसंधानों के द्वारा यह बात स्पष्ट हो चुकी है, कि विभिन्न फसलों की किसी समय विशेष पर ही सिंचाई की अधिक आवश्यकता होती है। उस समय पर सिंचाई जरूर करनी चाहिए। जैसे गेहूँ में कल्ले निकलते समय एवं बालियों में दाना बनते समय तथा दलहनी फसलों में फली आने से पहले सिंचाई करना अत्यधिक लाभदायक होता है।

खरपतवार नियंत्रण

समय पर खरपतवार नियंत्रण बहुत आवश्यक है अन्यथा उपज में लगभग 30 से 60 प्रतिशत तक की कमी आ जाती है। खरपतवार पोषक तत्व, पानी, हवा एवं प्रकाश के लिए फसलों के साथ मुकाबला करते हैं। पोषक तत्वों को अधिक मात्रा में लेकर फसलों को भारी नुकसान पहुंचाते हैं। खुरपी द्वारा खरपतवारों को निकालना अच्छा रहता है। इससे फसल के पौधों को वायु संचार मिलता है। लेकिन यदि खेतीहर मजदूरों की कमी हो या यह अधिक खर्चीला हो तो रासायनिक खरपतवारनाशियों का उपयोग करना चाहिए। समय निकलने पर उनका छिड़काव करने से कोई लाभ नहीं होता अपितु धन की बर्बादी ही होती है। अलग–अलग फसलों में विभिन्न प्रकार के खरपतवारों के लिए अलग–अलग दवाईयों (खरपतवारनाशियों) की सिफारिश की गई है ।

कीट एवं रोग नियंत्रण

कीटों एवं रोगों से कारण भी अनेकों बार उपज में 70 प्रतिशत तक की गिरावट आ जाती है। फसलों को कीड़ों एवं रोगों से बचाने के लिए नालियों, मेड़ों एवं खेतों के रास्तों को साफ रखना चाहिए। क्योंकि बहुत से कीट एवं रोग मेड़ों एवं नालियों पर खड़े खरपतवारों पर ही पनपते हैं। बीज का चुनाव करते समय ध्यान रखें कि वह रोगों के प्रति सहनशील हो तथा बीज हमेशा उपचारित करके ही बोना चाहिए। ऐसा करने से किसान कम लागत में अधिक उपज प्राप्त कर सकते हैं।

समय पर कटाई एवं गहाई

फसल पक जाने पर सही समय पर ही काट लेनी चाहिए फसल पकने के बाद अधिक समय तक खेत में खड़ी रहने से झड़ने एवं गिरने का खतरा रहता है जिससे पैदावार में कमी आ जाती है।

निष्कर्ष

अतः किसानों को सलाह दी जाती है कि सही समय पर फसल की आवश्यकतानुसार सब कार्य करें तथा जैविक पदार्थों को मिट्टी में मिलाये व पैसे की बर्बादी ना करें जब फसल को जरूरत है तभी उसकी आवश्यकतानुसार उसमें लागत लगाएं, उपरोक्त बिन्दुओं का पालन करने अर्थात् वैज्ञानिक विधि से खेती करने पर उचित लागत में अधिक लाभ कमाया जा सकता है।

स्थायी कृषि के लिए आवश्यकः सिंचाई के पानी का परीक्षण और सिंचाई के लिए खराब गुणवत्ता वाले पानी का प्रबंधन

किरण खोखर, रूही एवं अंकुश कम्बोज
कृषि विज्ञान केंद्र, करनाल
चौधरी चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

जल प्रकृति की अमूल्य देन है। जीवित रहने के लिए जल अति आवश्यक है। जल प्रत्येक जीव की आवश्यकता है। मनुष्य ही नहीं पेड़–पौधे, पशु–पक्षी भी जल के बिना जीवित नहीं रह पाते। जल के बिना तो पूरी वनस्पति ही समाप्त हो जाएगी। कृषि विकास किसी भी देश की अर्थव्यवस्था का मेरुदण्ड है। सघन फसल उत्पादन में पानी एक अत्यंत ही महत्वपूर्ण घटक है, जिसका कोई विकल्प नहीं है।

सिंचाई के पानी की गुणवत्ता फसल की सफलता को बहुत प्रभावित कर सकती है। सिंचाई के लिए जल स्रोत की उपयुक्तता का आकलन करने के लिए सिंचाई के पानी का परीक्षण करना महत्वपूर्ण है। प्रायः किसान जमीन में उपलब्ध पोषक तत्त्वों को जानने के लिए अपने खेत की मिट्टी का परीक्षण तो कराते हैं परंतु पानी का परीक्षण कराने की जरूरत महसूस नहीं करते। इसका दुष्परिणाम यह होता है कि वे पानी की गुणवत्ता के आधार पर फसलों का चयन नहीं कर पाते और फसल को पर्याप्त मात्रा में उर्वरक देने के बाद भी उन्हें अच्छी पैदावार नहीं मिलती। अतः किसान फसल की बीजाई व बाग लगाने से पहले खेत की मिट्टी का परीक्षण कराने के साथ ही पानी का स्वास्थ्य कार्ड भी बनवायें व इसके आधार पर उपयुक्त फसलें बोयें।

सिंचाई जल का परीक्षण

सिंचाई में प्रयोग किये जाने वाले पानी का परीक्षण भी बहुत महत्वपूर्ण होता है क्योंकि यदि हमारा पानी लवणीय या क्षारीय होगा तो अवश्य ही उस पानी से सिंचित होने वाली हमारी बहुमूल्य मिट्टी भी अंततः लवणीय या क्षारीय बन जाएगी। पानी के परीक्षण द्वारा पानी की गुणवत्ता, पीएच मान, विद्युत चालकता, पानी की कठोरता व पानी के लवणीय/क्षारीय होने की जानकारी मिल जाती है जिसके आधार पर पानी का प्रयोग किया जा सकता है।

सिंचाई जल का नमूना लेने की विधि

- टयूबवेल को कम से कम 2–3 घंटे चलाने के बाद आधा लीटर पानी का नमूना लेना चाहिए।
- पानी के नमूना को साफ ग्लास या प्लास्टिक की बोतल में इकठ्ठा करें।
- बोतल को उसी पानी से अच्छी तरह से 3–4 बार धोलें।
- बोतल के ऊपर अपना नाम, पूरा पता, नमूने की पहचान व कोई समस्या अगर हो तो साफ–साफ लिखें।
- बोतल को अच्छी तरह से बंद कर उसे जल्द से जल्द प्रयोगशाला में भेजें और पानी की रिपोर्ट के आधार पर फसलों का चयन करें।
- किसान पानी का परीक्षण चौधरी चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय की मृदा एवं जल परीक्षण प्रयोगशालाओं में करवा सकते हैं।
- अपने ट्यूबवेल के पानी की जांच वर्ष में 2 बार (रबी और खरीफ) में अवश्य करवाए।

पानी का नमूना लेते समय ध्यान रखने योग्य सुझाव

- किसी भी दवाई वाली बोतल में पानी का नमूना न लें।
- बोतल को धोने के लिए साबुन या डिटर्जेंट का प्रयोग नहीं करना चाहिए।
- बोतल कांच या प्लास्टिक की हो किसी धातु की न हो।
- मीठा पानी भी जमीन तथा फसलों के लिए हानिकारक हो सकता है। अतः प्रत्येक बोर की जाँच करवाकर तथा सिफारिश पर ही पक्का करना चाहिए।

अतः पानी की गुणवत्ता के आधार पर उपयुक्त फसलों का चयन करके अधिक उत्पादन लिया जा सकता है।

तालिका 1. विद्युत चालकता के आधार पर पानी का वर्गीकरण

विद्युत चालकता (मि.म्होज सेमी.)	पानी की गुणवत्ता	उपयुक्त फसलें
1.5 से कम	साफ, अच्छी गुणवत्ता	सभी फसलें
1.5 – 3.0	हल्का लवणीय, अच्छा	चावल, गेहूँ, ज्वार, मक्का, आलू, प्याज, इत्यादि
3.0 –10.0	खारा, मध्यम, लवणीय	गेहूँ, गाजर, मटर, मक्का इत्यादि
5.0 –10.0	लवणीय, खराब, कम गुणवत्ता	जौ, चुकंदर, कपास, बेर, गन्ना, पालक इत्यादि
10.00 –15.00	अधिक लवणीय, बहुत खराब	कोई फसल नहीं

खारे पानी का सिंचाई में ऐसें करे उपयोग

कृषि फसल उत्पादन सिंचाई पर निर्भर करता है। पर्याप्त ताजे पानी की कमी के कारण दुनिया के कई शुष्क और अर्ध–शुष्क क्षेत्रों में निम्न गुणवत्ता वाले (खारा) पानी का उपयोग गति पकड़ रहा है। खारे पानी से जमीन व फसल पर कम से कम प्रभाव पड़े इसके लिए हम निम्न क्रियाएं अपना सकतें हैं;

1) वर्षा के पानी का उचित उपयोग

खारे पानी के उपयोग से पड़ने वाले दुष्प्रभाव को वर्षा के पानी के समुचित उपयोग से कम किया जा सकता है। इस पानी को खेत से बाहर न जाने दें। वर्षा ऋतु से पहले जमीन को समतल कर जुताई करें व छोटी–छोटी क्यारियों में बांट कर डोलबंदी करें, जिससे वर्षा का पानी सब जगह बराबर जमीन में रिस कर नीचे चला जाए। यह पानी अपने साथ लवण बहाकर नीचे ले जाता है व ऊपर की मृदा में लवण कम हो जाते हैं।

2) सिंचाई के तरीके

खारे पानी से लगातार सिंचाई करने से, हर सिंचाई के बाद नमक की कुछ मात्रा मिट्टी में इकट्ठी हो जाती है। यदि साथ–साथ मिट्टी में जमा होने वाले नमक का निक्षालन नहीं हो तो धीरे–धीरे जड़ मंडल में इतना नमक इकट्ठा हो जाता है कि उपज घटने लगती है। इसके लिए निम्न सुझाव अपनाएं तो जड़ मंडल में अतिरिक्त नमक इकट्ठा नहीं होता।

- जिस वर्ष सामान्य से कम वर्षा हो (400 मि.मी. से कम) उस वर्ष अगली फसल की बुआई से पहले खारे पानी से भारी सिंचाई करें ताकि लवण जड़ मंडल से नीचे चले जाएं।
- जहाँ बहाव या फ्लडिंग विधि से सिंचाई करें वहां जमीन को समतल रखें जिससे कम पानी में अच्छी सिंचाई हो सके।
- जहाँ तक हो सके सूखे खेत में बीजाई करें एवं बीजाई के बाद सिंचाई करें व अंकुरण एवं पौधों को अच्छी तरह जमने तक ऊपरी सतह पर पर्याप्त मात्रा में नमी बनाए रखें।
- नाली विधि से सिंचाई हेतु डोल पूर्व से पश्चिम दिशा में बनानी चाहिए व बीज या पौधे उत्तर दिशा में लगाने चाहिए।
- यह विधि उस समय अपनाएं जब सभी नालियों में पानी लगे।
- फसलों में खारे पानी की बूंद–बूंद सिंचाई पद्धति से सिंचाई करने से फसल पर लवणों का असर कम होता है।
- लवणीय–क्षारीय पानी का फब्बारा विधि से सिंचाई करने पर पत्तियों पर दुष्प्रभाव होता है। इस दुष्प्रभाव को कम करने के लिए फब्बारा से रात को सिंचाई करें ।

3) मिश्रित पानी का उपयोग

- यदि एक ही स्थान पर अच्छा व खारा पानी उपलब्ध हो तो उसको मिला कर प्रयोग करें तथा उनको इस अनुपात में मिलाएं कि मिश्रित पानी की विद्युत चालकता निश्चित सीमा से अधिक न हो। इस पानी को चक्रीय विधि से अच्छा व खारा पानी बारी–बारी से भी दिया जा सकता है। अच्छे पानी को फसलों की बढ़वार की प्रारंभिक अवस्थाओं (बीज का अंकुरण व कल्ले फूटना आदि) में दिया जाए व बाद की अवस्थाओं में अगर खारा पानी भी दिया जाए तो फसल उत्पादन में बुरा प्रभाव अधिक नहीं पड़ेगा।

4) अन्य सस्य क्रियाएं

- खेत में गोबर की सड़ी खाद, कम्पोस्ट आदि का भरपूर प्रयोग करें।
- पौधे से पौधे एवं लाईन से लाईन की दूरी कुछ कम कर दें व बीज की मात्रा भी 20–25 प्रतिशत बढ़ा देनी चाहिए।
- फसलों में निराई–गुड़ाई करते रहना चाहिए ।
- अगर हो सके तो जमीन की सतह पर मल्च का प्रयोग करें। ऐसा करने से पानी का वाष्पीकरण कम हो जायेगा और मृदा की सतह पर लवण इकट्ठे नहीं होंगे।
- लवणीय पानी में गोबर की खाद का प्रयोग करके मृदा सरंचना को ठीक रखा जा सकता है।
- क्षारीय पानी का प्रयोग जिप्सम के प्रयोग के साथ किया जा सकता है।
- खारे पानी में नाइट्रेट की मात्रा अधिक होने के कारण नाइट्रोजन का प्रयोग कम किया जा सकता है।

5) फसलों का चयन

कम पानी चाहने वाली तथा लवण व क्षार सहिष्णु फसलों की उन्नत किस्में लगाएं।

6) जिप्सम का उपयोग

क्षारीय पानी की क्षारीयता कम करने के लिए जिप्सम के बेड़ बना कर पानी को उस पर से गुजरने दें या पानी की नालियों में जिप्सम के कट्टे रखें, जिससे थोड़ा–थोड़ा जिप्सम पानी में घुलता रहे व पानी ठीक हो जाए। अन्यथा पानी की क्षारीयता की मात्रा के अनुसार जमीन में जिप्सम डालें।

सिंचाई जल की सामान्य समस्याएं एवं उनके निदान

1) यदि पानी में घुलनशील लवणों की मात्रा (विद्युत चालकता) अधिक हो।

- ऐसे जल का प्रयोग सिंचाई के रूप में करें।
- यदि अधिक मात्रा में लवण हो तब प्रयोग न करें।
- यदि कैल्शियम–मैग्निशियम की प्रचुर मात्रा जल में हो तो

कुछ हद तक रेतीली दोमट मिट्टी में प्रयोग कर सकते है।

- यदि अन्य कोई अच्छी गुणवत्ता वाला सिंचाई जल उपलब्ध हो तो दोनों को मिलाकर प्रयोग करना चाहिए।

2) यदि शेष सोडियम कार्बोनेट की मात्रा ज्यादा हो

- ऐसे जल का प्रयोग या तो करना ही नहीं चाहिए या खेत में जिप्सम का प्रयोग साथ–साथ करना चाहिए।
- यदि क्षारीय मिट्टी के लिए ऐसे जल का प्रयोग हो तो जिप्सम की कुछ अधिक मात्रा देनी चाहिए।

3) यदि सोडियम अधिशोषण अनुपात अधिक हो

यदि लवणीयता के साथ–साथ सोडियम अधिशोषण अनुपात अधिक हो तो ऐसे जल का प्रयोग किसी अन्य अच्छी गुणवत्ता वाले जल के साथ मिलाकर करना चाहिए।

4) यदि सभी समस्याएं एक साथ हो

- यदि उपरोक्त तीनों समस्याएं एक साथ हो तो वैज्ञानिक परामर्श लेना चाहिए।

उत्तराखंड में घटते जल स्रोतों का पर्वतीय कृषि पर प्रभाव

इन्दु रावत, राजेश बिश्नोई, सुरेश कुमार, के आर जोशी, अम्बरीश कुमार एवं बांके बिहारी
भाकृअनुप– भारतीय मृदा एवं जल संरक्षण संस्थान, कौलागढ़ रोड, देहरादून

प्रस्तावना

आज देश का प्रमुख मुद्दा है, प्राकृतिक संसाधन जैसे जल स्रोतों का संरक्षण एवं रख–रखाव क्योंकि देश के विभिन्न भागों में पानी की समस्या हो रही है। आधुनिकता की रफ्तार से पानी के उपयोग पर काफी ज्यादा फर्क पड़ा है। जल स्रोतों के घटते स्तर, सरकारी एवं क्षेत्रीय संगठनों के लिए चिंता का विषय बना हुआ है। प्राकृतिक स्रोतों के घटते स्तर से देश में पारिस्थितिक प्रणाली सेवाओं पर दुषप्रभाव पड़ा है। पानी की कमी के अतिरिक्त, सुरक्षित एवं पीने लायक पानी की आपूर्ति भी एक बड़ी चुनौती है।

जंगलों की कटाई एवं भूमि अवनतिकरण विश्व के वन का 8.5 प्रतिशत भाग प्रभावित करता है, हालांकि पृथ्वी की सतह का 30 प्रतिशत भाग पहले से ही कट चुका है। पानी अति महत्वपूर्ण प्राकृतिक स्रोत है और यह दिन प्रतिदिन घटते जा रहे हैं क्योंकि इनके उचित प्रबंधन का अभाव है। विशेषतः इन स्रोतों को वर्षा काल में रख–रखाव की ज्यादा जरूरत है क्योंकि इस समय पहाड़ों से आने वाला मलबा स्रोतों को ढक देता है। प्राकृतिक स्रोतों में कमी के प्रत्यक्ष कारक जैसे वन कटाई एवं बदलाव के परोक्ष कारक जैसे जनसांख्यिकी (डेमोग्राफी), आर्थिक, सामाजिक, राजनैतिक एवं प्रौद्योगिकी कारकों से होती है। उत्तराखंड के पहाडों में, महिलाएं ही मुख्य स्तंभ है जिसके चारों ओर संपूर्ण कृषि घूमती है इसलिए उन्हें विभिन्न कृषि कार्यों का संपूर्ण ज्ञान होता है। सामान्यतः महिलाओं को पर्यावरण, प्राकृतिक संसाधन एवं इनके उपयोग के बारे में गहरी जानकारी होती है। महिलाएं हमेशा घरेलु एवं कृषि कार्यों में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं इसलिए पर्यावरण में प्रतिकूल बदलावों का उन पर सबसे अधिक प्रभाव पड़ता है। वन कटाव, प्राकृतिक जल स्रोतों के सूखने के फलस्वरूप, भूमिगत जल के स्तर में काफी कमी आयी है जिससे महिलाओं के कार्यभार में बढ़ोत्तरी हुई है।

कार्य विधि

यह अनुसंधान कार्य उत्तराखण्ड के मध्य हिमालयी क्षेत्रों में घरेलु एवं सिंचाई उद्देश्यों हेतु प्राकृतिक जल स्रोतों की उपलब्धता की जानकारी हेतु किया गया। इसमें एक प्रश्नावली के माध्यम से उत्तरदाताओं से जानकारी प्राप्त की गयी थी। इसके अन्तर्गत देहरादून जिले से कालसी ब्लॉक के चार गाँवों का चुनाव किया गया। प्रत्येक गाँव से 25 उत्तरदाताओं को मिलाकर कुल 100 उत्तरदाताओं को चुना गया। उनसे गत 5 वर्षों में सूखे जल स्रोतों की संख्या, उनके सूखने के कारण, स्रोतों के सूखने से ग्रामीण लोगों की दिनचर्या व आजीविका पर प्रभाव, जल की कमी को दूर करने के उपाय, गाँव के विकास में सरकार की भूमिका आदि पर जानकारी एकत्रित की गयी।

परिणाम

परंपरागत जल स्रोतों के अन्तर्गत, 93 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने बताया कि उनके गांव में जल का स्रोत चश्मा/नाला है। लगभग 51 प्रतिशत लोगों के पास गधेरा/स्ट्रीम है। लगभग 6 प्रतिशत लोगों ने बताया कि उनके लिए स्प्रिंग/धारा ही जल का प्रमुख स्रोत है। महिलाओं के अनुसार जल की उपलब्धता, वनों/जंगलों की स्थिति पर निर्भर करती है। इसलिए वनों की स्थिति को सुधार कर क्षेत्र विशेष में जल की कमी की समस्या को हल किया जा सकता है। जहां तक नये जल स्रोतों की बात है लगभग सभी उत्तरदाताओं द्वारा बताया गया कि गांव में पानी का टैंक उपलब्ध है एवं 67 प्रतिशत लोगों के पास पाइपलाईन की सुविधा भी है। इन गांवों में हैण्डपम्प एवं तालाब नहीं हैं।

प्राकृतिक जल स्रोतों के सूखने के कारण

शोध के अन्तर्गत सभी गांवों में 2–3 स्रोत सूख चुके हैं। गांव की महिलाओं ने चर्चा के माध्यम से स्रोतों के सूखने के कई कारण बताये। भूस्खलन जल स्रोतों के सूखने का मुख्य कारण पाया गया

तालिका 1: गाँवों में जल स्रोतों की स्थिति

प्राकृतिक जल स्रोत	संख्या	प्रतिशत	उपयोग
नाला	93	93%	पीने हेतु/घरेलु उपयोग
स्ट्रीम	51	51%	पीने हेतु/घरेलु उपयोग
स्प्रिंग	6	06%	पीने हेतु/घरेलु उपयोग
आधुनिक जल स्रोत			
पानी का टैंक	98	98%	घरेलु उपयोग
पाइप लाइन	67	67%	पीने हेतु
हैण्ड पम्प	0	–	–
तालाब	0	–	–

(95%)। क्योंकि स्प्रिंग/स्ट्रीम भूस्खलन के बाद मलबे से ढक जाती है। कुछ लोगों ने (88%) गर्म मौसम एवं कम वर्षा (76%) एवं वन में वृक्षों की कमी (51%) को कारण बताया। बिष्ट (2010) के अनुसार पहाड़ी क्षेत्रों में प्राकृतिक जल स्रोत जैसे धारा/नौला/स्ट्रीम खराब स्थिति में हैं और उनमें से कई सूख चुके हैं। चूंकि वर्षा जल द्वारा ये प्राकृतिक स्रोत पुनः रिचार्ज होते हैं और वर्षा दिनों में कमी होने पर स्रोतों के पुनर्भरण पर खराब असर पड़ता है (भट्ट 2010)।

प्राकृतिक जल स्रोतों के सूखने का प्रभाव

ऊपर लिखे कारणों से प्रत्येक वर्ष प्राकृतिक जल स्रोत सूख रहे हैं। ये स्रोत न केवल ग्रामीण लोगों की आजीविका का आधार है बल्कि वन पारिस्थितिकी प्रणाली को भी बढ़ावा देते हैं। इनके सूखने से कई दुष्प्रभाव आम जन जीवन एवं वन संरक्षण की दिशा में पड़े हैं। तालिका 3 से यह स्पष्ट है कि सभी उत्तरदाताओं (100%) ने बताया कि इन स्रोतों के सूखने से सिंचाई के लिए पानी नहीं मिलता है। इसके अलावा 88% लोगों ने बताया कि पहले की अपेक्षा अब पानी भरने में ज्यादा समय लगता है। जबकि यह ज्यादा लगा हुआ समय कृषि या अन्य कुछ उत्पादकता वाले कार्यों में उपयोग किया जा सकता है। लगभग 84% लोगों ने बताया कि जल स्रोतों के सूखने से मिट्टी में नमी की कमी हो गयी है। करीब 76% लोगों ने बताया कि जल स्रोतों के सूखने से उनके घरेलू कार्यों में बाधा आती है।

पानी की कमी को दूर करने के तरीके

पानी की समस्या को कम करने के लिए, ग्रामीण लोगों द्वारा कई तरीके सुझाये गये। ज्यादातर लोगों ने बताया कि वृक्षारोपण के माध्यम से पानी की समस्या को हल किया जा सकता है।

सरकार द्वारा ग्रामीण विकास

जल स्रोतों के सूखने से गांव के विकास में अवरोध आता है क्योंकि जल के बिना तो जीवन की कल्पना नहीं की जा सकती है। जल स्रोतों को पुनर्जीवित करके सरकार गाँव के विकास को बढ़ावा दे सकती है। लगभग 87 प्रतिशत लोगों द्वारा यह बताया गया कि गाँवों में स्वयं सहायता समूह बने हुए हैं लेकिन उनके द्वारा कोई आय बढ़ाने वाला कार्य नहीं किया जाता है। यह समूह केवल धन एकत्र करते हैं और किसी सदस्य को जरूरत पड़ने पर उसे समूह द्वारा उधार दिया जाता है। जहाँ तक रोजगार अवसरों की बात है लगभग 76 प्रतिशत लोगों ने बताया कि उन्हें प्रशिक्षण द्वारा रोजगार के अवसर दिये गये हैं लेकिन काफी कम लोगों ने प्रशिक्षण से प्राप्त ज्ञान को अपने जीवन में अपनाया।

निष्कर्ष

इस अनुसंधान के माध्यम से यह निष्कर्ष निकलता है कि प्राकृतिक जल स्रोतों के अन्तर्गत नाला एवं झरना सबसे ज्यादा गाँवों में पाये गये। आधुनिक जल स्रोतों में पानी का टैंक एवं पाइपलाईन भी गाँव में उपलब्ध हैं। जल के प्राकृतिक स्रोत धीरे–धीरे सूख रहे हैं। हर गांव में 6–7 स्रोतों में से लगभग 2–3 स्रोत सूख चुके हैं, जो कि चिंता का एक विषय है। स्रोतों के सूखने के मुख्य कारण भू–स्खलन, गर्म मौसम एवं कम वर्षा हैं। इसके दुष्प्रभाव यह है कि कृषि में सिंचाई हेतु पानी उपलब्ध नहीं होता है। इसके अलावा लोगों को स्रोत से पानी भरने में ज्यादा समय लगता है। जल की समुचित आपूर्ति हेतु वृक्षारोपण ही एक विकल्प है।

तालिका 2: प्राकृतिक जल स्रोतों के सूखने के कारण

क्र.सं.	कारण	संख्या/प्रतिशत
1.	भूस्खलन	95
2.	गर्म मौसम	88
3.	वन वृक्षों में कमी	51
4.	कम वर्षा	76

तालिका 3: गाँव के विकास में सरकार की भूमिका

क्र.सं.	सरकारी सहायता	संख्या/प्रतिशत
1	कृषि एवं पशु संबधित सुविधाएं	30
2	ऋण संबंधित सहायता	30
3	स्वयं सहायता समूह का गठन	87
4	प्रशिक्षण के द्वारा रोजगार के अवसर	76

तालिका 4: पानी की कमी को दूर करने के तरीके

क्र.सं.	प्रभाव	संख्या/प्रतिशत
1	चेक डैम	22
2	गुल/टैंक/नौला रिचार्ज/तालाब	26
3	खन्तियाँ (ट्रेन्च)/रिचार्ज गड्ढा	33
4	पौधारोपण	91
5	कच्चा तालाब	36

तालिका 5: प्राकृतिक जल स्रोतों के सूखने के प्रभाव

क्र.सं.	प्रभाव	संख्या/प्रतिशत
1	मृदा में कम नमी	84
2	पानी की कमी	65
3	पानी भरने में ज्यादा समय	88
4	सिंचाई के लिए पानी की अनुपलब्धता	100
5	घरेलु कार्यों में बाधा	76

डेरी प्रसंस्करण द्वारा मूल्य संवर्धन

चित्रनायक, प्रशांत मिंज, अमिता वैराट, खुशबू कुमारी, प्रियंका एवं हिमा जॉन
भाकृअनुप–राष्ट्रीय डेरी अनुसंधान संस्थान, करनाल

दूध को उपयोग करने योग्य व उत्तम गुणवत्ता के साथ कई दिनों तक संरक्षित करने हेतु ठंडा करने जैसी तकनीकों तथा किण्वन तकनीक का उपयोग किया जा सकता है, जिससे कच्चे दूध की गुणवत्ता को प्रभावित करने की सबसे अधिक संभावना है, क्योंकि दूध एक बहुत ही मूल्यवान व पौष्टिक भोजन है जिसकी शेल्फ लाइफ अल्प होती है और इसे सावधानीपूर्वक संभालने की आवश्यकता होती है। पाश्चूराइजेशन ऊष्मीय उपचार की बहुत ही उत्तम प्रक्रिया है जो दूध को उत्तम स्वाद व गुणवत्ता के साथ संरक्षित करने हेतु उपयुक्त बनाती है और संभावित रोगजनक सूक्ष्मजीवों की संख्या को उस स्तर तक कम कर देती है, जहां वे एक महत्वपूर्ण स्वास्थ्य खतरे का प्रतिनिधित्व नहीं करते हैं। मक्खन, पनीर, चीज़, घी जैसे उत्पादों में लंबे शेल्फ लाइफ के साथ–साथ संवर्धित मूल्य, केंद्रित और आसानी से परिवहनीय डेयरी उत्पादों में बदलने के लिए दूध को आगे संसाधित किया जा सकता है। दूध प्रसंस्करण के निम्नलिखित फायदे हैं: इससे कृषकों को नियमित आय प्राप्त होती है, पोषण में सुधार होता है साथ ही साथ प्रसंस्करित दूध उत्पादों को बेचना ताजा दूध बेचने की तुलना में अधिक लाभदायक है। प्रसंस्करण पद्धति की तकनीक में निरंतर सुधार व विकास से नए नए रोजगार की संभावनाएं उत्पन्न होती हैं एवं दुग्ध व अन्य खाद्य उत्पादों की गुणवत्ता और सुरक्षा में भी सुधार होता है।

पाश्चूराइजेशन पद्धति द्वारा दुग्ध प्रसंस्करण

गाय, भैंस, ऊंट व मिश्रित दुग्ध को विभिन्न श्रोतों से एकत्र कर सर्वप्रथम बीएमसी (बल्क मिल्क कूलर) में रखा जाता है, जिसमे तापक्रम 4 डिग्री के लगभग नियत रखी जाती है ताकि माइक्रोबियल गुणन की गति न्यूनतम रहे। तत्पश्चात इसे डबल जैकेटेड टैंकर द्वारा दूध प्रसंस्करण सयंत्र लाया जाता है। दूध प्रसंस्करण संयंत्र में ऊष्मीय विधि द्वारा दूध के प्रसंस्करण में पाश्चराइजेशन पद्धति पहली प्रक्रिया है। पाश्चरीकरण एक हल्का ऊष्मीय उपचार प्रक्रिया है जिसका उपयोग विभिन्न प्रकार के खाद्य उत्पादों की एक विस्तृत श्रृंखला पर किया जाता है। पाश्चराइजेशन प्रक्रिया फ्रांसीसी वैज्ञानिक लुई पाश्चर द्वारा सन 1860 के दौरान विकसित की गई थी। पाश्चराइजेशन उत्तम तकनीक वाली एक ऊष्मीय उपचार प्रक्रिया है जो दुग्ध, कुछ खाद्य पदार्थों और पेय पदार्थों में रोगजनक सूक्ष्मजीवों को नष्ट कर देने की क्षमता के कारण पूरे विश्व में प्रचलित है। इसका नाम फ्रांसीसी वैज्ञानिक लुई पाश्चर के नाम पर रखा गया है, जिन्होंने 1860 के दशक में दिखाया था कि कुछ मिनटों के लिए पेय पदार्थों को लगभग 57 डिग्री सेल्सियस (135 डिग्री फारेनहाइट) तक गर्म करके शराब और बियर के असामान्य किण्वन को रोका जा सकता है। इसे एक ख़ास तापमान पर और नियत समय तक दूध को गर्म करने की प्रक्रिया के रूप में वर्णित किया गया है जिसके द्वारा उनमें उपस्थित किसी भी रोगजनकों को नष्ट करने की आवश्यकता होती है जो दुग्ध व दुग्ध उत्पादों में मौजूद हो सकते हैं और साथ ही उनके संरचना, स्वाद और पोषक मूल्य में न्यूनतम बदलाव लाते हैं। पाश्चराइजेशन के दो प्राथमिक उद्देश्य रोगजनक बैक्टीरिया को दूर करना व खाद्य पदार्थों की शेल्फ लाइफ में विस्तार करना है। पाश्चराइजेशन का मतलब है कि दूध व दूध उत्पाद के प्रत्येक कण को एक विशिष्ट तापमान पर निर्दिष्ट अवधि, उदाहरणार्थः निम्न तापक्रम अधिक समय पद्धति में 63 डिग्री सेल्सियस पर 30 मिनट तक, अल्ट्रा हाई तापक्रम विधि में 135 से 140 डिग्री सेल्सियस पर 1 से 3 सेकेण्ड तक दुग्ध अथवा दुग्ध उत्पादों ऊष्मीय विधि द्वारा उपचारित करना होता है। इससे दुग्ध में उपस्थित मुख्यतः सभी प्रकार के हानिकारक बैक्टीरिया, रोगजन्य विषाणु और अन्य सूक्ष्मजीव नष्ट हो जाते हैं जो उत्पादों के साथ साथ उपभोक्ताओं के स्वास्थ्य को भी प्रभावित कर सकते हैं। यह विकसित तकनीक दूध को सुरक्षित बनाती है और साथ ही साथ इसकी गुणवत्ता को भी बेहतर बनाती है एवं इस प्रकार उपचारित दूध और दुग्ध उत्पादों को खराब हुए बिना लंबे समय तक संरक्षित व सुरक्षित रखा जा सकता है। प्राचीन व सरल विधि में सामान्यतः किसान अपने दूध को सीधे उबाल कर पेस्ट करते हैं। हालांकि प्रत्यक्ष उबलना अस्वाभाविक है, क्योंकि यह बाहरी कणों या जीवाणुओं से संदूषण का कारण भी बन सकता है। प्रत्यक्ष उबलने की विधि अकुशल है क्योंकि इस विधि में अधिक ऊर्जा (अधिक ईंधन या जलाऊ लकड़ी) की खपत होती है। अप्रत्यक्ष रूप से दूध को गर्म करना एक प्राचीन व बेहतर तरीका है। इस पद्धति में दूध को एक बड़े धातु के बर्तन कोन–टेनिंग पानी के अंदर रख सकते हैं ताकि पानी दूध के चारों ओर एक जैकेट बना सके। खुली आग या गैस स्टोव या बिजली के गर्म प्लेट का उपयोग करके बड़े बाहरी बर्तन को गर्म करें।

दुग्ध पाश्चराइजेशन की निम्नलिखित विधियां

1. बैच पास्चराइजेशन

निम्न तापक्रम अधिक समय (एसटीएचटी) कम से कम 30 मिनट के लिए 63 डिग्री सेल्सियस पर दूध को ऊष्मीय उपचार देना। यह विधि छोटे पैमाने पर दुग्ध उत्पादकों और उत्पादक सहकारी समितियों के लिए उपयुक्त है। बैच या लो–टेम्प्रेचर–लॉन्ग–टाइम या होल्डर पास्चुरीकरण प्रक्रिया दूध को पाश्चुरीकृत करने की पारंपरिक विधि है। इस विधि में दुग्ध या दुग्ध उत्पाद को कम से कम 30 मिनट के लिए लगभग 63 डिग्री सेल्सियस तक गर्म कर ऊष्मीय उपचार करने की आवश्यकता होती है। बैच विधि में द्रव दूध को एक वैट पाश्चराइज़र में रखा जाता है, जिसमें एक मिल्क वैट होता है जो पानी या भाप की ऊष्मीय ऊर्जा द्वारा उपचारित होता व तेजी से घूमता है। दूध को ठंडा करने के लिए या तो दूध को मिल्क वैट में ठंडा होने दिया जाता है या दूध को मिल्क वैट से निकाल दिया जाता है। आइसक्रीम उद्योग इस प्रक्रिया का प्राथमिक उपयोगकर्ता है।

2. उच्च तापमान कम समय (एसटीएचटी) पास्चराइजेशन

कम से कम 15 मिनट के लिए 72 डिग्री सेल्सियस यह दूध की अधिक मात्रा के लिए काफी उपयुक्त विधि है। उदाहरणः एक बार में 250 लीटर से अधिक। फ्लैश पाश्चराइजेशन, जिसे "उच्च–तापमान अल्पकालिक" प्रसंस्करण भी कहा जाता है, फल और सब्जी के रस, बीयर, कोशेर वाइन और दूध जैसे कुछ डेयरी उत्पादों जैसे नाशपाती पेय का ऊष्मीय पाश्चरीकरण की एक बहुत ही उत्तम व प्रचलित विधि है। अन्य पाश्चराइजेशन प्रक्रियाओं की तुलना में यह उत्पादों का रंग और स्वाद को बेहतर बनाए रखता है, लेकिन कुछ चीज़ों में पाया गया कि यह प्रक्रिया अलग–अलग है। दुग्ध के कंटेनरों को भरने से पहले खराब सूक्ष्मजीवों को मारने के लिए एवं उत्पादों को सुरक्षित बनाने के लिए और अनपेक्षित खाद्य पदार्थों की तुलना में उनके शेल्फ जीवन का विस्तार करने के लिए फ्लैश पास्चुरीकरण तकनीक का उपयोग किया जाता है। उदाहरण के लिए एक निर्माता अपने पास्चुरीकृत दूध की शेल्फ लाइफ को 6 से 12 महीने देता है। पोस्ट–पाश्चराइजेशन संदूषण को रोकने के लिए इसे एसेप्टिक प्रसंस्करण तकनीक के साथ ही संयोजन में किया जाना चाहिए। कंटेनर भरने से पहले खराब व रोग फैलाने वाले सूक्ष्मजीवों को मारने के लिए फ्लैश पास्चराइजेशन तकनीक का उपयोग बहुतायत में किया जाता है

3. अल्ट्रा उच्च तापमान (युएचटी)

तापक्रम–135 डिग्री सेल्सियस जिसका उपयोग बड़े कारखानों द्वारा किया जाता है तथा इसके लिए विशेष मशीनरी की आवश्यकता होती है। बिना प्रशीतन के भी यूएचटी दूध को 6 महीने तक संग्रहित किया जा सकता है। अल्ट्रा–हाई टेम्परेचर प्रोसेसिंग, अल्ट्रा–हीट ट्रीटमेंट या अल्ट्रा– पाश्चराइजेशन एक खाद्य प्रसंस्करण तकनीक है, जिसमें लिक्विड फूड, मुख्य रूप से दूध को 135 डिग्री सेल्सियस (275 डिग्री सेल्सियस) से ऊपर 2 से 5 सेकंड के लिए गर्म करके निजर्मीकृत किया जाता है। इतना उच्च तापमान दुग्ध व दुग्ध उत्पादों में उपस्थित हरेक प्रकार के विषाणुओं, रोगजन्य कीटाणुओं व बीजाणुओं को मारने के लिए काफी होता है एवं इस विधि द्वारा उपचारित उत्पाद पूर्ण रूप से सुरक्षित होते हैं। दूध उत्पादन में यूएचटी का सबसे अधिक उपयोग किया जाता है, लेकिन इस प्रक्रिया का उपयोग फलों के रस, क्रीम, सोया दूध, दही, शराब, सूप, शहद और स्टोव के लिए भी किया जा सकता है। यूएचटी विधि पहली बार 1960 के दशक में विकसित किया गया था और धीरे–धीरे इसकी उपलब्धता बढती गयी।

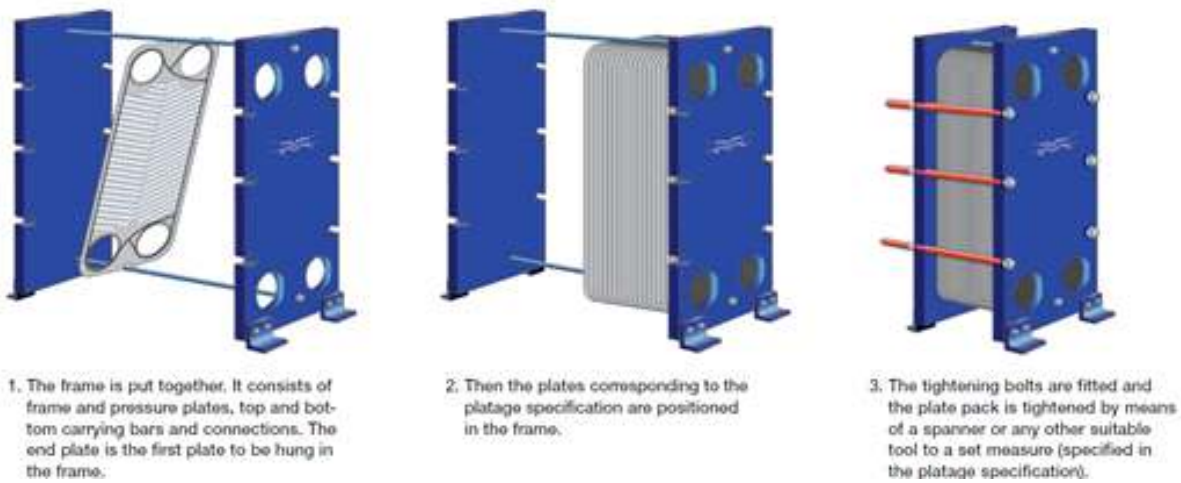

चित्र–1 : प्लेट हीट एक्सचेंजर (पी.एच.ई.) में लगे रबर गैस्केट व उत्तम तापीय चालकता के धातु के प्लेट

प्लेट हीट एक्सचेंजर (पी.एच.ई.) एक प्रकार का हीट एक्सचेंजर है जो दो तरल पदार्थों के बीच गर्मी को स्थानांतरित करने के लिए धातु की ऐसी प्लेटों का उपयोग करता है, जिनकी तापीय चालकता (थर्मल कन्डकटीविटी) काफी अधिक होती है, उदाहनार्थ स्टेनलेस स्टील आदि, जिसे चित्र–1 व चित्र–2 में दर्शाया गया है। पारंपरिक हीट एक्सचेंजर का बड़ा फायदा यह है कि तरल पदार्थ (दुग्ध आदि) धातु की ऐसी प्लेटों के बहुत बड़े सतह क्षेत्र के संपर्क में आते हैं क्योंकि तरल पदार्थ प्लेटों में फैल जाते हैं जिससे ऊष्मा स्थानान्तरण काफी अच्छे से होती है। यह ऊष्मा के उत्तम व लगातार हस्तांतरण की सुविधा प्रदान करता है एवं साथ ही साथ गर्म स्टीम की उष्मीय ऊर्जा के स्थानांतरण की गति को बहुत बढ़ा देता है, जिससे दुग्ध जल्द ही नियत तापक्रम तक गर्म हो जाता है। प्लेट हीट एक्सचेंजर्स अब लगभग हर डेरी प्लांट में दुग्ध के पास्चुरीकरण हेतु उपयोग किये जा रहे हैं।

चित्र–2 : दुग्ध पास्चराइजेशन हेतु प्लांट में लगा प्लेट हीट एक्सचेंजर (पी.एच.ई.)

हीट एक्सचेंजर के पीछे की अवधारणा ऐसी है जिससे एक तरल पदार्थ की ऊष्मीय ऊर्जा को दूसरे तरल पदार्थ में धातु की प्लेटों का उपयोग द्वारा स्थानांतरित करके गर्म या ठंडा करने के लिए उपयोग में लाया जाता है। ज्यादातर मामलों में एक्सचेंजर में एक कुंडलित पाइप होता है जिसमें एक द्रव होता है जो दूसरे तरल पदार्थ वाले कक्ष से होकर गुजरता है। पाइप की दीवारें आमतौर पर उत्तम ऊर्जा स्थानान्तरण हेतु धातु या उच्च तापीय चालकता वाले किसी अन्य पदार्थ से बनी होती हैं, जबकि बड़े कक्ष का बाहरी आवरण प्लास्टिक से बना होता है या थर्मल इन्सुलेशन के साथ लेपित होता है, जिससे बाह्य वातावरण में ऊष्मीय ऊर्जा का ह्रास ना हो। प्लेट हीट एक्सचेंजर (पीएचई) का आविष्कार डॉ. रिचर्ड सेलिगमैन ने सन 1923 में किया और द्रवों को अप्रत्यक्ष रूप से गर्म करने और ठंडा करने के तरीकों में क्रांति ला दी। आज भी कई डेरी प्लांट इस उत्तम तकनीक द्वारा दुग्ध को गर्म करके उनमें उपस्थित सूक्ष्मजीवों व रोगाणुओं को ख़त्म करके शुद्ध दुग्ध उपलब्ध करा रहे हैं। दुग्ध के पास्चुरीकरण हेतु इस उत्तम तकनीक में कई सुधार होते गए व ये तकनीक सबसे अधिक उपयोग में लाई जा रही है। दूध प्रसंस्करण से देश के डेरी कृषकों की आय में वृद्धि के साथ साथ उत्तम गुणवत्ता के प्रसंस्करित दूध व दुग्ध उत्पाद भी उपलब्ध हो पाए हैं जिससे निरंतर उनके लाभ में वृद्धि हुई है।

दुधारू पशुओं में आहार प्रबंधन

रोहित गुप्ता[1], योगेंद्र सिंह जादौन[2] एवं संजीव कुमार कटारिया[1]
[1]कृषि विज्ञान केंद्र, जालंधर, पंजाब कृषि विश्वविद्यालय, लुधियाना
[2]गुरु अंगद देव पशुचिकित्सा एवं पशुविज्ञान विश्वविद्यालय, लुधियाना

गौ वंशीय पशुओं का महत्व भारतीय अर्थव्यवस्था में सर्वविदित है। इनका खेती के संग लगातार पूरक व अनुपूरक का संबंध रहा है। प्रभावी आहार प्रबंधन पशुओं के उत्पादन स्तर व स्वास्थ्य को सर्वाधिक प्रभावित करता है। पशुपालन पर होने वाले कुल खर्च का लगभग 75 प्रतिशत पशुओं की खान–पान पर आता है। अतः यह आवश्यक है कि जहां तक सम्भव हो, गौ पशुओं को पर्याप्त चारा व पोषकतत्व ऊर्जा, प्रोटीन, खनिज तत्व, विटामिन व जल लगातार मिलते रहें। हमारे देश में हरे चारे का उत्पादन दिन–प्रतिदिन घटता जा रहा है और दानें वाली फसलों के अन्तर्गत क्षेत्रफल बढ़ रहा है। इसके परिणामस्वरूप उत्तर भारत के ग्रामीण क्षेत्रों में भूसा व पुआल जैसे सूखे चारे ही गौ–पशुओं के मुख्य आधारिक आहार है। यह चारे पशु चाव से नहीं खाते। इनके कम अंतर्ग्रहण, निम्न पाचकता, नाइट्रोजन एवं खनिजों जैसें कुछ महत्वपूर्ण तत्वों की कमी के कारण पशुओं को संतुलित मात्रा में पर्याप्त पोषक तत्व नहीं मिल पाते इन सूखे चारों में प्रोटीन की मात्रा 3 से 4 प्रतिशत पायी जाती है, जबकि पशुओं के आहार में प्रोटीन की मात्रा कम से कम 6– 7 प्रतिशत होनी चाहिए जो कि पशुओं के उत्पादन के अनुसार बढ़ती रहती है। पशु पोषण खाद्य पदार्थों की उपलब्धता व उनकी कीमत, पशु प्रजाति, उनकी आयु, भार, उत्पादन स्थिति (जैसे गर्भावस्था, दूध उत्पादन अवस्था, वृद्धि अवस्था) आदि पर निर्भर करता है। ग्रामीण अंचल में उपलब्ध क्षेत्रीय आहार संसाधनों के वैज्ञानिक रीति से समुचित उपयोग द्वारा पशुओं का उत्पादन बढ़ाना संभव है। इसके लिए यह आवश्यक है कि पशु पोषण में प्रचलित आहारीय प्रणालियों से जुड़ी समस्याओं को समझकर उनका उचित समाधान किया जाए।

संतुलित पशु आहार

वह आहार जिसमें जीवन निर्वाह अपेक्षित उत्पादन व स्वास्थ्य हेतु सभी पोषक तत्व (प्रोटीन, ऊर्जा, खनिज लवण एवं विटामिन आदि) समुचित मात्रा में मौजूद हों, संतुलित पशु आहार कहलाता है। पशुपालकों को यह समझना अति आवश्यक है कि पशुओं को अपने जीवन निर्वाह, शारीरिक क्रियाओं को सुचारू रूप से चलाने अथवा दूध को बढ़ाने के लिए, सभी पोषक तत्वों जैसे प्रोटीन, ऊर्जा, खनिज लवण एवं विटामिन की समुचित मात्रा में आवश्यकता होती है जो कि किसी एक चारे, भूसे या दाने से पूरी नहीं की जा सकती है और न ही सभी पोषक तत्व किसी एक दाने अथवा खल में समुचित मात्रा में मौजूद होते हैं। अतः आवश्यकता है कि पशुपालक अपने पशु को उसकी आवश्यकतानुसार सूखे चारों और संतुलित दाना को उचित अनुपात में मिलाकर खिलायें।

संतुलित व पौष्टिक आहार के लाभ

- पशुओं को सभी पोषक तत्व आवश्यकतानुसार संतुलित मात्रा में उपलब्ध कराता है।
- पशु की दुग्ध उत्पादन क्षमता को लगभग 25–30 प्रतिशत बढ़ाता है एवं लम्बे समय तक दूध देने की क्षमता बनाये रखता है।
- पशुओं को कुपोषण से बचाता है व पशु का गर्मी में न आना, बार–बार फिरना, गर्भ न ठहरना आदि समस्याओं से छुटकारा दिलाने में मदद करता है।
- पशुओं के दो व्यांतों के अन्तर को कम करता है।
- पशुपालक को पशुपालन से होने वाली आमदनी को बढ़ाता है ।
- पशु को स्वस्थ, तन्दरूस्त एवं अधिक लाभदायी बनाता है तथा अपच, भूख में कमी, कमजोरी आदि समस्याओं से भी राहत दिलाता है।

संतुलित संपूरक दाना

एक संतुलित दाना में दलिया, चोकर/पालिश व खल का उचित सम्मिश्रण होना आवश्यक है ताकि पशु उत्पादन हेतु पर्याप्त आवश्यक पोषक तत्व उन्हें मिल सके। संतुलित दाना में प्रोटीन की मात्रा लगभग 20 प्रतिशत होनी चाहिए। सामान्यतः पशुपालक प्रक्षेत्र पर उपलब्ध जो भी घटक होता है उसे ही अपने पशु को खिला देते हैं जैसे मात्र दलिया या चोकर अथवा खल। दाना मिश्रण की मात्रा भी उपलब्धता पर निर्भर करती है। इस प्रकार पशुओं के आहार में प्रोटीन की 50 प्रतिशत कमी पायी जाती है। दुधारू पशुओं की उत्पादन क्षमता के अनुसार निम्न प्रकार के संतुलित दाना बनाकर उचित मात्रा में खिलायें जा सकते हैं।

उपरोक्त संपूरकों को अच्छी तरह मिलाकर संतुलित खुराक बनायी जा सकती है यदि चावल की किनकी, टूटे गेहूँ और बाजरा इत्यादि सस्ते दाम में उपलब्ध हों तो दाना उत्पादन लागत को और कम किया जा सकता है।

सूखे चारों से संतुलित संपूरक के साथ दुग्ध उत्पादन

- पशु को भरपेट सूखा चारा दें।
- दुग्ध उत्पादन की मात्रा का आधा भाग संतुलित संपूरक से दें (यानी 6 कि.ग्रा. दुग्ध उत्पादन के लिए 3 किग्रा. दाना देना पड़ेगा।

तालिका 1: दुग्ध उत्पादन हेतू संतुलित संपूरक

3–6 कि.ग्रा. दुग्ध उत्पादन हेतु संतुलित संपूरक (प्रति 100 कि.ग्रा.)		6 कि.ग्रा. से अधिक दुग्ध उत्पादन हेतु संतुलित संपूरक (प्रति 100 कि.ग्रा.)	
चोकर/पालिश	64 कि.ग्रा.	चोकर/पालिश	39 कि.ग्रा.
		मक्का/ गेहूँ का दलिया	25 कि.ग्रा.
खल	33 कि.ग्रा.	खल	33 कि.ग्रा.
खनिज लवण	2 कि.ग्रा.	खनिज लवण	2 कि.ग्रा.
नमक	1 कि.ग्रा.	नमक	1 कि.ग्रा.

- हरे चारे की उपलब्धता न होने की स्थिति में भी दुधारू पशुओं को कम से कम दो किलो ग्राम हरा चारा/घास इत्यादि अवश्य देना चाहिए।
- हरे चारे की उपलब्धता के अनुसार दाने की मात्रा घटायी या बढ़ायी जा सकती है।

सूखे चारों का यूरिया उपचार

अनुसंधान परिणामों से यह स्पष्ट हुआ है कि यूरिया, जो नाइट्रोजनीय उर्वरक के रूप में प्रयुक्त किया जाता है, एक ऐसा रसायन है जिससे कि भूसा/पुआल जैसे निम्न कोटि के चारों को उपचारित करके उनकी पोषकता को भी बढ़ाया जा सकता है। भूसे के उपचार के लिए किसी बड़े ड्रम में यूरिया का 8.0 प्रतिशत घोल (4 किलो यूरिया प्रति 50 लीटर पानी) तैयार कर लें तथा प्रति 100 किलो भूसा/पुआल की दर से अच्छी तरह मिलाते जाएं अर्थात यदि गठरी का औसत भार 20 किलोग्राम हो तो 10 लीटर घोल प्रति गठरी के हिसाब से मिलाना होगा छिड़काव के लिए हजारे का उपयोग अधिक सुविधाजनक होता है। उपचार करते समय यदि एक दूसरा आदमी साथ ही साथ पैरों द्वारा उपचारित चारे को दबाता रहे तो चारे के बीच में रहने वाली हवा भी निकल जाएगी। उपचारित भूसे को सूखे पुआल, बांस अथवा कट्टे के द्वारा ढकने से वर्षा के पानी से होने वाले नुकसान से भी बचाया जा सकता है। गीला भूसा जो आमतौर पर सड़ने लगता है, इस प्रकार यूरिया से उत्पन्न अमोनिया जैसे क्षार की उपस्थिति में खराब नहीं होता, बल्कि मुलायम हो जाने के कारण इसके पोषक मान में वृद्धि हो जाती है। उपचारित भूसा गर्मी के दिनों में दस दिन में खिलाने के लिए तैयार हो जाता है, जबकि सर्दी के दिनों में दो सप्ताह में खिलाने के लिए तैयार हो जाता है। यदि पशुपालक यह उपचार भूसा/पुआल के भण्डारण के समय करें तो अधिक सुविधाजनक रहता है।

हरे चारे के साथ दुग्ध उत्पादन

अगर हरा चारा भरपूर मात्रा में उपलब्ध हो तो दुधारू पशुओं के लिए बहुत अच्छा रहेगा। अच्छे हरे चारे जैसे बरसीम, जई और ज्वार इत्यादि की दो तिहाई मात्रा और एक तिहाई भूसा देना सर्वोत्तम रहेगा और दुधारू पशु 6–8 लीटर तक दुग्ध का उत्पादन मामूली दाना मिश्रण की मात्रा के साथ बनाये रख सकता है। दुग्ध उत्पादन इससे अधिक होने पर प्रति 3 लीटर दुग्ध उत्पादन के हिसाब से 1 किग्रा. संतुलित सम्पूरक दें।

निष्कर्ष

इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि दुग्ध उत्पादन बढ़ाने के लिये पशु को सूखे चारे के साथ उनके उत्पादन के अनुसार संतुलित संपूरक भी दें, और पशुओं को आवश्यकतानुसार नमक एवं खनिज मिश्रण भी अवश्य दें। हरे चारे की कमी में सूखे चारे की गुणवत्ता बढ़ाने के लिए आवश्यक है कि पशुपालक सूखे चारे को यूरिया द्वारा उपचारित करके खिलाएं।

अनाजों की रानी मक्का की कहानी

शिव मंगल प्रसाद, निकीता कुमारी, पंकज कुमार सिंह, हंसराम मीना एवं विभाष चन्द्र वर्मा
केंद्रीय वर्षाश्रित उपराऊ भूमि चावल अनुसंधान केंद्र, हजारीबाग
भाकृअनुप–राष्ट्रीय चावल अनुसंधान केंद्र, कटक

भारत में धान और गेहूँ के बाद तीसरी मुख्य खाद्यान्न फसल मक्का है, पर इसे अनाजों की रानी कहा जाता है, और कृषि वैज्ञानिकों का मानना है कि अगली हरित क्रांति इसी मक्के की फसल द्वारा सम्पन्न होगी। मक्कें की छः प्रकारें हैं, और ये सभी छः के छः भारतवर्ष में उगाई जाती है, वे इस प्रकार हैं पॉप कॉर्न, स्वीट कॉर्न, फ्लिंट कॉर्न, डेंट कॉर्न, वैक्सी कॉर्न एवं पॉड कॉर्न और अब तो सातवाँ एक और प्रकार बेबी कॉर्न। मक्का को सरल भाषा में मकई, भुट्टा, कॉर्न के नाम से जाना जाता है, इसको अंग्रेजी में कॉर्न कहा जाता है, और इसका वानस्पतिक नाम *जिया मेज़* है।

चित्र 1. चुरचू प्रखण्ड़ (हजारीबाग, झारखण्ड़) मक्के की फसल का अवलोकन करता किसान

मक्का की खेती तीनों मौसमों यानी खरीफ, रबी एवं जायद में बड़े ही आसानी से की जाती है। इन तीनों मौसमों में रबी मौसम में, मक्के की उपज सबसे ज्यादा होती है, क्योंकि इसमें धूप ज्यादा मिलती है, और कीड़े बीमारियों तथा खर. पतवारों का प्रकोप कम होता है, साथ ही साथ इसकी तैयार होने की अवधि भी ज्यादा हो जाती है। मक्के की फसल में मौसम के अनुसार प्रजातियाँ भी अलग–अलग हैं, जिनमें से कुछ मुख्य निम्नलिखित है;

बसंत मौसम / गर्म मौसम

- सुवान, देवकी, गंगा11 एवं शक्तिमान 1, 2, 3, 4 तथा 5
- क्वालिटी प्रोटीन मक्का एचयूपीएम 1, 2 शालीमार
- बेबी कॉर्न मक्का मृदुला, विवेक मेज, हाइब्रिड 23, 25
- एचएम 4, 5, वी एल मक्का 42, पूसा इक्सट्रा अर्ली हाईब्रिड मेज गोल्डेन बेबी इत्यादि

बेबी कॉर्न मक्का

खरीफ मौसम में मक्के की बुवाई 25 मई से 15 जून तक, रबी मौसम में 1 नवम्बर से 30 नवम्बर तक तथा बसंतकालीन एंव गरमा मौसम में 15 फरवरी से 20 अप्रैल तक की जा सकती है। खरीफ मौसम की फसल वर्षाश्रित होती है, जबकि रबी तथा गरम मौसम में सिंचाई (5 से 6 लगभग) की आवश्यकता होती है। मक्का की फसल में जल जमाव नहीं हो इसलिए खरीफ मौसम की फसल में जल निकासी की पर्याप्त व्यवस्था होनी चाहिए। मक्के की बीज दर 20 कि.ग्रा. प्रति हैक्टर रखते हुये कतारों में 75x25 से.मी. की दूरी रखते हुये 3 से 5 से.मी. की गहराई पर बुवाई करनी चाहिए। बुवाई से पूर्व बीजों को 2.5 ग्रा. कैप्टाफ या थीरम या फिर 5 ग्रा. *ट्राईकोडरमा विरिडी* नामक दवा प्रति किलो ग्राम बीज की दर से उपचारित करके बुवाई करें।

चित्र 2. मक्का से बना बेबी कॉर्न

कृषि कार्य

खेत तैयारी के लिए बुवाई से 15 दिनों पहले गहरी जुताई करके 100 से 150 कुंतल गोबर की सड़ी खाद या कम्पोस्ट प्रति हैक्टर की दर से समान रुप से बिखेरें। खेत की तैयारी करते समय प्रति हैक्टर की दर से 80 कि.ग्रा. यूरिया, 130 कि. ग्रा. डी.ए.पी. (या 470 कि.ग्रा. सिंगल सुपर फॉस्फेट) और 85 कि.ग्रा. म्यूरेट ऑफ पोटाश दें। खेत की अंतिम जुताई के समय 25 कि.ग्रा. क्लोरोपायरीफॉस धूल दवा प्रति हैक्टर की दर से दीमक की आक्रमण की सम्भावना वाले क्षेत्रों में दें।

मक्के के खेत में बुवाई के दूसरे दिन ही खरपतवारनाशी दवा एट्राजीन (50 प्रतिशत) 2.0 से 2.5 ग्राम प्रति लीटर पानी की दर से 800 लीटर घोल प्रति हैक्टर छिड़काव करें। 30 दिनों बाद में यदि खरपतवार दिखें तो हैण्ड हो से निराई गुड़ाई करके मिट्टी चढ़ा दें। मिट्टी चढ़ाते समय यूरिया 88 किलोग्राम तथा धनबाल निकलते समय 88 किलोग्राम प्रति हेक्टर की दर से दें।

चित्र 3. मक्के की फसल

चित्र 4. तुड़ाई उपरान्त बेबी कॉर्न की बालियाँ

तालिका 1: खरीफ मौसम

प्रकार	नाम	उपज क्षमता (कु./है.)	रंग
संकर	शक्तिमान 1	60–65	सफेद
	शक्तिमान 2	60–65	सफेद
	शक्तिमान 3	65–70	पीला
	शक्तिमान 4	65–70	पीला
	शक्तिमान 5	70–75	पीला
	राजेन्द्र संकर मक्का 3	40–45	पीला
	गंग11	45	पीला
संकुल	सुआन	40–45	पीला
	देवकी	45	सफेद

तालिका 2: रबी मौसम

प्रकार	नाम	उपज क्षमता (कु./है.)	रंग
संकर	शक्तिमान 1	80	सफेद
	शक्तिमान 2	85	सफेद
	शक्तिमान 3	90	पीला
	शक्तिमान 4	95–100	पीला
	शक्तिमान 5	100–110	पीला
	गंगा 11	60	पीला
	राजेन्द्र संकर 1	70–75	पीला
	राजेन्द्र संकर 2	70–17	पीला
	राजेन्द्र संकर मक्का दीप ज्वाला	110–115	पीला
संकुल	देवकी	65–70	सफेद
	लक्ष्मी	65–70	सफेद
	सुआन	55–60	पीला

तालिका 3: झारखण्ड की अनुमोदित मक्के की किस्में

क्र.स.	उन्नत प्रभेद	तैयार होने अवधि (दिन)	औसत उपज (कु./है.)	विशेष गुण
1	बिरसा मक्का 1	80–85	35–40	संकुल किस्म, दाना पुष्ट, पीला रंग
2	बिरसा मक्का 2	75–80	40–45	संकुल किस्म, दाना पीला, रबी के लिए उपयुक्त, ज्यादा गुणवत्ता वाली किस्म
3	गंगा सफेद 2	100–105	50	संकुल किस्म, रोग रोधी एवं खरीफ फसल के लिए उपयुक्त
4	शक्तिमान 1 (संकर मक्का)	105–110	55–60	संकर किस्म, रोग रोधी एवं खरीफ फसल के लिए उपयुक्त

सिंचाई: रबी एवं गरमा: 5 से 6 सिंचाई मोचा निकलने से दाना बनने तक खेत में पर्याप्त नमी का रहना अत्यन्त आवश्यक है। खेत में नमी बनाये रखें। खरीफ में सिंचाई की आवश्यकता प्रायः नहीं पड़ती है। खरीफ में जल निकास का प्रबंध रखें। सूखा पड़ने पर दाना में दूध बनते समय नमी के लिए सिंचाई अवश्य करें।

निराई–गुड़ाई: बुआई के दूसरे दिन ही खरपतवारनाशी दवा एट्राजीन 50 प्रतिशत (2 ग्राम प्रति लीटर पानी में घोल कर) का जमीन की सतह पर समान रुप से छिड़काव करें। जिस खेत में खरपतवारनाशी दवा का छिड़काव नहीं किया गया हो उस खेत में मक्का की कतारों के बीच खुरपी से निराई करें तथा नाइट्रोजन का प्रथम खेप उपरिवेशन कर मिट्टी चढ़ा दें।

मिश्रित खेती: मक्का+आलू, मक्का+मूली, मक्का+मटर, मक्का+झिंगनी, मक्का+उड़द, मक्का+बोदी, मक्का+अरहर।

सुत्रकृमि नियंत्रण: मक्का को बार–बार एक ही खेत में नहीं लगाना चाहिए। इससे सूत्रकृमि की संख्या में बड़ी तेजी से वृद्धि होती है। सरसों, तिल, चना आदि को मक्का के साथ फसल–चक्र में अपनाने से सूत्रकृमि की संख्या में कमी होती है तथा उपज में भी वृद्धि होती है। बुआई के समय कार्बोफ्यूरान एक किलोग्राम मूल तत्व दवा प्रति हैक्टर की दर से खेत में व्यवहार करने से सुत्रकृमि की संख्या में कमी एवं उपज में लाभ होता है।

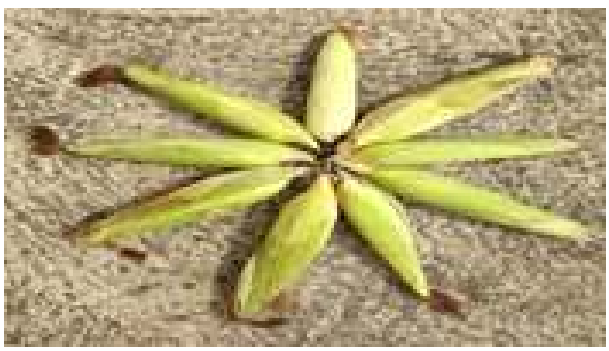

चित्र 5: मक्का

रोग नियत्रंण: पत्रलांछन: रोग प्रगट होने पर कवकनाशी डाइथेन एम 45 या इंडोफिल एम 45 का 2.5 किलोग्राम 1000 लीटर पानी में घोलकर प्रति/हैक्टर छिड़काव करें।

स्टॉक रॉट: खड़ी फसल पर रोग देखते ही ब्लीचिंग पाउडर 4 किलोग्राम 1000 लीटर पानी में घोलकर प्रति हैक्टर की दर से मिट्टी की सतह से बाल तक छिड़काव करें।

हरदा: रोग देखते ही कवकनाशी डाइथेन एम 45 (2.5 किलोग्राम 1000 लीटर पानी में घोल कर प्रति हैक्टर) का छिड़काव 15 दिनों पर आवश्यकतानुसार दो बार करें।

उकठा: बीजोपचार (कैप्टाफ या कैप्टॉफाल, 2 ग्राम प्रति किलोग्राम बीज) करें। फसल चक्र अपनावें।

कीट नियंत्रण: तना छिद्रक कीट: 2 से 3 पत्ती की अवस्था में कीट के लक्षण दिखाई पड़ते ही डेल्टामेथ्रीन (0.001 प्रतिशत) का छिड़काव करें। 68 पत्ती की अवस्था में कीट के लक्षण दिखलाई पड़ने पर कार्बोफ्यूरान (3जी) का 7 किलोग्राम/हैक्टर की दर से पौधों के गाभा में डालें।

आरोही कजरा पिल्लू: फोरेट (थिमेट) 10 जी का 5 किलोग्राम/हैक्टर या कार्बोफ्यूरान (फ्यूराडान) 3जी का 5 किलोग्राम/हैक्टर की दर से मक्का के पौधों के गाभा में डालें। दानेदार दवा का प्रयोग 67 पत्तियों की अवस्था में ही करें।

मक्का की कटाई उपरान्त प्रबन्धन एवं प्रसंस्करण

मक्का की फसल के बहुत तरह के उपयोग है। तैयार हुई फसल दानों के रुप में अनेक प्रकार से अनेक उत्पादों को बनाने में प्रयुक्त होता है, जिसकी चर्चा हम बारी–बारी से करेगें पर यहाँ यह बताना है, कि कच्चा भुट्टा (ग्रीन कॉब) का भी हमारे देश में बहुत ही ज्यादा मांग है। इसे आग पर सेंककर/भुनकर या फिर उबाल कर बहुत ही चाव से खाया जाता है। गाँवों, शहरों से लेकर महा नगरों में भी इसकी मांग है। कहीं–कहीं एक भुट्टे की कीमत 20.–25 रुपये भी होती है। इस तरह ग्रीन कॉब या भुट्टा की कटाई के बाद उसका तना जो हरा ही रहता है, मवेशियों के चारे के रुप में उपयोग में लाया जाता है।

मक्के का प्रसंस्करण

क्वालिटी प्रोटीन मक्का में उच्च मात्रा में प्रोटीन पाया जाता है, जो कि खाद्य एवं पोषण सुरक्षा के लिए सभी वर्ग के लोगों के लिए स्वास्थ्यवर्धक उत्पाद तैयार करने में प्रयुक्त होता है। बाजार में उपलब्ध अन्य उत्पादों की तुलना में यह बहुत ही सस्ता होता है। मक्का प्रसंस्करण प्रमुख तीन विधियों द्वारा होता है;

1) सूखी पिसाई / कुटाई

2) नम पिसाई / कुटाई

3) क्षार प्रसंस्करण

1) सूखी कुटाई / पिसाई—इस विधि में अनाज के दानों को मिल में पीसकर आटा बनाया जाता है। दानों में नमी की मात्रा 18–19 प्रतिशत तक बढ़ाई जाती है। इसके बाद रोलर मिल में डाला जाता है। नमी से बीजों को अनेक प्रकार के उत्पादों में परिणत किया जा सकता है, जैसे कि सूजी, दलिया, आटा और जर्म इत्यादि। छोटे–छोटे पैकेटों में ये उत्पाद (500 ग्राम, 1 किलोग्राम) बड़े–बड़े मॉलों में बिकते हैं।

2) नम कुटाई / पिसाई– इस विधि में मक्के से स्टार्च के निर्माण में मुख्यतः किया जाता है। इस विधि में मक्के को दो से तीन दिन (48 से 72 घंटे) के लिए 0.2 प्रतिशत सल्फर डाई ऑक्साइड मिले पानी में भिंगोया जाता है, फिर इसकी पिसाई की जाती है। नम पिसाई विधि द्वारा स्टार्च, प्रोटीन एवं तेल प्रमुख उत्पाद के रुप में प्राप्त होता है।

3) क्षार प्रसंस्करण– के दौरान पेरीकार्प एवं एण्डोस्पर्म नरम हो जाती है, इसी विधि से चिप्स बनाये जाते हैं जो कॉर्न फ्लैक्स नाम से बाजार में बिकता है। जिसकी कीमत भी काफी अच्छी होती है।

मक्का के औद्योगिक उत्पाद

पशु आहार– पशुओं के लिए मक्का को आधार में रखकर अनेक प्रकार के आहार बनाये जाते हैं। गायों, भैंसों, सुअरों एवं कुछ अन्य जानवरों को प्रतिदिन के भोजन में इसे शामिल करने से जानवरों के स्वास्थ्य एवं उत्पादन क्षमता में वृद्धि होती है। विदेशों में यह बीफ (गो मांस) एवं पोर्क (सूअर का मांस) उत्पादन में एक अहम् भूमिका निभाता है।

मुर्गीपालन अभी के कुछ वर्षों में एक बहुत ही लाभदायी व्यवसाय यूं कहें तो उद्योग के रुप में उभरा है। मुर्गीपालन में मांस उत्पादन (पॉल्ट्री फार्म) एवं अण्डा उत्पादन (लेयर फार्म) में मुख्य आहार के रुप बहुत ज्यादा उपयोग में आता है। पॉल्ट्री फार्म में हरेक 35 से 45 दिनों बाद नया बैच (चूजों का) आ जाता है, और लगभग इतने ही दिनों में 50 ग्राम का चूजा 1.25 से लेकर 1.75 किलोग्राम का हो जाता है, यह मक्का से बनाये गये पॉल्ट्री फीड का ही कमाल है। लेयर फार्मों में पीले मक्के से बनाये गये पॉल्ट्री फीड की मांग है, क्योंकि उसे खाने से मुर्गीयों के अण्डे की जर्दी पीली होती है, जिसको लोग ज्यादा पंसद करते हैं।

स्टॉर्च– मक्का के नम कुटाई विधि से प्राप्त यह प्रथम उत्पाद है, जिसका कि पूरे विश्व में व्यापक रूप से उपयोग होता है। मक्के के स्टार्च का उपयोग सॉस या सूप को गाढ़ा करने में, कार्न फ्लोर के रूप में अनेक प्रकार के व्यंजन बनाने में बिस्कुट बनाने में, फिलर बाईन्डर के रुप में, मिठाईयाँ बनाने में किया जाता है। अन्य कई प्रकार के उपयोग विभिन्न प्रकार के आमिश और निरामिश, मीठे एवं तीखे व्यंजन बनाने में होता है।

किण्वित औद्योगिक उत्पाद– मक्का का उपयोग किण्वित उत्पाद वाले उद्योगों में बड़े पैमाने पर किया जा रहा है। किण्वित (फरमेन्टेड) उत्पादों में वीयर, शराब, इथेनॉल, साईट्रिक एसिड, लाइसिन, लैक्टिक एसिड आदि हैं।

मक्के का तेल– मक्के के जर्म से नम या सूखी कुटाई द्वारा मक्के का तेल प्राप्त किया जाता है, जो कि लोकप्रिय बन गया है। यह अपने सादे स्वाद एवं उच्च मात्रा में असंतृप्त वसीय अम्ल के कारण अच्छा माना जाता है।

स्वीटनर–मक्के के स्टार्च को एन्जाइम द्वारा पुनः प्रसंस्करित किया जाता है, जिससे विभिन्न प्रकार के सिरप तैयार किये जाते हैं। इनमें डेक्सट्रोज एवं एचएफसीएस सिरप आदि प्रमुख है। मुख्यतः बेकरी और डेयरी उत्पादों में इनका उपयोग किया जाता है। इसके अलावा स्याही, पॉलिश, कपड़े, गोंद एवं दवा निर्माण में भी इसका प्रयोग होता है।

मूल्य संवर्धित उत्पाद

देश एवं विदेशों के वैज्ञानिकों / कृषकों के लगन एवं प्रयासों के फलस्वरुप मक्के के कई मुल्य संवर्धित उत्पादों की तकनीकों का विकास हुआ है, जो इस प्रकार हैं–

1. मक्के के आटे से पास्ता, नूडल्स, सेवई, मैकरोनी आदि बनाया जाता है।
2. मक्के को सुविधाजनक उत्पाद जैसे दलिया, सूजी, स्नैक्स आदि बनाया जाता है।

चित्र 6: मक्के का तेल

3. विभिन्न प्रकार के बेकरी उत्पाद जैसे ब्रेड, कुकीज, केक, मफीन, बिस्कुट बनाया जाता है।

4. पारम्परिक उत्पाद जैसे लड्डू, सेव, नमकीन, भुजिया, मठ्री इत्यादि की गुणवत्ता बढ़ाने में मक्के का उपयोग किया जा रहा है।

5. मक्के का सबसे महत्वपूर्ण उत्पाद जो पीले और सफेद दोनो प्रकार के मक्के से बनाया जाता है, वह है कॉर्न फ्लेक्स। यह नास्ते के रुप में खाया जाता है।

मक्के से तैयार खाद्य उत्पाद पॉप कॉर्न

मक्के के अलग किस्मों से तैयार एक लोकप्रिय उत्पाद पॉपकॉर्न भी है। इसे उच्च तापमान पर भूनने से लावा तैयार होता है, जिसे पैकेटों में बेचा जाता है।

मक्के से तैयार अन्य खाद्य उत्पाद

छोटे बच्चों के पौष्टिक आहार के रुप में कुछ अन्य पौष्टिक खाद्य पदार्थों के साथ मिलाकर तैयार किया जाता है। मक्के को 1 प्रतिशत चूने के पानी में उपचारित कर कुछ अन्य प्रक्रिया द्वारा (मक्के को एक प्रतिशत चूने के पानी में डूबोकर 12 घंटे तक के लिए छोड़ना, फिर फिर साफ पानी से 3–4 बार धोना, धूप में 2–3 दिनों तक सुखाना फिर पीस लेना) इस तरह जो आटा प्राप्त होता है, ज्यादा पौष्टिक हो जाता है, इसे प्रसंस्करित आटा कहते हैं। मक्के के आटे से रोटी बनाकर विभिन्न व्यंजनों के साथ खाया जाता है, जिसमें पंजाब प्रान्त में सरसों के साग को मुख्य रुप से खाया जाता है।

मक्के के सेवन के फायदे

- कोलेस्ट्रॉल को नियंत्रित करता है।
- कैंसर से बचाता है।
- हड्डियों को मजबूत बनाता है।
- त्वचा को निखारता है।
- आँखों के लिए फायदेमंद।
- उर्जावान बनाता है।
- पेट की समस्या से राहत दिलाता है।
- एनीमिया के उपचार में भी मददगार है।

चित्र 7: मक्की का आटा

अमरूद की खेती किसानों के लिए लाभदायक

दीपक चंद मीना[1], अक्षिता चड्ढा[2], बी एस मीणा[1], संचिता गराई[1] एवं संजीत माइती[1]
[1]भाकृअनुप–राष्ट्रीय डेरी अनुसंधान संस्थान, करनाल
[2]गुरु अंगद देव पशुचिकित्सा एवं पशुविज्ञान विश्वविद्यालय, लुधियाना

अमरुद भारत देश के लोकप्रिय फलों में से एक है। क्षेत्रफल एव उत्पादन की दृष्टि ये देश में उगाया जाने वाले फलो में चौथे स्थान पर है। हमारे देश में अमरुद को **"गरीबों का सेब"** के नाम से भी जानते है। यह स्वादिष्ट होने के साथ–साथ स्वास्थ्य के लिए बहुत लाभदायक होता है। इसमें विटामिन, आयरन, कैल्शियम, फास्फोरस समेत अनेक खनिज तत्व पाए जाते हैं। इसमें विटामिन सी की मात्रा काफी ज़्यादा होती है। विटामिन सी के अतिरिक्त इसमें विटामिन ए तथा विटामिन बी पाए जाते है। इसमें लोहा, कैल्शियम तथा फॉस्फोरस भी अच्छी मात्रा में पाया जाता है। अमरूद से कई प्रकार की सामग्री जैसे जेली, बर्फी बनायी जाती है। इनको एक डिब्बे में अच्छे पैक करके कई दिनों तक रख सकते हैं।

अमरूद की खेती के लिए जलवायु

अमरूद की खेती के लिए गर्म और शुष्क जलवायु अच्छी होती है। छोटे पौधे को छोड़कर सभी बड़े पौधे पाले से प्रभावित नहीं होते है। अमरूद की अच्छी पैदावार के लिए शुष्क जलवायु, शुष्क जलवायु को अमरूद का पेड़ आसानी से सहन कर लेता है। अमरूद का पौधा बड़ी आसानी से तैयार किया जा सकता हैं और इस पर जलवायु के उतार–चढ़ाव का बहुत ज्यादा असर भी नहीं पड़ता है ।

अमरूद की बागवानी के लिए मिट्टी

वैसे तो सभी तरह की मिट्टी में अमरूद की बागवानी की जा सकती है। किन्तु बुलई दोमट मिट्टी इसके बेहतर उत्पादन के लिए उचित मानी जाती है। इसकी अच्छी पैदावार के लिए मिट्टी का पीएच मान 6 से 7.5 होना चाहिए। जिस मिट्टी का पीएच मान 7.5 से ज्यादा होता है उसमें अमरूद की बागवानी नहीं करनी चाहिए। ऐसी मिट्टी में इसकी खेती करने से इसमें उकठा समेत अन्य रोगों के प्रकोप की संभावना रहती है।

अमरूद की बागवानी के लिए उचित समय

अमरूद के पौधे को वैसे तो बारिश के समय जुलाई और अगस्त के महीने में लगाना चाहिए। अगर किसान के पास पानी की अच्छी व्यवस्था हो तो फरवरी–मार्च में भी अमरूद के पौधे लगा सकते हैं।

अमरूद की खेती की तैयारी कैसे करें

अमरूद की बागवानी से पहले गर्मियों के दिनों में जिस खेत में अमरुद लगाने हो उस खेत की गहरी जुताई कर लें। जून के महीने में ही अमरूद की नर्सरी तैयार कर लें। गड्ढे की खुदाई भी गर्मी के दिनों में करके खुला छोड़ दें, जिससे गड्ढे के कीट–पतंगे मर जाएं। कुछ दिनों बाद उसमें वर्मी कम्पोस्ट, नीम की खली डालकर कर गड्ढे की भराई कर दें। अगर किसान खुद नर्सरी तैयार नहीं करना चाहता है तो वो दूसरे की नर्सरी से भी अमरुद के पौधे लेकर भी लगा सकता है।

अमरूद की किस्में

अमरूद की बागवानी के लिए उन्नत किस्मों का चुनाव करना बेहद जरूरी होता है। अमरुद की किस्मों का चुनाव करने से पहले मिट्टी की जाँच जरूर करवाये एवं इसके साथ–साथ जलवायु एव बाजार की जरूरतों को जरूर देख लें, किसान के आस–पास बाजार में किस अमरुद किस्म की मांग है वहीं किस्म का चुनाव करें। अमरूद की वैसे तो कही सारी किस्मे है लेकिन उनमें, लखनऊ–49 (सरदार अमरुद), एप्पल–कलर, ललित, श्वेता, इलाहाबादी सफेदा, अर्का मृदुला, अर्का अमूल्या, अर्का किरण प्रमुख हैं।

चित्र 1: तैयार अमरूद फल

चित्र 2: अमरूद का बाग

तालिका 1: खरीफ मौसम में उर्वरक प्रबंधन

पौधे की आयु (वर्ष में)	गोबर खाद (किग्रा)	नाइट्रोजन (ग्राम)	फास्फोरस (ग्राम)	पोटाश (ग्राम)
1	10	50	30	50
2	20	100	60	100
3	30	150	90	150
4	40	200	120	200
5	50	250	150	250
6 साल से ऊपर	60	300	180	300

श्वेता: यह प्रजाति केंद्रीय उपोष्ण बागवानी संस्थान लखनऊ द्वारा विकसित की गई है। इसके फल गोल, सफेद और हल्के पीले रंग के होते है। इस प्रजाति से प्रति पौधे लगभग 90 किलोग्राम फल का उत्पादन होता है।

इलाहाबाद सफेदा: इस किस्म के फल का आकार मध्यम, गोलाकार, चमकदार और फल मीठा होता है। इस प्रजाति की खास बात है कि इसे कई दिनों तक भंडारित किया जा सकता है।

लखनऊ–49 (सरदार): इस प्रजाति की फल मध्यम, गोल, खुरदुरी सतह और पीले रंग की होता है। इसमें उकठा रोग का प्रकोप अपेक्षाकृत कम होता है। इस प्रजाति से उपज प्रति पौधा 50 से 60 किलोग्राम तक होती है।

ललित : यह किस्म सी.आई.एस.एच., लखनऊ द्वारा विकसित की गयी है। फल मध्यम आकार एव केसरनुमा आकरखस पीले रंग के होते है। गुद्दा गुलाबी रंग का होता है। इस किस्म के फल का वजन लगभग 250 ग्राम से 300 ग्राम तक होता है। इस प्रजाति से प्रति पौधा लगभग 100 किलोग्राम तक उत्पादन होता है।

अमरूद के पौधों का रोपण

वैसे तो अमरूद को कई तरीके से लगाया जा सकता है लेकिन अमरूद का पौधा कलम विधि से तैयार करके लगाना सबसे सही माना जाता है। क्योंकि कलम विधि से लगाए गए पौधों पर फल जल्दी आ जाते हैं जबकि बीज द्वारा लगाए गए पौधों पर फल आने में ज्यादा समय लगता है।

अमरूद के पौधे के लिए गड्ढा बनाना

इन पौधों को 60 सेंटीमीटर लंबाई, 60 सेंटीमीटर चैड़ाई और 60 सेंटीमीटर गहराई के गड्ढ़ों में लगाया जाता है। पौधे की रोपाई के 10 से 15 दिन पहले इन गड्ढ़ों को तैयार करके खुला छोड़ दें। इससे मिट्टी जनित रोगों की संभावना कम रहती है। पौधे लगाने से पहले इन गड्ढ़ों में 10 से 15 किलो गोबर खाद, सिंगल सुपर फॉस्फेट 500 ग्राम, 250 सौ ग्राम पोटाश और 100 ग्राम मिथाइल पैराथियॉन पाउडर डालें। इसके बाद गड्ढ़ों को मिट्टी से भरकर सिंचाई करें। एक हेक्टेयर में 5000 तक पौधे लगाए जा सकते हैं।

अमरुद की सिंचाई

अमरूद का पौधा एक या दो साल का होने तक 10 से 15 दिन के नियमित अंतराल पर सिंचाई करना चाहिए। वहीं गर्मी के दिनों में 3 से 4 दिन में सिंचाई करना उचित है। जब तक पौधा ज्यादा बड़ा ना हो तब तक बूँद–बूँद सिंचाई विधि से भी कर

चित्र 3: अमरूद के बाग में ड्रिप विधि से सिंचाई

सकते हैं। पौधे के सीधी कतार में फावड़े से धोरे बनाके भी सिंचाई कर सकते है। जब पौधा 2 वर्ष से अधिक हो जाये तो 15–20 दिन के अंतराल में सिंचाई कर सकते है।

पोषण प्रबन्धन

उपरोक्त खाद एव उर्वरकों के अतिरिक्त 0.5 प्रतिशत जिंक सल्फेट, 0.4 प्रतिशत बोरिक एसिड एवं 0.4 प्रतिशत कॉपर सल्फेट का छिड़काव फूल आने के पहले करने से पौधों की वृद्धि एवं अधिक उत्पादन मे सहायता मिलेगी और अगर शुरुआत में पौधे की वृद्धि नहीं होने पर 50 ग्राम यूरिया प्रति पौधा डालना चाहिये जिससे पौधे में वृद्धि जल्दी होती है।

कटाई और छंटाई

पहले साल अमरूद के पौधों को 60 से 90 सेमी. तक सीधा बढ़ने दें। 15 से 20 सेमी. लंबा पौधा होने पर 3 से 4 शाखाएं चुनकर शीर्ष और किनारे की शाखाओं की कटाई और छंटाई करें।

अमरूद की तुड़ाई और उपज

फूल आने के 120 से 140 दिनों बाद अमरूद के फलों की तुड़ाई की जाती है। उस समय फल हरे से हल्के पीलेपन पर आ जाते हैं।

एक पौधे से साल में करीब 400 से 600 फल लिए जा सकते हैं। प्रत्येक फल का वजन 125 से 150 ग्राम तक होता है।

फसल में लगने वाले रोग कीट

अमरूद में रोगों का प्रकोप कम होता है। अमरूद की खेती में लगने वाले प्रमुख रोग व कीटों में उकठा, छाल भक्षक, इल्ली प्रमुख है।

शुरुआत के 3 साल तक अमरुद के बीच कतार में दूसरी खेती करना

जब किसान अमरुद लगाता है तब से तीन साल तक अमरुद के पौधों की कतार में दूसरी खेती जैसे जिसकी लम्बाई कम हो जैसे गेहूँ, चना, सब्जियाँ इत्यादि उगा सकता है जिससे किसान को दो गुना मुनाफा हो जाता है। बरसात के दिनों में अमरुद के खेत में बहुत सारा घास रहता है जिसको किसान काट के हरे चारे के रूप में पशुओ के लिए प्रयोग में ले सकते है।

अमरूद की खेती से कमाई

बाजार में अमरूद की बिक्री में किसी भी प्रकार की समस्या नहीं आती है। किसान को प्रति हैक्टर अमरूद की बागवानी से 3–4 लाख तक की कमाई हो सकती है। अमरुद को मंडी में बेचने से पहली उसकी पैकेजिंग अच्छे से कर लेना अच्छा रहता है। एक पेटी में एक ही आकार के अमरुद रखे जिससे बाजार में बेचने में आसानी होती है। किसान सीधा मंडी में जाकर भी बेच सकता है नहीं तो वो अमरुद के खेत को ठेके पर भी दे सकता है। ठेके पर देने से उसकी मेहनत बच जाती है। अमरुद की खेती से एक छोटा जमीन वाला किसान भी 1–2 लाख प्रति वर्ष कमा सकता है। अंत में हम यही कहना चाहते हैं कि अमरूद की खेती करके आप कम लागत में अधिक मुनाफा कमा सकते हैं। बस ज़रूरत है इसकी बागवानी वैज्ञानिक तरीके से करने की। अमरूद की खेती को शुरू करने के पूर्व विशेषज्ञ की मदद लेकर खेती करें तो आप इसकी खेती से बेहतर उत्पादन और मुनाफा कमा सकते है।

डेयरी अपशिष्ट एवं प्रबंधन

वाई एस जादौन एवं विमला सारण
गुरु अंगद देव पशुचिकित्सा एवं पशुविज्ञान विश्वविद्यालय, लुधियाना

अपशिष्ट वे अनुपयोगी, अवांछनीय, पदार्थ होते हैं, जिनका कोई आर्थिक मूल्य नहीं होता है एवं जिसके निवारण की अवश्यकता होती है। भारत में 0.57 किग्रा/व्यक्ति/दिन कुल अपशिष्ट उत्पन्न होता है। डेयरी अपशिष्ट वे पदार्थ होते हैं, जो जैवअपघटनीय (बायोडिग्रेडेबल) हो, जैसे कि पशुधन अपशिष्ट, भोजन (चारा) अपशिष्ट, मृत पशु अपशिष्ट, आदि। भारतवर्ष में 20वीं पशुधन गणना के अनुसार 535.78 मिलियन पशु है। पशुपालन छोटे, सीमांत किसानों के लिए नियमित आय का एक अनमोल स्रोत है। जिससे गोबर, मूत्र, बचा हुआ चारा आदि सहित पशु मलमूत्र के रूप में अत्यधिक मात्रा में जैविक अपशिष्ट उत्पन्न होता है। पेयजल एवं स्वच्छता मंत्रालय, 2015 के अनुसार, भारत के ग्रामीण क्षेत्रों में जैविक अपशिष्ट का उत्पादन 2018 से 2030 की समयावधि में 109.5 से बढ़कर 125.5 मीट्रिक टन हो जाएगा।

20वीं पशुधन गणना के अनुसार पशुधन में निरंतर वृद्धि एवं उचित प्रबंधन के अभाव में बढ़ते डेयरी अपशिष्ट की समस्या पर्यावरण, मानव, तथा पशुओं सभी के लिए चिंता का विषय बन रही है। क्योंकि एक 400 किग्रा. का वयस्क पशु प्रतिदिन 14–20 किग्रा. गोबर, 14–20 ली. मूत्र उत्सर्जित करता है। इतनी विशाल पशु जनसंख्या के अपशिष्ट का प्रबंधन जिसमें से लाखों तो आवारा पशु है, जोकि, गंभीर विषय है। डेयरी अपशिष्ट मानव एवं पशु स्वास्थ्य दोनों के लिए नुकसानदायक है। वातावरण में बढ़ती अमोनिया, मिथेन, कार्बन डाई ऑक्साइड का उत्सर्जन पृथ्वी के लगातार बढ़ते तापमान के (ग्रीन हाउस प्रभाव) के लिए जिम्मेदार है।

डेयरी अपशिष्ट के उचित संग्रहण, पृथक्करण, प्रबंधन के लिए पशुपालकों को सही मार्गदर्शन एवं प्रशिक्षण की आवश्यकता है, जिससे उनमें जागरूकता, ज्ञान, कौशल एवं आत्मविश्वास में बढ़ोत्तरी होगी। पशुपालकों को डेयरी अपशिष्ट के उचित प्रबंधन के उद्यमिक अवसरों, आशंकाओं, चुनौतियों से अवगत करवाने की अति आवश्यकता है।

डेयरी अपशिष्ट के प्रकार

- ठोस अपशिष्ट; गोबर, खाद्य अवशेष, कृषि अवशेष, चारे के अवशेष आदि।
- द्रव अपशिष्ट; मूत्र, फार्म जल अपशिष्ट आदि।
- गैसीय अपशिष्ट; मिथेन, कार्बन डाई ऑक्साइड, हाइड्रोजन सल्फाइड इत्यादि।

डेयरी अपशिष्ट के प्रबंधन की विधियाँ

पारम्परिक विधियाँ

गोबर का उपयोग खेतों में उर्वरक के रूप में, घरों में घरेलू ईंधन, गोबर उपले इत्यादि के रूप में उपयोग में लिया जाता है।

आधुनिक विधियाँ

गोबर गैस उत्पादन, कम्पोस्टिंग, वर्मीकम्पोस्टिंग, ब्लैक सोल्जर फ्लाई प्रक्रिया, छोटे एवं मध्यम व्यवसाय जैसे पंचगव्य दीया, समिधा इत्यादि द्वारा प्रबंधित किया जाता है।

गोबर गैस संयंत्र

एक प्रकार का अवायवीय (एनेरोबिक) पाचक यंत्र है जोकि जैविक अपशिष्ट का उपचार करता है। गोबर गैस, ऊर्जा का नवीनीकरणीय (रिन्युवेबल) स्रोत है, जो कि एक ज्वलनशील गैस है जो कृषि अवशेष, पशु अवशेष, वानिकी अवशेष, के किण्वन से बनती है, जिसमें मुख्यतः मिथेन, कार्बन डाई ऑक्साइड, हाइड्रोजन सल्फाइड, नमी आदि होते है। इसका उपयोग ऊष्मा और ऊर्जा उत्पादन में करते है। मिथेन के जैव ऊर्जा के रूप में उपयोग से हरित गृह प्रभाव (ग्रीन हाउस प्रभाव) को कम कर सकते है। सामान्यतः बायोगैस निर्माण 0.20–1.11 मी.^{3}/किग्रा. शुष्क ठोस की दर से होता है।

कम्पोस्टिंग

कम्पोस्टिंग एक वायवीय (एरोबिक) प्रक्रिया है जिसमें कार्बनिक अपशिष्ट को सूक्ष्मजीवों जैसे कि जीवाणु, कवक (फंगस) के द्वारा ह्यूमस प्रचूर मृदा (कम्पोस्ट) में अपघटित किया जाता है। ये सूक्ष्मजीवे कार्बन को ऊर्जा के तथा नाइट्रोजन को प्रोटीन के स्त्रोत के रूप में उपयोग लेते है। कार्बन : नाइट्रोजन का 30:01 अनुपात कम्पोस्टिंग के लिए सर्वाधिक उपयुक्त है।

रासायनिक अपघटक

जीवाणु, कवक, प्रोटोजोआ तथा भौतिक अपघटक. चींटियां, केंचुए, मक्खियाँ, घोंघे, खटमल इत्यादि है। इस कम्पोस्ट का उपयोग खेतों में प्राकृतिक खाद के रूप में उपयोग कर सकते है, जिससे रासायनिक उर्वरक अवशेष की मात्रा मृदा में कम होगी और मृदा की उपजाऊ क्षमता (फर्टिलिटी) बढ़ेगी।

वर्मीकम्पोस्टिंग

केंचुआ खाद एक पोषक पदार्थों से भरपूर जैव उर्वरक है जो कि कार्बनिक अपशिष्ट के सूक्ष्मजीवों, लालकृमिओं, केंचुओं

द्वारा विघटन से निर्मित होती है। वर्मीकम्पोस्ट केंचुए का उत्सर्जित पदार्थ है जो मृदा की भौतिक, रासायनिक, जैविक गुणवत्ता में वृद्धि करता है।

ब्लैक सोल्जर फ्लाई प्रक्रिया

जैविक वायवीय (एरोबिक) प्रक्रिया जिसमें इस मक्खी के लार्वा द्वारा कार्बनिक अपशिष्ट को कीट (इंसेक्ट) लार्वा वसा, प्रोटीन तथा उपचारित कार्बनिक अपशिष्ट अवशेष में परिवर्तित किया जाता है। लार्वा में 35% प्रोटीन, 30% वसा होती है। इस प्रक्रिया द्वारा 80: तक अपशिष्ट को कम किया जा सकता है। इस लार्वा का पशुआहार में मत्स्य चूर्ण के आंशिक पूरक की तरह उपयोग कर सकते हैं।

पशुधन अपशिष्ट (गोबर और गोमूत्र) आधारित व्यवसाय

पूजन सामग्री– पंचगव्य दीया, अगरबत्तियाँ, हवन सामग्री, गोबर गणेश, हवन कप, धूप बत्ती।

घरेलू उत्पाद– उपला, बर्तन मार्जक, वैदिक प्रलेप, शौचालय स्वच्छक, पंचगव्य साबुन, दंत मंजन, शैम्पू ।

औषधीय उत्पाद– नेत्र ज्योति , रस मृत, पंचामृत, मधुमेह चूर्ण, दर्द निवारक तेल, नारी प्रियदर्शनी, च्यवनप्राश, गो अर्क

इस प्रकार के व्यवसाय आधुनिक समाज में बेरोजगार ग्रामीण युवाओं की आजीविका के स्तोत्र बन सकते है, साथ ही भारत सरकार की मुहिम किसानों की आय को दोगुना करने में भी सहयोग देंगे। इन तकनीकों के उपयोग से अपशिष्ट प्रबंधन को लाभप्रद एव सुचारु रूप से किया जा सकता है।

जैविक अपशिष्ट के प्रबंधन के लाभ

- पर्यावरण प्रदूषण में कमी ।
- कार्बनिक अपशिष्ट का पुनः उपयोग ।
- मृदा की उर्वरता में बढ़ोत्तरी, रसायनिक खाद के उपयोग में कमी ।
- वर्मी कम्पोस्ट के उपयोग से पादप वृद्धि, जल धारण क्षमता, मृदा सरंध्रता में सुधार होता है, साथ ही पादप संक्रमण में कमी भी होती है।
- अपशिष्ट परिवहन की कीमत में कमी ।
- दैनिक आय में वृद्धि।
- जैव ईंधन में वृद्धि ।
- मानव व पशु के स्वास्थ्य स्तर में सुधार ।
- ग्रीन हाउस गैसों के उत्सर्जन में कमी ।
- नए व्यवसाय के स्त्रोत में वृद्धि ।

जैविक अपशिष्ट प्रबंधन के अभाव के नुकसान

- जलवायु परिवर्तन, वायु प्रदूषण होना ।
- अधिक श्रम तथा प्रबंधन लागत।
- मृदा एवं जल का रोगकारकों से संक्रमण ।
- ग्रीन हाउस गैसें जैसे कि, मिथेन, कार्बन डाईऑक्साइड, इत्यादि का अत्यधिक उत्सर्जन ।
- संक्रमण की दर में वृद्धि ।
- मृदा एवं जल प्रदूषण में वृद्धि ।
- बायो मेडिकल अपशिष्ट से पशु के स्वास्थ्य को नुकसान
- मृदा के प्राकृतिक पोषक तत्वों में कमी ।
- स्वच्छता की कमी ।

निष्कर्ष

डेयरी अपशिष्ट का प्रबंधन बहुत मुश्किल काम नहीं है, लेकिन नियामक निकायों (रेगुलेटरी बॉडीज) से सख्त निर्देश की आवश्यकता है, जहाँ ये डेयरी फार्म, उर्वरक विभाग, कृषि मंत्रालय द्वारा ठोस अपशिष्ट प्रबंधन नियम, 2016 के तहत पंजीकृत हैं। कृषि विज्ञान केंद्र किसानों के लिए जागरूकता कार्यक्रमों के माध्यम से जैव अपशिष्ट प्रबंधन में मदद कर सकता है। डेयरी अपशिष्ट प्रबंधन के प्रति किसानों की व्यवहार्यता, बाधाओं, संभावनाओं और उद्यमशीलता उन्मुखीकरण पर ध्यान केंद्रित करते हुए पशुपालन आधारित डेयरी अपशिष्ट प्रबंधन तकनीकों के विभिन्न पहलुओं के सम्बंध में एक वास्तविक विश्लेषण किए जाने की आवश्यकता है। साथ ही, पशुपालकों की जरूरतों के लिए क्षेत्र केंद्रित प्रबंधन प्रणाली और वैज्ञानिक तर्ज पर मौजूदा क्षमता का दोहन करने के लिए पशुपालन आधारित अपशिष्ट प्रबंधन तकनीकों को बढ़ावा देने के लिए डेयरी अपशिष्ट प्रबंधन आधारित विकास योजनाओं को तैयार करने की आवश्यकता है। जिससे किसानों के रोजगार के अवसरों में तथा आय में बढ़ोत्तरी होगी, और किसानों तथा देश के आर्थिक विकास में सहयोग मिलेगा ।

चमत्कारी फलः ड्रैगन फ्रूट

ज्योति सिंह[1], जोगिन्द्र सिंह[1] एवं विकास कुमार[2]
[1]बागवानी प्रशिक्षण संस्थान, करनाल
[2]भाकृअनुप–राष्ट्रीय डेरी अनुसंधान संस्थान, करनाल

ड्रैगन फ्रूट का वैज्ञानिक नाम हिलोकेरेस अंडटस है। यह दक्षिण अमेरिका में पाया जाता है। यह कैक्टस परिवार कैक्टैसी की चढ़ाई वाली बेल है, जो कैक्टेसिया फैमिली से संबंधित है।

ड्रैगन फ्रूट दो प्रकार का होता है– सफेद गूदे वाला और लाल गूदे वाला। खास यह है कि इसके फूल बहुत ही सुगंधित होते हैं, जो रात में ही खिलते हैं और सुबह होने तक झड़ जाते हैं। इसके गुणों और फायदों को देखते हुए अब इसे पटाया, क्वींसलैंड, पश्चिमी ऑस्ट्रेलिया और न्यू साउथ वेल्स में भी उगाया जाने लगा है। इसका उपयोग सलाद, मुरब्बा, जेली और शेक बनाकर किया जा सकता है। यह रोपण के दूसरे वर्ष में फलों के उत्पादन के साथ एक संभावित तेजी से लौटने वाली फल फसल है।

यह रोपण के दूसरे वर्ष में फलों के उत्पादन के साथ एक संभावित तेजी से लौटने वाली फल फसल है। इसे एशिया में ड्रैगन फ्रूट के रूप में जाना जाता है क्योंकि इसकी त्वचा

तालिका 1. ड्रैगन फ्रूट और ड्रैगन फ्रूट जूस का पोषण मूल्य

टोटल फैट (कुल वसा)	0.61 ग्रा.
प्रोटीन	0.229 ग्रा.
ऐशेज	0.68 ग्रा.
पानी	83.0 ग्रा.
पोटैशियम	436 मि.ग्रा.
कैल्शियम	8.8 ग्रा.
कोलेस्ट्रॉल	0 मि.ग्रा.
फाइबर	0.9 ग्रा.
कैलोरी	99

खांचे से ढकी होती है। यह एक छोटा फल चढ़ने वाला कैक्टस है जिसे अपने बड़े, सुगंधित, रात में खिलने वाले फूलों के लिए एक सजावटी पौधे के रूप में दुनिया भर में मान्यता मिली है। यह एक गैर–क्लाइमेक्टेरिक फल है जो गुलाबी–लाल त्वचा के साथ हरे रंग की तराजू से ढका होता है और इसके सफेद मांस में कई छोटे काले बीज के तराजू होते हैं जैसे ड्रैगन। यह मुंह में पानी लाने वाला हल्का मीठा स्वाद, एक तीव्र आकार और रंग है। ड्रैगन फ्रूट का बाजार भाव रु.200–250 / किग्रा हैं।

इसमें विभिन्न पोषक तत्वों के साथ बहुत सारा पानी और अन्य महत्वपूर्ण खनिज भी होते हैं ड्रैगन फ्रूट में 0.20–1.04% पेक्टिन होता है, इसलिए इसके जैम और जेली में आमतौर पर अतिरिक्त पेक्टिन की आवश्यकता होती है। इसका पीएच 4.7–5.1 ब्रिक्सः 11–19 डिग्री ब्रिक्स है इसमें विटामिन सी और पानी में घुलनशील विटामिन और फाइबर का एक बड़ा स्रोत है

ड्रैगन फ्रूट के स्वास्थ्य लाभ

- यह फ्लेवोनोइड्स, फेनोलिक एसिड और बीटासायनिन जैसे एंटीऑक्सिडेंट से भरपूर है। ये प्राकृतिक पदार्थ आपकी कोशिकाओं को मुक्त कणों से क्षति से बचाते हैं– अणु जो कैंसर और समय से पहले बूढ़ा होने जैसी बीमारियों को जन्म दे सकते हैं।
- यह स्वाभाविक नाश्ता बनाता है क्योंकि यह आपको भोजन के बीच अधिक समय तक भरा हुआ रखने में मदद कर सकता है।
- यह आपके रक्त शर्करा को कम करने में मदद कर सकता है। शोधकर्ताओं का कहना है कि यह आंशिक रूप से हो सकता है क्योंकि यह आपके अग्न्याशय में क्षतिग्रस्त कोशिकाओं को बदल देता है जो इंसुलिन बनाते हैं, वह हार्मोन जो आपके शरीर को चीनी को तोड़ने में मदद करता है।
- यह आपके इम्यून सिस्टम को मजबूत कर सकता है। ड्रैगन फ्रूट विटामिन सी और अन्य एंटीऑक्सीडेंट से भरपूर होता है, जो आपके इम्यून सिस्टम के लिए अच्छा होता है।

ड्रैगन फ्रूट का स्वास्थ्य जोखिम

ड्रैगन फ्रूट आम तौर पर खाने के लिए सुरक्षित होता है, हालांकि अध्ययनों ने अलग–अलग एलर्जी प्रतिक्रियाओं की सूचना दी है। लक्षणों में जीभ की सूजन, पित्ती और उल्टी शामिल हैं। इस प्रकार की प्रतिक्रिया अत्यंत दुर्लभ प्रतीत होती है।

ड्रैगन फ्रूट की खेती के लिए आवश्यक जलवायु

ड्रैगन फ्रूट की खेती के लिए उष्णकटिबंधीय मौसम की स्थिति बेहतर होती है। ड्रैगन फ्रूट की खेती 50 सेमी की वार्षिक वर्षा वाले क्षेत्रों में भी हो सकती है। इसके लिए 20 डिग्री सेल्सियस से 30 डिग्री सेल्सियस तापमान उपयुक्त माना जाता है। ड्रैगन फ्रूट की फसल के लिए तेज धूप की जरूरत नहीं होती है। इसलिए इसकी फसल को तेज विधि से बचाने के लिए शेड का इस्तेमाल किया जाता है।

ड्रैगन फ्रूट की खेती के लिए मिट्टी

ड्रैगन फ्रूट की खेती में अधिकतर बलुई दोमट या मिट्टी की दोमट आवश्यकता हो सकती है. ड्रैगन फ्रूट की खेती के लिए रेतीली मिट्टी बेहतर होती है। इसकी खेती करने के खेत की अच्छे से जुताई करनी चाहिए और खरपतवार से मुक्त होनी चाहिए। इसकी खेती के लिए मिट्टी का पीएम मान 5.5 से 7 के बीच होना चाहिए।

ड्रैगन फ्रूट की रोपाई

ड्रैगन फ्रूट की रोपाई से दो दिन पहले मदर ड्रैगन पौधों को 20 सेमी की लंबाई में काट लें और लगाने से पहले इस कटिंग पीस को सूखे गोबर, ऊपरी मिट्टी और रेत के मिश्रण के साथ 1:1:2 के अनुपात में एक बर्तन में रखें। इन कटे हुए टुकड़ों से धूप से बचें। प्रत्येक पौधे को उनके बीच 2 मीटर 2 मीटर की जगह रखें और 60 सेमी 60 सेमी 60 सेमी आकार के गड्ढे में लगाएं। साथ ही इस गड्ढे को 100 ग्राम सुपर फास्फेट खाद से भर दें। पौधे के समुचित विकास और विकास के लिए कंक्रीट या लकड़ी के स्तंभोंका सहारा लें।

ड्रैगन फ्रूट की खेती के उर्वरक

ड्रैगन फ्रूट के प्रत्येक पौधे को अच्छी तरह से विकसित होने के लिए 10 से 15 किलोग्राम जैविक खाद या जैविक खाद की आवश्यकता होती है। ड्रैगन फ्रूट की खेती में पौधे के बेहतर विस्तार और विकास के लिए जैविक खाद या उर्वरक मुख्य भूमिका निभा सकते हैं।

ड्रैगन फ्रूट के कार्यिकी विकार

- चिलिंग यांत्रिक चोट और पानी की कमी तीन प्रमुख विकार हैं ड्रैगन फ्रूट का।
- यांत्रिक चोट से धँसा क्षेत्रों का विकास होता है। अधिक परिपक्व फल यांत्रिक क्षति के प्रति अधिक संवेदनशील होते हैं।
- फूल आने के 35 दिनों से अधिक समय से फलों में विभाजन एक समस्या है जिसमें पकने के दौरान वर्षा या अत्यधिक सिंचाई होती है।
- अन्य लक्षणों में नरम होना, मुरझाना।
- ये लक्षण एच. अंडटस और एच. पॉलीहिज़स फल पर 2 सप्ताह के लिए 6 डिग्री सेल्सियस पर तेजी से विकसित होते हैं और फिर 20 डिग्री सेल्सियस पर स्थानांतरित हो जाते हैं।
- फूल आने के 25 दिन बाद काटे गए फल द्रुतशीतन (6से 7 दिन) के प्रति अधिक संवेदनशील होते हैं; फूल आने के 30 से 35 दिनों (6 से 7 दिन) में फलों की कटाई करने पर संवेदनशीलता काफी कम हो जाती है।
- शुष्क मौसम (फरवरी–जून, अक्तूबर–दिसम्बर) में जब बादल सबसे कम होते हैं तो सन बर्न एक विशेष समस्या होती है। प्रारंभिक लक्षण सूर्य के सीधे संपर्क में आने वाले क्लैडोड सतहों पर पीले धब्बे के रूप में दिखाई देते हैं। शुरुआती लक्षणों को कभी–कभी पोषक तत्वों की कमी समझ लिया जाता है। गीले मौसम की शुरुआत में क्षतिग्रस्त ऊतक को सैप्रोफाइटिक और संभावित परजीवी कवक की एक श्रृंखला द्वारा उपनिवेशित किया जाता है जो समस्या की स्पष्ट गंभीरता को बढ़ाते हुए क्षतिग्रस्त क्लैडोड को तोड़ देता है।

ड्रैगन फ्रूट का बैगिंग

- बैगिंग कीटों, विशेष रूप से फल मक्खियों को फलों को खोजने और नुकसान पहुंचाने से रोकता है। बैग यांत्रिक चोटों (निशान और खरोंच) से शारीरिक सुरक्षा प्रदान करता है और मादा मक्खियों की गतिविधियों, लेटेक्स जलने और फलों पर फंगल स्पॉट को रोकता है।
- फलों की विशेषताओं पर बैगिंग के प्रभावों और भौतिक फलों के संरक्षण में इसकी भूमिका की जांच तीन पपीते किस्मों में की गई; वियतनाम व्हाइट (वीएन–व्हाइट), चुची लियू (हायलोसेरस अंडेटस) और चाओज़ो 5 (हायलोसेरस एसपी)।
- ड्रैगन फ्रूट में चार प्रकार के बैग उपयोग होते हैं। पेपर–व्हाइट बैग, नेट स्क्रीन–ब्लैक बैग, पॉलीइथाइलीन प्लास्टिक–ब्लैक बैग, पॉलीइथाइलीन प्लास्टिक–व्हाइट बैग।

ड्रैगन फ्रूट की कटाई

- फलों के हरे रंग से लाल रंग में बदलने के बाद, कटाई शुरू हो सकती है
- सर्दियों में, फूल आने के लगभग 30 दिनों के बाद रंग टूट जाता है और फल 33–34 दिनों में काटे जाते हैं।
- गर्मियों में, लगभग 26 दिनों में रंग टूट जाता है और 30 दिनों बाद पर तुड़ाई होती है।

केसर : सघन पौध रोपण द्वारा आय सृजन

प्रदीप कुमार सिंह
शेर–ए–कश्मीर कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, शालीमार, श्रीनगर

केसर में सघन पौध रोपण का तात्पर्य है अधिक पौध की प्राप्ति करना जबकि समान्यतः सामान्य तौर की पौध रोपण विधि द्वारा केसर का उत्पादन बहुत कम होता है एवं पुष्प की प्राप्ति सघन विधि में अधिक होती है। यह तकनीक विश्व के अन्य देशों में जैसे ईरान एवं स्पेन में बहुत पहले से प्रचलित है और इस तकनीक के द्वारा आय प्रथम वर्ष से ही अधिक हो जाती है। जम्मू एवं कश्मीर में 2010 के पहले तक केसर की गुणवत्ता से युक्त कोर्म की बहुत कमी थी एवं प्रसंस्करण की कड़ी में भी बहुत कमी थी। 2010 के बाद से केसर के कंद अथवा कोर्म पर अधिक ध्यान दिया गया एवं मशीनीकरण के द्वारा केसर गुणों से भरपूर प्राप्त होने लगा। विश्वविद्यालय द्वारा प्रशिक्षित 12000 केसर की खेती करने वाले किसानों को राष्ट्रीय केसर मिशन योजना के अंतर्गत 2000 हैक्टर खेत पर सुधार करके नई तकनीक अपनाकर गुणवत्तायुक्त केसर का उत्पादन करने लगे। प्रति हैक्टर उत्पादन अधिक गुणवत्ता युक्त कोर्म 10–15 मीट्रिक टन मिश्रित ग्रेड के कोर्म पैदा किया जाने लगा। सघन पौध रोपण विधि द्वारा केसर उत्पादक किसान को कोर्म अधिक मात्रा में मिलने लगा जिसके कारण किसान भाइयों को अधिक लाभ प्राप्त होने लगा। केसर की खेती से अधिक लाभ प्राप्ति के लिए केसर को सामान्य विधि द्वारा 5 लाख कोर्म प्रति हैक्टर की आवश्यकता तब पड़ती है जब कोर्म का प्रति भार 8 ग्राम से अधिक हो। इसके अलावा निर्भर करता है किस श्रेणी का कोर्म का चयन किया गया है। इस प्रकार की प्रक्रिया द्वारा

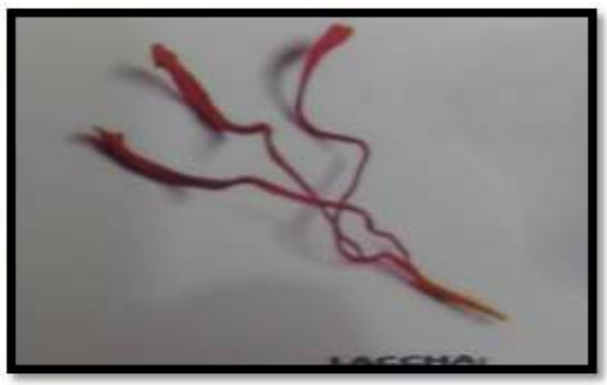

चित्र 1 : लच्छा केसर

अच्छा पुष्प उत्पादन किया जा सकता है और केसर की अधिक मात्रा में प्राप्ति की जा सकती है। जबकि 8 ग्राम से अधिक भार के कोर्म का उपयोग करने पर 60 प्रतिशत तक एवं 8 ग्राम के अंदर के श्रेणी के कोर्म को उपयोग करने पर 40 प्रतिशत तक ही पुष्प का उत्पादन हो सकता है। सघन विधि के द्वारा यदि 8 ग्राम की श्रेणी के अंतर्गत कोर्म का चयन करते हैं तो उत्पादन 60 प्रतिशत से अधिक एवं छोटे कोर्म (6–8 ग्राम) का उपयोग करें तो 40 प्रतिशत तक उत्पादन प्राप्त किया जा सकता है।

कश्मीरी केसर अपने विशेष गुणों के कारण विश्व में प्रचलित है। केसर में मुख्य रूप से आकर्षक रंग एवं गंध अथवा सुगंध के लिए जिम्मेदार क्रोसिन एवं सेफरानॉल तत्व होते हैं। कश्मीरी केसर में गाढ़ा लाल रंग और बैंगनी रंग से युक्त होने के कारण केसर से अधिक सुगंध महक एवं रंग प्रभावित होता है। कश्मीर में बाज़ार में उपलब्ध दो प्रकार के केसर उपलब्ध हैं। प्रथम लच्छा केसर (केसर अपने पुंकेसर के साथ) एवं दूसरा मोगरा केसर (केसर बिना पुंकेसर के)। कश्मीर में केसर की तुड़ाई एवं तुड़ाई उपरांत गतिविधियों के कारण प्राचीन पद्धति से होने के कारण केसर के पुराने पुष्प एवं गुणवत्ता में गिरावट रहती है। कश्मीरी केसर की गुणवत्ता के मानक पर ईरानी केसर से बाज़ार में कड़ी प्रतिस्पर्धा रहती है। प्राकृतिक रूप से कश्मीर का वातावरण अच्छा एवं अनुकूल रहता है जिसके कारण बाज़ार में ईरान के केसर की मांग कम रहती है तथा कश्मीरी केसर गुणवत्ता में सर्वोतम रहता है। अनुकूल वातावरण एवं अच्छी प्रकृति के कारण केसर खेत में अच्छी तरह से प्रदर्शन करता है परंतु वर्तमान समय में आवश्यकता इस बात की है कि तुड़ाई उपरांत प्रक्रिया में आधुनिक तकनीक का भरपूर उपयोग हो जिसके

चित्र 2: मोगरा केसर

फलस्वरूप केसर की गुणवत्ता में अधिक सुधार हो सके।

फूलों की तुड़ाई सघन पौध तकनीक के कारण केसर के फूलों की संख्या प्रति इकाई क्षेत्र की वजह से अधिक प्राप्त होते हैं। फूलों की तुड़ाई सदैव प्रातःकाल के समय में करनी

चित्र 3: सघन पौध रोपण

चित्र 4: सामान्य पौध रोपण

चाहिए। सुबह के समय में ओस की बूंद रहने के कारण तुड़ाई की प्रक्रिया में रुकावट आती है एवं फूलों की तुड़ाई धीमी गति से होती है। किसान फूलों की तुड़ाई सूर्योदय के बाद करते हैं। उस समय तक फूल पूर्ण रूप से खिल जाते हैं। सूर्य की किरण तेज होने से ओस केसर के रंग को कम करती है परिणामस्वरूप केसर के रंग की गुणवत्ता में कमी आ जाती है। दूसरा कारण फूल के खिलने से सेल्फ लाइफ में कमी आने लगती है एवं पुंकेसर अलग करने की दर में वृद्धि हो जाती है एवं फूल से पुंकेसर को अलग 10–12 घंटों में ही करना आवश्यक हो जाता है जो कि एक जटिल प्रक्रिया है वो भी तब जब फूलों में पुंकेसर की संख्या अधिक रहती है इस प्रकार की समस्या से बचने के लिए किसानों को फूल खिलने की अवस्था से पूर्व अर्थात् कली की दशा में जहां पर सघन पौध रोपण किया गया हो। कली की दशा में तुड़ाई करने से ना केवल हमको अधिक उच्च गुणवत्ता से युक्त केसर प्राप्त होगी अपितु पुंकेसर को पुष्प से अलग करने के लिए पर्याप्त समय मिल जाता है जिसके परिणाम–स्वरूप पुंकेसर की सेल्फ लाइफ बढ़ जाती है।

फूलों की तुड़ाई 2 दिन पुराने होने पर टोकरी में सुबह के समय करते हैं।

सघन पौधों में अच्छे प्रकार से अन्तः सस्य क्रियाएँ/फूलों की तुड़ाई फूलों के खिलने से पूर्व सूर्योदय के समय करनी चाहिए । पुंकेसर पृथक्करण कश्मीर में केसर के पुष्प खिलने तक पुंकेसर अलग करने का कार्य घर के सदस्य ही अधिकतर करते हैं जोकि प्रतिभाशाली कार्यकर्ता नहीं होते हैं। जिसके कारण इस प्रक्रिया में विलम्ब हो जाता है। जबकि खेत में पुष्प उत्पादन ज्यादा रहता है। यदि पुंकेसर को पुष्प खिलने से 10–12 घंटे में अलग नहीं किया गया तो पुष्प में श्वसन दर बढ़ने से पुंकेसर चेफ जैसी अवस्था में परिवर्तित हो जाता है। जिसके फलस्वरूप पुंकेसर की दर 37.33 ग्राम प्रति किलोग्राम हो जाता है। जबकि केसर के पुष्प से शुद्ध केसर 22 ग्राम प्रति किलोग्राम तक ही प्राप्त होता है। पुष्प खिलने से पूर्व श्वसन दर कम रहती है। परिणामस्वरूप फूलों की सेल्फ लाइफ अच्छी रहती है। श्वसन दर की प्रक्रिया फूल खिलने से लेकर 24 घंटे तक बनी रहती है। अतः पुंकेसर अलग करने की प्रक्रिया पुष्प पूर्ण रूप से खिलने से पूर्व 24 घंटे के अंदर पूर्ण कर लेना चाहिए। यदि पुष्प से पुंकेसर अलग करने की प्रक्रिया 10 घंटे के अंदर करने पर 33 ग्राम तक केसर प्राप्त कर सकते हैं। 10 – 24 घंटे के अंदर पुंकेसर अलग करने पर 32 ग्राम एवं 48–72 घंटे में पुंकेसर अलग करने पर मात्र 12 ग्राम तक केसर प्राप्त होता है। अतः निष्कर्ष यही है कि केसर की उत्पादन क्षमता में समय पर किया गया कार्य प्रभावित करता है इसलिए समय का विशेष ध्यान रखना आवश्यक होता है।

चित्र 5: सघन पौध तकनीक कली की दशा में तुड़ाई

सामान्य विधि द्वारा पौध रोपण में अन्तः सस्य क्रियायें दृ पुंकेसर को पुष्पों से अलग करने के लिए 2 दिन पुराने फूल को उपयोग में लाते हैं एवं पुंकेसर को पुष्प से अलग करने की प्रक्रिया 10–12 घंटों के अंदर पूरी कर लेनी चाहिए। सघन विधि द्वारा पौध रोपण में अन्तः सस्य क्रियायें/पुंकेसर को पुष्प से अलग करने के लिए बिना खिले हुए पुष्प का प्रयोग करते हैं एवं पुंकेसर को पुष्प से अलग करने की प्रक्रिया 24 घंटे के अंदर पूरी कर लेनी चाहिए।

चित्र 6: पुंकेसर को पुष्प से अलग करने के लिए बिना खिले हुए पुष्प

पुराने फूल में पुंकेसर को पुष्प से अलग करने में विलम्ब

केसर को सुखाना/तुड़ाई उपरांत प्रक्रिया में केसर खासतौर से सुखाने की प्रक्रिया बहुत जटिल एवं महत्वपूर्ण हैं क्योंकि गुणों से युक्त केसर की प्राप्ति इसी के द्वारा संभव है। केसर में क्रोसिन (रंग), पिक्रोक्रोसिन (स्वाद) एवं सेफरानाल (सुगंध) की प्राप्ति के लिए दूसरे स्तर पर उपापच्य की आवश्यकता पड़ती है। केसर को सुखाने की प्रक्रिया में तुड़ाई उपरांत गतिविधियों की आवश्यकता होती है एवं *क्रोकस स्टाइवस* एल के पुंकेसर को मसाले वाले केसर के रूप में प्रसंस्करण के द्वारा क्रोसिन से क्रोसेटिन के रूप में परिवर्तित हो जाते हैं। कश्मीर में क्रोसिन से क्रोसेटिन के रूप में परिवर्तन होने पर केसर की गुणवत्ता में कमी आती है क्योंकि किसान केसर को सुखाने के लिए छायादार स्थान खोजते हैं एवं उस स्थान पर रख देते हैं अथवा केसर के फूल को सुखाने के लिए खुले स्थान पर सूर्य की रोशनी में सूखते हैं। यह प्रक्रिया लंबी प्रक्रिया है करीब 53 घंटे लगते हैं जिसके कारण गुणवत्ता में गिरावट आ जाती है। सुखाने की प्रक्रिया के दौरान पुंकेसर के भर में 80 प्रतिशत तक की कमी आ जाती है। केसर में आवश्यकतानुसार गुण प्राप्त करने के लिए सुखाने की प्रक्रिया फिर वो चाहे प्राकृतिक रूप से अथवा रासायनिक रूप से हो, रसायन की मदद से बहुत महत्वपूर्ण है। इस प्रकार की प्रक्रिया के लिए दोनों प्रकार की विधियाँ परिरक्षण के लिए उपयुक्त है। न्यूनतम नमी के कारण कम से कम 10–12% कीमत तक इसका निर्धारण अंतरराष्ट्रीय स्तर पर आईएसओ 3632 (1) की श्रेणी में इसका निर्धारण होता है।

केसर में सुरक्षित रूप में नमी का स्तर बनाए रखना पुरानी विधियों द्वारा संभव नहीं है क्योंकि प्राचीन तकनीक का प्रयोग करने पर पिग्मेंट में कमी आ जाती है, जिसके कारण केसर की गुणवत्ता में कमी रहती है। विश्वविद्यालय द्वारा विकसित की गई तकनीक के कारण केसर को सुखाने से कश्मीरी केसर की प्रसिद्धि विश्व में बढ़ी है। कश्मीरी केसर को विश्व स्तर पर आईएसओ की श्रेणी–1 में रखा गया है।

सामान्य विधि द्वारा प्राप्त केसर में सुखाने की प्रक्रिया

सूखे केसर को 2 दिन पुराने फूल से प्राप्त करते हैं जब तापमान का औसत स्तर 50–60 डिग्री सेल्सियस गरम हवा के साथ, सूर्य की रोशनी में, बिजली की मदद से अथवा वैक्यूम ड्रायर द्वारा प्रयोग में लाते हैं।

सघन विधि द्वारा प्राप्त केसर में सुखाने की प्रक्रिया

बिना खिले हुए फूल के पुंकेसर को सुखाने में तापमान का स्तर 60° सेल्सियस गरम हवा के साथ, सूर्य की रोशनी द्वारा, बिजली द्वारा या वैक्यूम ड्रायर द्वारा संरक्षित नमी का स्तर 10–12% बनाये रखते हैं। सुखाने के लिए तापमान भिन्न–भिन्न रखना पड़ता है क्योंकि पुंकेसर में नमी बिना खिले हुए फूलों में अधिक रहती है जबकि खुले हुए फूलों में नमी का स्तर बहुत कम होता है।

पैकजिंग एवं संरक्षण

केसर के पुंकेसर आता फ़िलामेंट को काट कर पाउडर के रूप में सूखे, साफ, अच्छी तरह से पैकट में पैक करके सील करते हैं। इस प्रकार से पैकट में केसर रखने से इसके गुणों में बाहरी वातावरण का कोई प्रभाव नहीं पड़ता है। इसकी मदद से केसर सुरक्षित रहते हैं एवं बाहरी तत्वों से बिल्कुल भी प्रभावित नहीं होते हैं। पैकेजिंग द्वारा खाद्य पदार्थ अथवा उपयोग में लाने वाले केसर उत्पाद अच्छे स्तर के और वातावरण द्वारा प्रभावित नहीं होते हैं।

पैकेट पर स्टिकर

राष्ट्रीय स्तर पर नियम के अनुसार आज़ादी से अपना सामान बेचने के लिए कुछ आवश्यक नियमों को ध्यान में रख कर पैकेट बनाने चाहिए।

उत्पादक का नाम पता और जहां आवश्यक हो वहाँ पर अपना ट्रेड मार्क अवश्य लगाएँ।

- बैच नंबर
- कुल भार
- उत्पाद का श्रेणीकरण जैसे आईएसओ 3632
- उत्पादक देश
- प्रयोग करने के लिए उपयुक्त तारीख एवं अनुपयुक्त
- संरक्षित करने की विधियाँ
- अन्य जानकारियां खरीददार के लिए जैसे फसल का तुड़ाई वर्ष एवं पैकेजिंग की तारीख (यदि ज्ञात हो)
- सम्बन्धित भाग आईएसओ 3632 (आईएसओ–1:2011)
- उत्पाद बनने की तारीख

उपर्युक्त जानकारियाँ एवं भाग में दी गई जानकारियाँ समझौता पत्र में खरीददार एवं बेचने वाले के बीच में स्पष्ट रूप से होती है। यदि काँच के जार में केसर बाज़ार में भेजना है तो उसके ऊपर फ्रेजाइल लिखा होना चाहिए ताकि उसको संभालकर पहुंचाया जा सके।

सघन पौध रोपण के लाभ

सघन पौध रोपण के अन्तर्गत, केसर उत्पादक की कुल लागत 19,86,368 रूपये तक होता है। कुल 4 वर्षो के लिए इसके अन्तर्गत विभिन्न मद में पैसे खर्च होते हैं जैसे कोर्म्स अथवा कंद के लिए (रुपये 10,94.400) ऊर्जा के लिए (25,000), पोषक तत्वों के लिए/बचाव हेतु (2,56,968) एवं श्रमिक के लिए (6,10,000) उत्पादक को लाभ के हिसाब से (1,05.03,000) जिसके एवज में उसकी बिक्री 47.52 किलोग्राम केसर बिकती है कुल 4 वर्षो में जिसके हिसाब से (71,28,000) एवं बेचने पर 250 कुंतल केसर के कोर्म को 4 साल तक बेचने के बाद उसको लाभ (33,75,000) तक प्राप्त होता है। जबकि सामान्य विधि द्वारा केसर लगाने से किसान की कुल लागत (9,28,560) आती है। किसान को इससे कुल लाभ (46,35,000) प्राप्त होता है जिसमें केसर की कुल बिक्री 25.5 किलोग्राम केसर का लाभ (38,25,000) एवं (8,10,000) रुपये का लाभ होता है केसर के कोर्म 60 कुंतल बेचने के बाद। अनुमानित लाभ केसर एवं उसका कोर्म बेचने के बाद किसान को कुल लाभ 1.50 लाख रुपये प्रति किलोग्राम एवं 13,500 प्रति कुंतल प्राप्त होता है।

सघन पौध रोपण द्वारा कुल लाभ 85,16,632 तक प्राप्त हो जाता है जिसका लाभः लागत का अनुपात 4.28:1 तक होता है जिसमें शुद्ध लाभ 37,06,440 तक प्राप्त होता है। जबकि सामान्य विधि द्वारा केसर उत्पादन द्वारा लाभः लागत का अनुपात 3.99:1 तक ही प्राप्त होता है। केसर की सघन विधि द्वारा औसत उत्पादकता 11.88 किलोग्राम प्रति हैक्टर तक प्राप्त होती है जबकि सामान्य विधि द्वारा केसर की उत्पादकता 6.37 किलोग्राम प्रति हैक्टर प्राप्त होती है।

शिक्षा एवं कृषिः महिला सशक्तिकरण के स्तंभ

मधु पटियाल, रूचि चौहान एवं के के प्रमाणिक
भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान क्षेत्रीय केंद्र, टुटीकंडी, शिमला

"लोगों को जगाने के लिए महिलाओं का जागृत होना जरुरी है और एक बार जब महिलाएं अपना कदम उठा लेती है तब परिवार आगे बढ़ता है, गाँव आगे बढ़ता है और राष्ट्र विकास की ओर उन्मुख होता है"

– पंडित जवाहर लाल नेहरु

'सशक्तिकरण' का अर्थ किसी व्यक्ति की उस योग्यता से है जिसमें वह अपने जीवन से जुड़े सभी निर्णय स्वयं ले सके। 'महिला सशक्तिकरण' में महिलाओं की क्षमता की बात करते हैं, जहाँ महिलाएँ परिवार और समाज के सभी बंधनों से मुक्त होकर अपने निर्णय की निर्माता खुद होती हैं। महिलाएं पुरूषों से हर कार्य में कंधे से कन्धा मिलाकर बेहतर काम करती हैं। महिला सशक्तिकरण, महिलाओं की ताकत और कौशल को उनकी दुखदाई स्थिति से ऊपर उठाने पर केंद्रित करती है और साथ ही साथ महिलाओं की शिक्षा, और पुरूषों में महिलाओं के प्रति बराबरी और सम्मान पैदा करने की आवश्यकता पर ज़ोर देती है। महिला सशक्तिकरण उन्हें शिक्षा, रोजगार, आर्थिक तरक्की में बराबरी के मौके मिलने पर केन्द्रित है जिससे वह सामाजिक स्वतंत्रता और तरक्की प्राप्त कर सकें। यह वह तरीका है, जिसके द्वारा महिलाएँ भी पुरूषों की तरह अपनी हर आकांक्षाओं को पूरा कर सके। समाज में उनके वास्तविक अधिकार को प्राप्त करने के लिए उन्हें सक्षम बनाना ही महिला सशक्तिकरण है।

शिक्षाः महिला सशक्तिकरण की नींव

नारी सशक्तिकरण का अर्थ है नारी का शिक्षा–करण। शिक्षा, महिला सशक्तिकरण में मील का पत्थर है क्योंकि शिक्षा उन्हें उनकी पारंपरिक जिन्दगी में चुनौतियों और परिवर्तन का सामना करने में सक्षम बनाती है। शिक्षा, समाज में महिलाओं की स्थिति बदलने के लिए सबसे शक्तिशाली हथियार है, जो सामाजिक विकास की गति को तेज़ करता है। समानता, स्वतंत्रता के साथ–साथ शिक्षित व्यक्ति अपने कानूनी अधिकारों का बेहतर उपयोग भी करता है और राजनीतिक एवं आर्थिक रूप से सशक्त भी होता है। शिक्षा का ना होना एक बडा अवरोध है जो महिलाओं को अधिक कुशल श्रम क्षेत्रों में भाग लेने से रोकता है। प्राचीन भारत में गार्गी और मैत्रेयी जैसी महिला संतों के उदाहरण मिलते हैं। जब महिलाओं को पुरूषों के समान दर्जा प्राप्त था और वह बहुत ही शिक्षित भी थी। लेकिन प्राचीन काल के अपेक्षा मध्य काल में भारतीय महिलाओं के सम्मान स्तर में काफी कमी आई। सभी प्रकार की भेदभावपूर्ण प्रथाएँ जैसेः बाल विवाह, नगर वधु, सती प्रथा आदि के आने पर महिलाओं के सामाजिक–राजनैतिक अधिकार, शिक्षा के अधिकार, काम करने के अधिकार और खुद के लिए फैसला करने के अधिकार उनसे छीन लिए गए। पर स्वतंत्रता आंदोलन के संघर्ष में नारियों ने कंधे से कन्धा मिलाकर आजादी की लडाई लड़ी और स्वतंत्र भारत के संविधान में ऐसे प्रावधानों को शामिल किया गया जो पुरानी शोषण प्रथाओं और परंपराओं को दूर करने में सहायक थे।

महिलाओं में अशिक्षा और बीच में पढ़ाई छोड़ने जैसी समस्याएँ भी महिला सशक्तिकरण में काफी बड़ी बाधाएँ है। वैसे तो शहरी क्षेत्रों में लड़कियाँ शिक्षा के मामले में लड़कों के बराबर हैं, पर ग्रामीण क्षेत्रों में इस मामले में वह काफी पीछे हैं। आधुनिक युग में कई भारतीय महिलाएँ कई सारे

महत्वपूर्ण राजनैतिक तथा प्रशासनिक पदों पर पदस्थ हैं, फिर भी सामान्य ग्रामीण महिलाएँ आज भी अपने घरों में रहने के लिए बाध्य हैं और उन्हें सामान्य स्वास्थ्य सुविधा और शिक्षा जैसी सुविधाएँ भी उपलब्ध नही है। शिक्षा के मामले में भारत में महिलाएँ पुरूषों की अपेक्षा काफी पीछे हैं। भारत में पुरुषों की शिक्षा दर 82.14 प्रतिशत है, जबकि महिलाओं की शिक्षा दर मात्र 64.46 प्रतिशत ही है। भारत के शहरी क्षेत्रों की महिलाएँ ग्रामीण क्षेत्रों की महिलाओं के अपेक्षा अधिक रोज़गारशील है। आंकड़ों के अनुसार भारत के शहरों में साफ्टवेयर इंडस्ट्री में लगभग 30 प्रतिशत महिलाएँ कार्य करती है, वहीं ग्रामीण क्षेत्रों में लगभग 90 फीसदी महिलाएँ मुख्यतः कृषि और इससे जुड़े क्षेत्रों में दैनिक मजदूरी करती हैं। काफी ग्रामीण लड़कियाँ जो स्कूल जाती हैं, उनकी पढ़ाई भी बीच में ही छूट जाती है और वह दसवीं कक्षा भी नहीं पास कर पाती हैं। आंकड़ें यह

दर्शाते हैं कि महिला साक्षरता दर बहुत ही कम है और उनके लिए प्राथमिक स्तर पर अभी भी विषम परिस्थितियाँ हैं। स्थानीय स्तर पर प्राथमिक शिक्षा, शिक्षा प्रणाली की नींव है अतः इसकी जरूरतों के प्रति स्थानीय प्रतिनिधि को सजगता रखनी चाहिए। चूंकि शहरों की अपेक्षा गांवों में प्राथमिक स्तर पर शिक्षा की स्थिति बदतर है, इसलिए गांवों में बेहतर शिक्षा उपलब्ध कराने और बच्चों में शिक्षा के प्रति जागरूकता लाने पर खास जोर देना चाहिए। महिला शिक्षकों की कमी होने से बालिका शिक्षा पर विपरीत प्रभाव पड़ रहा है और प्राथमिक एवं माध्यमिक स्तर पर बालकों की तुलना में बालिकाओं की पाठशाला त्यागने की दर ज़्यादा है।

शिक्षा के माध्यम से मार्गदर्शन और परामर्श प्रदान होता है, महिलाओं को अपनी नौकरी का चयन करने और व्यवसाय बनाने में मदद मिलती है। शिक्षा उन्मूलन के लिए सरकार, पंचायतों, सार्वजनिक मामलों आदि में महिलाओं की भागीदारी सुनिश्चित कर रही है। शिक्षा का महिला

सशक्तिकरण पर निम्नलिखित प्रभाव होता है; शिक्षा के माध्यम से महिलाओं के सशक्तिकरण से समाज में महिलाओं को बेहतर स्थिति और समानता मिलेगी।

- शिक्षा, महिलायों को समाज में बेहतर भूमिका प्रदान करेगी और उनकी भूमिका रसोई तक सीमित नहीं होगी।
- शिक्षा से महिलाओं के लिए रोजगार के अवसर बढ़ेंगे और उन्हें बेहतर वेतन मिलेगा। शिक्षा द्वारा महिलाओं को गरीबी से बाहर निकलने में सहायता मिलेगी।
- अध्ययन से पता चला है कि शिक्षा से एक लड़की की आय औसतन 10 से 20 प्रतिशत तक बढ़ जाती है अगर वह हर साल स्कूल में रहती है। माध्यमिक विद्यालय में रहने से वह प्रत्येक वर्ष 25 प्रतिशत अधिक कमा सकती है।
- शिक्षित महिला सोच समझ कर शादी करती है।
- साक्षरता, महिलाओं में नेतृत्व, कौशल और आत्मविश्वास प्रदान करता है।
- शिक्षा, महिलाओं के साथ घरेलू हिंसा, दुर्व्यवहार, यौन शोषण और शारीरिक शोषण को कम करने में मदद करता है।
- शिक्षित महिलाएं पुरुष की तरह ही उच्च स्तर की नौकरी हासिल कर रही हैं। कुछ महिलाओं को राष्ट्रपति, नेता, प्रमुख और अन्य उच्च–स्तरीय पदों पर नियुक्त किया जाता है और कई महिलाएं अब समाज में, राजनैतिक, शिक्षित और आर्थिक रूप से भाग ले रही हैं।
- शिक्षा, आज की तकनीकी युग की चुनौतियों का सामना करने के लिए विज्ञान और प्रौद्योगिकी के ज्ञान के माध्यम से महिलाओं को सशक्त बनाने में मदद करती है।
- एक शिक्षित महिला अपने बच्चों को अच्छी शिक्षा प्राप्त करने के लिए प्रोत्साहित करके गरीबी के चक्र को तोड़ने में भी मदद करती है। शिक्षित महिलाएँ न केवल अपनी बालिकाओं की शिक्षा को बढ़ावा देती हैं, बल्कि अपने बच्चों को बेहतर मार्गदर्शन प्रदान करती हैं।
- शिक्षित महिलाएं शिशु मृत्यु दर और जनसंख्या की वृद्धि में कमी लाने में मदद कर सकती हैं। शिक्षा द्वारा वह अपने बच्चों की सही तरह से देखभाल करती है और उनकी मृत्यु दर में 10 से 15 प्रतिशत की कमी आती है।
- व्यावसायिक उपलब्धि, जागरूकता और संतुष्टि, शिक्षा के प्रभावी उपयोग से सुनिश्चित होती है।

कृषि द्वारा महिला सशक्तिकरण

महिलाएं घरों में जटिल काम करती हैं और आजीविका के लिए कई गतिविधियाँ अपनाती हैं जैसे : कृषि (बुवाई, रोपाई, निराई, सिंचाई, उर्वरक प्रयोग, पौधों की सुरक्षा, कटाई, मड़ाई, प्रसंस्करण आदि); घरेलू (भोजन, बाल पालन, जल संग्रह, ईंधन के लिए लकड़ी एकत्र करना, घरेलू रखरखाव आदि); पशु पालन (चारा संग्रहण, दूध निकालना आदि); बागवानी (सब्जी उत्पादन, फूल उत्पादन, फल उत्पादन); मज़दूरी के लिए दूसरों के घर, कृषि या अन्य ग्रामीण उद्यमों में काम करना आदि। श्रमिक के रूप में महिलाएं दुनिया में किए गए कामों के 67 प्रतिशत से अधिक कार्य करती हैं और अधिकांश विकासशील देशों में 60–80 प्रतिशत भोजन महिलाओं द्वारा उत्पादित किया जाता है। लेकिन वे दुनिया की आय का केवल 10 प्रतिशत कमाती हैं और दुनिया की संपत्ति का केवल 1 प्रतिशत हिस्सा प्राप्त करती हैं। कुछ इतिहासकारों का मानना है कि वह महिला ही थी जिन्होंने पहले फसल के पौधों को पाला और खेती की कला और विज्ञान की शुरुआत की, जबकि पुरूष शिकार की तलाश में घर से चले जाते थे पर महिलाओं ने देसी वनस्पतियों से बीज इकट्ठा करना शुरू कर दिया और भोजन, चारा, रेशे और ईंधन के दृष्टिकोण से खेती की शुरुआत की।

कृषि कार्यों में दुनिया भर की महिलाएं महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। महिलाएं लगभग 70 प्रतिशत कृषि श्रमिकों, 80 प्रतिशत खाद्य उत्पादकों और 10 प्रतिशत बुनियादी खाद्य पदार्थों की प्रक्रिया और 60 से 90 प्रतिशत तक ग्रामीण विपणन भी करती हैं। इस प्रकार कृषि उत्पादन में कार्य बल का दो–तिहाई से अधिक महिलाओं का होता है। फिर भी, आर्थिक रूप से महत्वपूर्ण इन गतिविधियों में महिलाओं की भूमिका लंबे समय तक अस्पष्ट रही, क्योंकि महिलाओं ने राजनीतिक गतिविधियों और निर्णय लेने की प्रक्रियाओं में कोई बड़ी भूमिका नहीं निभाई है । महिलाएं सभी विकासशील देशों में कृषि और ग्रामीण अर्थव्यवस्था में आवश्यक योगदान देती हैं। लेकिन, इनमें से कई गतिविधियों को किसी भी क्षेत्र में **"आर्थिक रूप से सक्रिय रोज़गार"** के रूप में परिभाषित नहीं किया गया है। विकासशील देशों में महिलाएं बहुत अधिक भोजन का उत्पादन करती हैं पर वे अधिकांश पुरूषों की तुलना में अधिक कुपोषित रहती हैं। कृषि और अन्य कार्यों में वेतन की असमानता है, जिसमें महिलाओं को पुरूषों की मज़दूरी से कम वेतन मिलता है। इसके अलावा, कई महिलाएं अवैतनिक श्रम के रूप में कृषि कार्य में भाग लेती हैं। कृषि क्षेत्र में महिला, चाहे पारंपरिक साधनों के माध्यम से हो या औद्योगिक, निर्वाह के लिए या एक कृषि मज़दूर के रूप में, एक क्षणिक जन–सांख्यिकीय समूह का प्रतिनिधित्व करती है। कृषि, आर्थिक स्वतंत्रता, निर्णय लेने की क्षमता, शिक्षा और स्वास्थ्य सेवाओं तक जुड़ी हुई है। कृषि महिलाओं को सशक्त बनाने में निम्नलिखित महवपूर्ण भूमिका निभा रही है;

- कृषि से महिलाएं देश में खाद्य सुरक्षा सुनिश्चित करने में महत्वपूर्ण योगदान कर सकती हैं, अपनी आय बढ़ा सकती हैं और एक स्थिर आजीविका विकसित कर सकती हैं।
- कृषि में महिलाओं के सशक्तिकरण उनकी आजीविका और धन सृजन से लेकर व्यावसायिक नेतृत्व तक ले जाता है।
- महिलाएं पुरुषों की तुलना में पर्यावरण को बेहतर संजोकर रखती हैं। जैसे कि चिपको आंदोलन मुख्यतः महिलाओं के नेतृत्व वाला आंदोलन था, जिसमें चमोली गांव की महिलाओं ने वृक्षों को कटने से बचाने के लिए उन्हें गले लगा लिया था। वंदना शिवा नामक एक इकोफेमिनिस्ट इसमें शामिल थी; नर्मदा बचाओ आंदोलन का नेतृत्व मेधा पाटकर ने किया; पर्यावरणीय अवक्रमण को ध्यान में रखकर गठित प्रथम पर्यावरण एवं विकास पर संयुक्त राष्ट्र विश्व आयोग की अध्यक्षता ग्रो हर्लेम बॅटलैंड नामक एक महिला द्वारा की गई थी।
- कृषि में महिलाओं की केंद्रीय भूमिका से कई राष्ट्रों की स्थिरता, प्रगति और दीर्घकालिक विकास सुनिश्चित हुआ है। भारत के सकल घरेलू उत्पाद (जीडीपी) में महिलाएं मात्र 17 प्रतिशत का योगदान दे रही हैं। अंतरराष्ट्रीय मुद्रा कोष (आईएमएफ) के अनुसार क्रिसटीन लगार्डे का कहना है कि ज्यादा से ज्यादा महिलाएं अगर श्रम में भागीदारी करे तो भारत की (जीडीपी) 27 प्रतिशत तक बढ़ सकती है।
- महिलाओं को कृषि उत्पादों सब्जियों एवं फलों का वैज्ञानिक तकनीक से प्रोसेसिग एवं मूल्यवर्धन कर उत्पाद बनाने का प्रशिक्षण और उन्हें आधुनिक उपकरणों में प्रशिक्षण देना चाहिए। महिला किसानो को आत्मनिर्भर बनाने के लिए प्रशिक्षण देकर फसल से नए उत्पाद तैयार करने का गुण सिखाना जरूरी है।
- महिलाओं को विभिन फसलों व पोषित अनाजों की वैज्ञानिक खेती, प्रोसेसिंग और वैल्यू एडिशन पर काम सिखाकर उनमें आत्मनिर्भरता आएगी।
- जैविक और टिकाऊ खेती में सक्रिय रूप से काम करने वाली महिलाओं के स्वदेशी ज्ञान के उपयोग और संरक्षण में अहम् भूमिका है। जैविक खेती से प्राप्त अनाज/सब्जियाँ/फल न केवल सेहत और पर्यावरण के लिये हानिकारक रसायनों से मुक्त होते हैं अपितु उनका अच्छा दाम भी मिलता है।
- ग्रामीण महिलाएं छोटे पैमाने पर संयंत्र कृषि, पशु उत्पादन, प्रसंस्करण और संरक्षण कर सकती हैं। वे घर में सुगंधित और औषधीय पौधे और जड़ी–बूटियों के बगीचे; इनडोर पौधे; फूल, फलों के पेड़ की नर्सरी; डेयरी उत्पाद आदि के द्वारा अपने आप को सशक्त कर सकती हैं। लेकिन सशक्तिकरण से पहले गाँव की परिस्थितियां, क्षमताएँ एवं विपणन का ध्यान रखना बहुत जरूरी है।
- मशरूम की खेती में महिलाओं के लिए प्रशिक्षण और विस्तार एवं छोटे स्वयं सहायता समूहों में काम कर महिला सशक्तिकरण को बढ़ावा मिलेगा।

भारत में महिला सशक्तिकरण

महिलाओं के खिलाफ बुरी प्रथाओं के चलन को महान भारतीय लोगों ने हटाया जैसे कि : राजा राम मोहन रॉय ने सती प्रथा को खत्म करने के लिये अंग्रेज़ो को मजबूर किया, विधवाओं की स्थिति को सुधारने के लिये ईश्वर चंद्र विद्यासागर ने विधवा पुनर्विवाह अधिनियम 1856 की शुरुआत करवाई और महिलाओं के खिलाफ भेदभावपूर्ण कार्यों के लिये अपनी आवाज उठाई। भारत की लगभग 50 प्रतिशत आबादी केवल महिलाओं की है मतलब, पूरे देश के विकास के लिए इस आधी आबादी की जरुरत है जोकि अभी भी सशक्त नहीं है और कई सामाजिक प्रतिबंधों से बंधी हुई है। देश के विकास की मुख्य–धारा में महिलाओं को लाने के लिये भारत सरकार के द्वारा कई योजनाएं चलाई गई हैं

जो शिक्षा, रोजगार, कृषि और स्वास्थ्य से सम्बंधित है। इनमें से कुछ मुख्य योजनाएँ—मनरेगा, सर्व शिक्षा अभियान, जननी सुरक्षा योजना, बेटी बचाओं बेटी पढ़ाओं योजना, महिला हेल्पलाइन योजना, उज्जवला योजना, सपोर्ट टू ट्रेनिंग एंड एम्प्लॉयमेंट प्रोग्राम फॉर वूमेन (स्टेप), महिला शक्ति केंद्र, पंचायती राज योजनाओं में महिलाओं के लिए आरक्षण आदि हैं। कृषि क्षेत्र भारत में 80 प्रतिशत आर्थिक रूप से सक्रिय महिलाओं को रोजगार देता है जिनमें 33 प्रतिशत कृषि श्रम और 48 प्रतिशत किसान शामिल हैं। भारत में 85 प्रतिशत ग्रामीण महिलाएँ कृषि में लगी हुई हैं जो विभिन्न कृषि गतिविधियों में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं फिर भी लगभग 13 प्रतिशत के पास ही अपनी भूमि है। आर्थिक सर्वेक्षण 2017—18 दर्शाता है कि पुरूषों द्वारा नौकरी के लिए शहर की ओर बढ़ने से कृषि क्षेत्र में महिलाओं की भागीदारी बढ़ गई है, जिसमें कृषक, उद्यमी और मजदूर के रूप में उनकी कई भूमिकाएँ सामने आई है। लगभग 60—80 प्रतिशत भोजन ग्रामीण महिलाओं द्वारा उत्पादित किया जाता है।

भारत का संविधान दुनिया में सबसे अच्छे समानता प्रदान करने वाले दस्तावेज़ो में से एक है। यह विशेष रूप से लिंग समानता को सुरक्षित करने का प्रावधान प्रदान करता है। संविधान के विभिन्न लेख—सामाजिक, राजनैतिक और आर्थिक रूप से महिलाओं को पुरूषों के समान अधिकारों की रक्षा करते हैं। महिलाओं के मानवाधिकारों को सुरक्षित रखने के लिए संविधान की प्रस्तावना, मौलिक अधिकार, डीपीएसपी और अन्य संवैधानिक प्रावधान महिलाओं को कई तरह के विशेष सुरक्षा उपाय प्रदान करते हैं। इनमे से कुछ महत्वपूर्ण हैः समान वेतन का अधिकार, कार्य—स्थल में उत्पीड़न के खिलाफ कानून, कन्या भ्रूण हत्या के खिलाफ अधिकार, सम्पत्ति पर अधिकार, गरिमा और शालीनता के लिए अधिकार, महिला सशक्तिकरण आदि। कानूनी अधिकार के साथ महिलाओं को सशक्त बनाने के लिए संसद द्वारा पास किये गये कुछ अधिनियम हैः पारिश्रमिक एक्ट 1976, दहेज रोकथाम अधिनियम 1961, अनैतिक व्यापार (रोकथाम) अधिनियम 1956, मेडिकल टर्मिनेशन ऑफ प्रेग्नेंसी एक्ट 1987, बाल विवाह रोकथाम एक्ट 2006, लिंग परीक्षण तकनीक (नियंत्रक और गलत इस्तेमाल के रोकथाम) एक्ट 1994, कार्यस्थल पर महिलाओं का यौन शोषण एक्ट (2013)। भारत में महिला और बाल विकास मंत्रालय महिलाओं के कल्याण, विकास और सशक्तिकरण से संबंधित सभी मामलों के लिए नोडल एजेंसी है। मंत्रालय की विभिन्न योजनाएं जैसे— स्वशक्ति, स्वंयसिद्ध, स्टेप और स्वावलंबन आदि आर्थिक सशक्तिकरण करने में सक्षम हैं। भारत में महिला सशक्तिकरण के काफी उदाहरण है जैसेः सावित्री बाई फूले ने अपने पति ज्योतिराव फूले के साथ मिलकर भारत के पुणे में महिलाओं के लिए स्कूल खोला (1848) और भारत की पहली महिला शिक्षिका बनी; एनी बेसेन्ट पहली महिला भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस अध्यक्षा (1917); सरोजिनी नायडू भारत में जन्मी, भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की पहली अध्यक्षा (1925) और आजादी के बाद भारत की पहली महिला गवर्नर (1947); प्रेम माथुर भारत की पहली कमर्शियल महिला पायलट (1951); कमला देवी चट्टोपाध्याय को कम्युनिटी लीडरशिप के लिये रमन मेग्सेसे अवार्ड से सम्मानित (1966); इंदिरा गांधी भारत की पहली महिला प्रधानमंत्री (1966); मदर टेरेसा को नोबेल शांति पुरस्कार (1979); प्रतिभा पाटिल भारत की पहली महिला राष्ट्रपति।

महिला किसान सशक्तिकरण परियोजना

महिला किसानों की बढ़ती संख्या को देखते हुए महिला किसान सशक्तिकरण परियोजना को कृषि से जुड़ी महिलाओं की वर्तमान स्थिति मे सुधार करने और उन्हें सशक्त बनाने के लिए उपलब्ध अवसरों को बढ़ाने का प्रयास करता है। इस योजना का उद्देश्य महिलाओं को कृषि में अधिकार संपन्न बनाना है। महिला किसान सशक्तिकरण परियोजना के दायरे में अब तक 36 लाख महिलाएं आ चुकी हैं। इस तरह की परियोजनाओं के लिए 60 प्रतिशत (उत्तर पूर्वी राज्यों के लिए 90 प्रतिशत) सहायता भारत सरकार द्वारा प्रदान की जाती है। "किसान" के रूप में "महिला" की पहचान करता है और कृषि क्षेत्र में महिलाओं की क्षमता का निर्माण करने का प्रयास करता है।

कृषि में महिलाओं के लिए राष्ट्रीय अनुसंधान केंद्र (NRCWA)

भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद ने अप्रैल 1996 में NRCWA की स्थापना भुवनेश्वर में की और इसे वर्ष 2008 से कृषि में महिलाओं के लिए अनुसंधान निदेशालय (DRWA)के रूप में उन्नत किया गया। NRCWA विभिन्न उत्पादन प्रणालियों द्वारा महिला किसानों के विकास में लगा हुआ है और खेती द्वारा महिलाओं के विकास के तहत विशिष्ट प्रौद्योगिकियां और उत्पादन प्रणालियों का मूल्यांकन कर रहा है। NRCWA का मुख्य उद्देश्य हैः भारत में महिला किसानों के लिए विभिन्न विस्तार गतिविधियाँ, महिलाओं के अनुरूप प्रथाओं को बढ़ावा देना और कृषि संचालन के लिए बेहतर उपकरणों और तकनीकों का प्रयोग, महिलाओं को खेत से जुड़े व्यावसायिक खतरे को कम करना, सुधार बीज और अनाज के भंडारण में अभ्यास, पोषण और आर्थिक सुरक्षा सुनिश्चित करने में महिलाओं का योगदान, कृषि और पशुपालन में स्वयं सहायता समूह बनाकर आय सृजन गतिविधियों को आगे बढ़ाना और मार्केटिंग आउटलेट्स तक पहुँचने का ज्ञान बढ़ाना।

निष्कर्ष

स्त्री को सृजन की शक्ति माना जाता है अर्थात स्त्री से ही मानव जाति का अस्तित्व माना गया है। महिलाओं के

आर्थिक सशक्तिकरण का अर्थ उनके आर्थिक फैसलों, आय, संपत्ति और दूसरी वस्तुओं की उपलब्धता से है, इन सुविधाओं को पाकर ही वह अपने सामाजिक स्तर को ऊँचा कर सकती हैं। बदलते समय के साथ आधुनिक युग की नारी पढ़–लिखकर स्वतंत्र है। वह अपने अधिकारों के प्रति सजग है तथा स्वयं अपना निर्णय लेती है। अब वह चारदीवारी से बाहर निकलकर देश के लिए विशेष महत्वपूर्ण कार्य करती है। आज की महिला पुरूषों के साथ कंधे से कन्धा मिलाकर बड़े से बड़े कार्यक्षेत्र में अपना महत्वपूर्ण योगदान दे रहीं हैं। फिर चाहे काम मजदूरी का हो या अंतरिक्ष में जाने का। महिलाएँ अपनी योग्यता हर क्षेत्र में साबित कर रही हैं। इसी वजह से राष्ट्र के विकास के महान काम में महिलाओं की भूमिका और योगदान को पूरी तरह और सही परिप्रेक्ष्य में रखकर ही राष्ट्र निर्माण के लक्ष्य को हासिल किया जा सकता है।

यद्यपि हम महिला सशक्तिकरण की दिशा में आगे बढ़े हैं, परंतु अभी एक लंबी दूरी तय करनी शेष है। राष्ट्र के विकास में महिलाओं का महत्त्व और अधिकार के बारे में समाज में जागरूकता लाने के लिये मातृ दिवस, अंतरराष्ट्रीय महिला दिवस आदि जैसे कई कार्यक्रम सरकार द्वारा चलाए जा रहे हैं। लेकिन नारी सशक्तिकरण का असली अर्थ तब समझ में आयेगा जब उन्हें अच्छी शिक्षा दी जाएगी और उन्हें इस काबिल बनाया जाएगा कि वो हर क्षेत्र में स्वतंत्र होकर फैसले कर सकें। महिलाओं की आर्थिक और सामाजिक स्थिति में महत्वपूर्ण तरीके से सुधार हुआ है लेकिन, यह परिवर्तन केवल महानगरों या शहरी क्षेत्रों में ही दिखाई देता है। अर्ध–शहरी क्षेत्रों और गाँवों में स्थिति में सुधार नहीं हुआ है। इसलिए गांव और शहर की इस दूरी को मिटाना जरूरी है। भले ही आज के समाज में कई महिलाएँ राष्ट्रपति, प्रधानमंत्री, प्रशासनिक अधिकारी, डॉक्टर, वकील आदि बन चुकी हो, लेकिन फिर भी काफी महिलाओं को आज भी सहयोग और सहायता की आवश्यकता है। कामकाजी महिलाएँ देर रात में अपनी सुरक्षा को देखते हुए सार्वजनिक परिवहन का उपयोग नहीं करती हैं। सही मायनों में महिला सशक्तिकरण की प्राप्ति तभी की जा सकती है जब महिलाओं की सुरक्षा को सुनिश्चित किया जा सकें और पुरूषों की तरह वह भी बिना भय के स्वच्छंद रुप से कहीं भी आ जा सकें। उन्हें शिक्षा, आजादीपूर्वक कार्य, सुरक्षित यात्रा एवं कार्यस्थल और सामाजिक आजादी में अभी भी और सहयोग की आवश्यकता है। महिलाओं को उनकी क्षमता से अवगत करवाना अब समय की मांग बन चुका है। सरकार को स्वास्थ्य, शिक्षा, रोजगार, महिलाओं के लिए जागरूकता इत्यादि जैसे उपायों को अपनाना चाहिए जिससे महिला सशक्तिकरण को बढ़ावा मिलेगा, क्योंकि एक राष्ट्र शक्तिशाली तभी बन सकता है जब वास्तव में वह महिलाओं को शक्ति देता है।

"यदि आप एक आदमी को शिक्षित करते हैं तो आप एक व्यक्ति को शिक्षित करते हैं,
पर यदि आप एक महिला को शिक्षित करते हैं तो आप एक पूरे परिवार को शिक्षित करते हैं"
–पंडित जवाहर लाल नेहरू

जैवईंधन और हम

रेनू सिंह
पर्यावरण विज्ञान विभाग
भाकृअनुप–भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली

किसी भी देश के आर्थिक विकास, सामाजिक उन्नति, मानव कल्याण और जीवन स्तर को ऊँचा उठाने के लिए ऊर्जा सबसे महत्वपूर्ण घटक है। ऊर्जा की आपूर्ति की दीर्घकालिक सुरक्षा सुनिश्चित करने की आवश्यकता के साथ, हमें उन विधियों की खोज करनी चाहिए जो आज और भविष्य में लोगों की आवश्यकताओं को पूरा कर सकें। हम प्रतिवर्ष अपनी ऊर्जा आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए अरबों मूल्य के पेट्रोलियम उत्पादों का आयात करते हैं। भारत की लगभग 68 प्रतिशत जनसंख्या गाँवों में निवास करती है और आजीविका चलाने के लिये वह कृषि एवं इसके सहायक उद्योगों जैसे; दूध उत्पादन, मुर्गीपालन, मछलीपालन, वन आधारित लघु उद्योग (पत्तियों से प्लेट बनाने, शहद प्रसंस्करण, बांस उत्पाद आदि बनाने) पर निर्भर है। इन गतिविधियों में शामिल अनेक कार्यो के लिए जैसे; सिंचाई के लिए जल पंपिंग, कटाई पश्चात् संसाधन, मशीनें आदि को चलाने के लिए आवश्यक आधुनिक ऊर्जा के पहुँचने से लाखों ग्रामीण घरों की आय बढ़ाने में सहायता मिल रही है। इसके अतिरिक्त आज सड़कों पर दिखाई देने वाली गाड़ियों से लेकर बिजली के अभाव में प्रयुक्त जनरेटर तक के इंजन में ईंधन के रूप में 95 प्रतिशत जीवाश्म ईंधन अर्थात् पेट्रोलियम–डीजल का उपयोग होता है। यह ईंधन नवीनीकरणीय न होने के कारण अपर्याप्त है, बल्कि भविष्य में प्राप्त भी नहीं होगा। दूसरी ओर इसके प्रयोग से निकलने वाले धुएं में कई ऐसे कारक हैं, जो जैव–पारिस्थितिकी के संतुलन को बिगाडने में अहम भूमिका निभाते हैं। डीजल ईंधन में उपयोग हेतु डीजल के प्रतिस्थाप के रूप में जैव ईंधन सामने आ चुका है,

चित्र 1. जैवईंधन

पौधों पर आधारित ईंधन, जैवईंधन कहलाते हैं। जैवईंधनों की उत्पत्ति, नवीनीकरणीय ऊर्जा का अति उत्तम विकल्प है, कृषि अवशेष। उदाहणार्थ गन्ने की खोई, चावल का भूसा, गेहूँ का भूसा, मक्के के अवशेष इत्यादि का जैवईंधनों के लिए अनिर्मित सामग्री के रूप में उपयोग किया जा सकता है। भारत के ग्रामीण क्षेत्रों के विकास में प्रौद्योगिकियों की महत्वपूर्ण भूमिका से इंकार नहीं किया जा सकता है तथा आजादी के 70 वर्ष में भारत की कृषि प्राथमिकता बदल गई है। प्रौद्योगिकियों के विकास, इनपुट, विस्तार, कुशल विपणन और मशीनीकरण के फलस्वरूप वर्ष 2017–18 में 27.75 करोड़ टन एवं 2016–17 के अन्तर्गत 25.22 करोड़ टन (25,222.24 लाख टन) अनाज उत्पादन हुआ है जबकि 1951–52 में कुल 550 लाख टन अनाज पैदा हुआ था। इसके अतिरिक्त प्रतिवर्ष फसलों, गन्ने और बागवानी से लगभग 23 करोड़, 40 लाख टन जैव अवशेष भी उपलब्ध होते हैं। इसमें अनुमानतः एक लाख करोड़ रुपये के खनिज ईंधन आयात का विकल्प बनने की क्षमता है। कृषि अवशेषों और उपलों को जलाए जाने, वाहनों और ट्रैक्टरों के धुएं, अशोधित पदार्थों तथा गोबर के ढेरों से वायु प्रदूषण तथा ग्रीनहाऊस गैसों का उत्सर्जन होने से पर्यावरण प्रदूषित होता है। गोबर गैस, बनाने, शर्करा और स्टार्च से इथनॉल निकालने तथा बायोडीजल और बिजली उत्पादन की पहली पीढ़ी की कुछ प्रौद्योगिकियां बाजार की उत्तम वैकल्पिक प्रौद्योगिकियों की उपलब्धता के कारण गैर–प्रतिस्पर्धी हो गई हैं। यदि इन कृषि अवशेषों का उपयोग जैवईंधनों की उत्पत्ति हेतु किया जाएगा, तो इससे न केवल हमारी तेल के लिए दूसरे देशों पर निर्भरता में कमी आएगी, बल्कि जलवायु परिवर्तन की समस्या का निवारण भी हो सकेगा और साथ ही रोजगार के अवसर भी उपलब्ध होंगे।

जैवईंधन का उत्पादन जैट्रोफा, करंज, कपास बीज, सोयाबीन, कॉर्न आदि के तेल, शैवाल जनित तेल, पुनर्चक्रित खाद्य तेल, चर्बी, पशु चर्बी या इन पदार्थो के विभिन्न संयोजन से होता है। इनके परिष्करण हेतु अपनाए गए उपायों में ट्रांसएस्टरीफिकेशन, तेल निष्कर्षण, परिशोधन आदि शामिल हैं। इसका उत्पादन न्यूनतम लागत पर सामान्य जैवरासायनिक प्रक्रिया से किया जाता है। मक्का, ज्वार, आलू व गन्ने की मिलों के बचे हुये शीरे से एल्कोहल बनाकर पेट्रोल में 20:80 अनुपात में मिलाकर इंजनों व वाहनों में उपयोग किया जा रहा है तथा वृक्षों से मिलने वाले बीजों का अखाद्य तेल भी बायो डीजल के साथ 20:80 के अनुपात में मिलाकर उपयोग में लाया जा रहा है। इसके अतिरिक्त लकड़ी, भूसा, कोयला व अन्य कृषि अवशेष को

मिलाकर उत्पादक गैस भी तैयार की जा रही है। इन गैसों से विद्युत के सृजन के लिए गैसीफायर इंजन प्रणालियाँ भी विकसित की गई हैं। इनका उत्पादन आमतौर पर कृषि फसलों से किया जाता है।

भारत में जैवईंधन की आवश्यकता

वर्तमान में समस्त विश्व की बढ़ती जनसंख्या के कारण संसाधनों की माँग बढ़ रही है, इसलिए सभी देश अपने–अपने जीवाश्म ईंधन एवं पेट्रोलियम भंड़ारणों को बचाने की कोशिश करने में लगे हुए हैं, क्योंकि पेट्रोलियम पदार्थों के भंड़ारों का समाप्त होना निश्चित है। इसके साथ–साथ जीवाश्म ईंधन के अंधाधुंध प्रयोग से न केवल इनका भूगर्भ तेजी से बढ़ा है अपितु वायु प्रदूषण भी लगातार बढ़ रहा है। विभिन्न शोधों से ज्ञात हुआ है कि आने वाले वर्शों में ऊर्जा संसाधनों की मांग लगभग 40–50 प्रतिशत तक बढ़ जाएगी व देश में उत्पादित करने वाले क्षेत्रों में आपूर्ति की मात्र 10–12 प्रतिशत तक ही वृद्धि हो सकेगी। हमारे देश में एक वर्ष में पेट्रोलियम पदार्थ की खपत लगभग 141.785 मिलियन टन है और हम विश्व के चौथे बड़े उपभोक्ता है। यदि औद्योगिक विकास की गति को बनाये रखना है तथा अपने वातावरण को बचाना है तो हमें जैव ईंधन/जैव ऊर्जा पर विशेष ध्यान देना होगा। भारत सरकार ने भी राष्ट्रीय बायोडीजल नीति वर्ष 2009 के अंतर्गत इस दिशा में कदम उठाए हैं और भारत में बायोडीजल उत्पादन के लिए अखाद्य तेल वाली फसलों को अनुपजाऊ भूमियों पर उत्पादन की स्वीकृति दी है।

भारतीय परिदृष्य में जैवईंधन की बहुत ही आवश्यकता है क्योंकि जीवाश्म ईंधन की घटती उपलब्धता, अन्तर्राष्ट्रीय बाजार में तेल की बढ़ती कीमत एवं वातावरण पर होने वाले हानिकारक प्रभाव, जैवईंधन की महत्ता को और भी अधिक परिलक्षित कर कर रहे हैं। जैवईंधन एक पुनरूपादित ऊर्जा का स्रोत है जो कि जैविक पदार्थ से प्राप्त होते हैं। जैवईंधन के रूप में जैवइथेनॉल एवं बायोडीजल अहम भूमिका निभा सकते हैं। जहाँ तक इथेनॉल का प्रश्न है, ब्राजील में इसे चीनी से, अमेरिका में अनाज वाली फसलों से, यूरोप में चुकंदर से, भारत में शीरे से इसे तैयार किया जा रहा है। विश्व के अनेक देश जैसे ब्राजील, अमेरिका, आस्ट्रेलिया आदि इथेनॉल का उपयोग विभिन्न अनुपात में पेट्रोल में मिश्रित करते हैं एवं सफलतापूर्वक वाहन चलाने के काम में ला रहे हैं। भारत में इथेनॉल उत्पादन हेतु विभिन्न फीड–स्टॉक का उपयोग किया जा सकता है, जैसे कि गन्ना रस, शीरा, मीठी ज्वार, शकरकन्द, चुकंन्दर, मक्का, आलू इत्यादि।

बायोडीजल एक फैटी एसिड इथेनॉल या मिथाइल इस्टर है तथा इसे खाद्य एवं अखाद्य तेल व पशु की चर्बी से भी बनाया जा सकता है। बायोडीजल वातावरण हितकारी भी है क्योंकि इसमें सल्फर एवं एरोमेटिक्स की मात्रा न के बराबर होती है। दूसरी ओर बायोडीजल का गुण लगभग पेट्रोलियम डीजल के बराबर ही पाया जाता है। इसलिए एक अनुपात में मिश्रण के बाद गाड़ी के इंजन की बदलाव की भी आवश्यकता नहीं पड़ती है। भारत जैसे देश में बायोडीजल के निर्माण के लिए अखाद्य तेलों का सहारा लेना पड़ेगा, जैसे कि अखाद्य तेल उत्पादन करने वाले कुछ प्रमुख तिलहन वृक्ष हैं, जैसे; जैट्रोफा, करंज, महुआ, नीम व अरण्डी इत्यादि के अतिरिक्त दूध, मांस, सब्जी और फल जैसी खराब होने वाली चीजों के उत्पादन और प्रसंस्करण की ओर विविधीकरण में भी अवशेष प्रबंधन की अति आवश्यकता है।

भारत में जैवईंधन आधारित अनुसंधान की उपलब्धियाँ

भारत में जैवईंधन अनुसंधान, जिसमें जैट्रोफा एवं करंज प्रमुख है, बहुत सरकारी एवं निजी संस्थायें कार्यरत हैं। वे जनद्रव्य एकत्रीकरण, उसका आकंलन, प्रजनन कार्य, पौध रोपण तकनीक इत्यादि विभिन्न पहलुओं का कार्य कर रही हैं। भारतीय कृषि अनुसंस्थान परिषद, नई दिल्ली भी नेटवर्क कार्यक्रम के अन्तर्गत राज्य कृषि विश्वविद्यालयों के विभिन्न केन्द्रों एवं परिषद के विभिन्न संस्थानों के माध्यम से अनुसंधान एवं विकास कार्य में संलग्न है। इसी प्रयास के अन्तर्गत भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली, राष्ट्रीय कृषि वानिकी अनुसंधान केन्द्र, झांसी एवं केन्द्रीय बारानी कृषि अनुसंधान संस्थान, हैदराबाद में जैट्रोफा एवं करंज अनुसंधान एवं विकास के कार्य किये जा रहे हैं।

भारत की राष्ट्रीय जैव ईंधन नीति

भारत सरकार ने पिछले एक दशक से जैवईंधन के उत्पादन और उपयोग सवंर्धित विभिन्न नीतियों का उत्तरदायित्व संभाला है। भारत सरकार ने सर्वप्रथम वर्ष 2003 में योजना आयोग के संरक्षण के अन्तर्गत राष्ट्रीय जैवईंधन मिशन के प्रमोचन में योगदान किया। राष्ट्रीय जैवईंधन मिशन ने जैवईंधन अनिर्मित सामग्री वाली फसलों जैसे; जैट्रोफा, करंज/पोंगेमिया आदि के खेती क्षेत्र में वृद्धि की प्रवस्था पर विशिष्ट रूप से ध्यान संकेन्द्रित किया। राष्ट्रीय जैवईंधन मिशन में विभिन्न छोटे मिशन जैसे वनों और बंजर भूमि में अनिर्मित सामग्री वाले फसलों की पैदावार से उच्च स्तर के रोपण में वृद्धि, बीजों और तेलों के निष्कर्षण का प्रबंध, ट्रान्सएस्टरीकरण सम्मिश्रण व्यवसाय, इथेनॉल पेट्रोल सम्मिश्रण कार्यक्रम और जैव डीज़ल सम्मिश्रण कार्य सम्मिलित है, जिनका उद्देश्य व्यवसायिक स्तर पर जैव ईंधन का यातायात ईंधनों जैसे; पेट्रोल, डीज़ल आदि के साथ सम्मिश्रण है।

जैवईंधन सम्मिश्रण को बनाने के लिए राज्य, पेट्रोलियम और प्राकृतिक गैस मंत्रालय और भारत सरकार ने संयुक्त अनुग्रह से सन् 2003 में 9 राज्यों और 5 यूनियन टेरीटरी को 5 प्रतिशत इथेनॉल और पेट्रोल के सम्मिश्रण का अधिदेश दिया। वर्ष 2003–04 और 2004–05 में गन्ने के लघु उत्पादन से इथेनॉल की उपलब्धता न होने के कारणवश ये अंशतः कार्यान्वित हुआ। सन् 2006 सम्मिश्रण के अधिदेश के द्वारा ये 20 राज्यों और 8 यूनियन टेरीटरी में लागू हुआ। तेल बेचने वाली कंपनियों के अभाव के कारण यह रास्ता अंशतः कार्यान्वित हुआ ताकि सही मूल्यों पर पर्याप्त मात्रा में इथेनॉल का प्रबंध हो सके। राष्ट्रीय जैवईंधन नीति का सुत्रण नवीन और नवीनीकरणीय ऊर्जा मंत्रालय द्वारा हुआ, जिसको वर्ष 2008, सितम्बर में कैबिनेट कमेटी द्वारा स्वीकृति मिली और वर्ष 2009 दिसम्बर में उसका मोचन हुआ। जैवईंधन सम्बंधित नीति ग्रामीण क्षेत्रों के विकास और रोज़गार निर्माण में सामर्थ्य है। इस नीति के अन्तर्गत यह गौर किया गया है कि विस्तृत क्षेत्र की फसलों जैसे; गन्ने, मीठी ज्वार, कसावा, मक्का, तेलों की फसलें जैट्रोफा, करंज/पोंगमिया आदि का उपयोग भी जैवईंधन के उत्पादन में किया जा सकता है। इस नीति ने राष्ट्रीय जैवईंधन विकास बोर्ड के व्यवस्थापन पर भी गौर किया है, ताकि समय बाधित तरीके द्वारा जैवईंधन का पेट्रोल और डीजल इंजन में उपयोग करने के मार्ग के नक्शे का विकास कर सके। वर्ष 2012 में 5 प्रतिशत, 2017 में 10 प्रतिशत और 2011 के बाद 20 प्रतिशत सम्मिश्रण का राष्ट्रीय सूचक लक्ष्य इस नीति में अभिस्तावित किया है।

समुदाय/सरकारी/बंजर/किनारे वाली भूमियों पर आखाद्य तेल के बीजों वाली फसलों जैवडीजल रोपण को बढ़ावा देना चाहिए और साथ ही खाद्य फसलों के उपजाऊ भूमि पर इस तरह के रोपण को रोकने में सहयोग करना चाहिए। नियतकालिक रूप से बायोडीज़ल रोपण के लिए उत्पादकों को न्यूनतम समर्थन मूल्य के अन्तर्गत कम मूल्यों पर बीज उपलब्ध कराया गया। तेल बेचने वाली कंपनियों द्वारा जैवइथेनॉल को खरीदने की न्यूनतम क्रय मूल्य उसके उत्पादन के वास्तविक मूल्य और आयात मूल्य पर आधारित है। जैवडीजल के विशय में न्यूनतम समर्थन मूल्य जैवडीजल के संचालित फुटकर मूल्य से संबद्ध होना चाहिए। नीति द्वारा यह गौर किया गया है कि जैवईंधन मुख्यतः जैवडीजल और जैवइथेनॉल को सरकार द्वारा घोषित वस्तुओं की सीमा के अंतर्गत रखा जाए ताकि इनको राज्य के अंदर या बाहर ले जाने में कोई बाधा न उत्पन्न हो। नीति में ये भी घोषित किया गया है, कि जैवडीजल पर कोई भी शुल्क की उगाही नहीं होगी।

भारत में उच्च स्तर के तालमेल और नीति के देखरेख और जैवईंधनों के विकास संबंधित विभिन्न स्थिति में पुनरीक्षण के लिए, भारत सरकार के मुख्यमंत्री के सभापतित्व के अन्तर्गत अंतर–मंत्रीपदीय नेशनल जैवईंधन समन्वयन कमेटी और मंत्रिमंडल सचिव के सभापतित्व के अन्तर्गत बायोफ्यूल स्टीरिंग कमेटी के व्यवस्थापन को अभिस्तावित किया गया। सरकार ने राष्ट्रीय जैवईंधन निधि के निर्माण संबंधित प्रस्ताव पारित किया, ताकि आर्थिक बढ़ावा जैसे सहायकया आर्थिक सहायता नये और द्वितीय व्यापीकरण अनिर्मित सामग्री, नवीन तकनीकियों, परिवर्तन प्रक्रियाओं और उत्पादन आदि के लिए मिल सके। प्रत्यक्ष विदेशी निवेश को आकर्षित करने के लिए स्वचालित अनुमोदन मार्ग के द्वारा जैवईंधन तकनीकियों को 100 प्रतिशत विदेशी निश्पक्षता की अनुमती मिली है।

कृषि के भविष्य को सुरक्षित रखने और देश की दो–तिहाई जनसंख्या की आजीविका में सुधार लाने के लिए, किसानों की आय को दोगुना करना एक आवश्यक चुनौती है, कृषि क्षेत्र स्तर पर प्राथमिक फसल अवशेषों के प्रबंधन में जैवईंधन तैयार करने से किसानों की आय बढ़ाने की प्रक्रिया को गति मिलेगी। जिसके लिये लोगों की भोज्य एवं उनकी जीविका की सुरक्षा हेतु कृषित अनिर्मित सामग्रियों पर आधारित जैवईंधनों के विस्तृत कार्यक्रम को कार्यान्वयन करने की आवश्यकता है। जीवाश्म ईंधन की घटती उपलब्धता, खनिज तेल और पेट्रोलियम पदार्थ की बढ़ती कीमतें एवं इसके आयात में लगने वाली विदेशी मुद्रा एक चिन्ता का विषय है एवं इसी परिपेक्ष्य में जैवईंधन एक वैकल्पिक ऊर्जा का अच्छा स्रोत उन्नत हो सकता है। भारत सरकार, विभिन्न राज्य सरकारें, गैर सरकारी एवं निजी संस्थानों द्वारा चलाये जा रहे प्रयास भविष्य में सहायक सिद्ध होंगे और जैवईंधन उत्पादन की दिशा में धनात्मक परिणाम मिलेंगे।

गन्नाः कैसे पायें अधिक आय

सुरेन्द्र सिंह, रेखा मलिक एवं मंगल सिंह
भाकृअनुप–भारतीय गेहूँ एवं जौ अनुसंधान संस्थान, करनाल

गन्ने के बारे में हम सभी जानते है, गन्ना या ईंख हमारे देश की मुख्य नकदी फसलों में से एक है। देश में कई राज्यों मे गन्ने की खेती की जाती है विशेषकर पश्चिमी उत्तर प्रदेश के हर गाँव में इसकी खेती की जाती है, इसीलिए उत्तर प्रदेश को भारत का चीनी का कटोरा भी कहा जाता है। गन्ने के रस से गुड़, शक्कर, खांड, चीनी, मिश्री आदि खाद्य पदार्थ बनाये जाते हैं।

गन्ने का उत्पादन हमारे देश में बहुतायत में होता है। विशेष रूप से हमारे देश में गन्ने से चीनी का उत्पादन किया जाता है। साल 2019–20 मे विश्व में कुल 166.18 मिलियन मीट्रिक टन चीनी पैदा हुई जिसमें से भारत का हिस्सा कुल 28.9 मिलियन मीट्रिक टन चीनी का था जो कुल उत्पादन का 17% था। हमारे देश में चीनी की पूर्ति इसकी मांग से अधिक है। सरकार अगर चीनी का निर्यात करे तो अन्तर्राष्ट्रीय बाजार में इसका मूल्य हमारी चीनी उत्पादन लागत से कम है। गन्ना किस भाव पर ख़रीदा जाय इसका निर्णय प्रदेश की सरकार करती है। चीनी मिलें सरकार द्वारा निर्धारित मूल्य पर गन्ना खरीदने के लियें बाध्य होती हैं। आजकल सरकार द्वारा निर्धारित मूल्य पर गन्ना खरीदकर चीनी उत्पादन करने से चीनी मिलों को घाटा होता है तो चीनी मिलें किसानों से खरीदे गए गन्ने का भुगतान समय पर नही कर पाती है, इस तरह से किसानों का पैसा चीनी मिलों के पास फंस जाता है। समय समय पर सरकार और चीनी मिलें कुछ समझौता करके किसानों को उनके गन्ने का भुगतान करती हैं, लेकिन पिछले कई सालों से हमारे देश में ये एक गंभीर समस्या चल रही है।

अपनी पूरी क्षमता पर उत्पादन करने के बावजूद चीनी मिलें किसानों का सारा गन्ना नही खरीद पाती है, तब किसानों को मजबूरी मे बचा हुआ गन्ना छोटे छोटे गुड़ व खांड बनाने वाले कोल्हू पर कम कीमत में बेचना पड़ता है। किसानों को अपना अतिरिक्त गन्ना कम कीमत पर ना बेचना पड़े, इसके लिए हम कुछ सुझाव दे रहे हैं जिसको अपनाकर किसान भाई अपनी आमदनी बढ़ा सकते हैं।

तुरन्त पीने के लिए गन्ने के जूस को बोतल मे भरकर बाजार में बेचना

तमिलनाडु कृषि विश्वविद्यालय, कोयम्बटूर, तमिलनाडु ने तुरंत पीने के लिए गन्ने के जूस को बोतल मे भरने की तकनीकी विकसित की है। इस विधि मे गन्ने का जूस निकालकर, उसे छानकर, ठंडा करके फिर बोतल में भरा जाता है, यह जूस ख़राब ना हो इसके लिए इस जूस मे सोडियम बेंजोएट नामक रसायन @125 पीपीएम संरक्षक के रूप मे मिलाया जाता है। यह जूस 5–6 महीने, रूम तापमान पर ख़राब नहीं होता। इसकी लागत 4–5 रुपये प्रति 250 मि. ली. आती है तथा यह 10–15 रुपये मे बिक जाता है। गर्मियों के दिनों में इस जूस को बेचकर आय अर्जित की जा सकती है।

पोषक तत्वों से भरपूर गुड़ का उत्पादन

इस प्रकार के गुड़ का उत्पादन भारतीय गन्ना अनुसंधान संस्थान, लखनऊ द्वारा किया जा रहा है। इस विधि में गुड़ बनाते समय उसमें उपयुक्त मात्रा में प्राकृतिक रूप से उपलब्ध विटमिन सी के स्रोत आंवला पाउडर को मिलाया जाता है जिससे गुड़ में प्रचुर मात्रा में विटमिन सी उपलब्ध हो जाता है।इस प्रकार के गुड़ को हम छोटे–छोटे चौकोर टुकड़ों में बनाकर, पैक करके बाजार मे बेच देते है। इसके अतिरिक्त इसमें सूखे अदरक के पाउडर को मिलाकर भी गुड़ की पौष्टिकता को बढाया जा सकता है। इस प्रकार के गुड़ को हम मीठे व्यंजन के रूप में खाने के साथ ले सकते हैं। इस गुड़ को स्कूलों में बच्चों को दोपहर के खाने में भी दिया जा सकता है। इस प्रकार से गुड़ का मूल्य संवर्धन करके किसान भाई अधिक आय ले सकते है। इस गुड़ को बनाने की लागत लगभग 45–50 रुपये प्रति किलोग्राम तक आती है और बाजार मे यह 90–100 रुपये प्रति किलोग्राम तक बिक जाता है।

तरल गुड़

इस विधि में गन्ने के जूस से गुड़ बनाते समय 100 ग्राम चूने को 5 लीटर पानी मे मिलाकर 100 लीटर जूस में डाला जाता है जिससे इसकी पी.एच. मात्रा 5.2–5.4 से बढकर 6.5–7.0 हो जाती है जिससे जूस मे मिली हुई अशुद्धियाँ ऊपर आ जाती है जिसको छानकर निकाल दिया जाता है।

चित्र 1. गन्ने की फसल

अधिक अशुद्धियाँ निकलने के लिए इसमे शुकलाई नामक वनस्पति के श्लेष्मक अर्क को मिलाया जाता है, फिर इसमें थोड़ा सा फास्फोरिक अम्ल मिलाकर इसको 105–106 डिग्री सेल्सियस तक लगातार उबालकर भट्टी से नीचे उतार लिया जाता है। इस तरह से ये जूस अम्लीय बन जाता है। फिर इसको ठंडा करके इसमे 0.4% सिट्रिक अम्ल और 0.5% बेन्जोइक अम्ल मिलाया जाता है। इनके मिलाने से यह तरल गुड़ ठोस रूप मे नहीं आता है और इसका जीवनकाल भी बढ जाता है। इस तरल गुड़ को शहद के विकल्प के रूप मे उपयोग किया जा सकता है। इसके बाद इस तरल गुड़ को किसी बोतल मे भरकर बाजार मे बेच दिया जाता है। इसे बनाने की लागत 60–70 रुपये प्रति किलोग्राम तक आती है और बाजार मे यह 100–120 रुपये प्रति किलोग्राम तक बिक जाता है।

औषधीय पाउडर/दानेदार गुड़/शक्कर

इस विधि में गुड़ बनाते समय अशुद्धियाँ निकलने के लिए इसमे शुकलाई नामक वनस्पति के श्लेष्मक अर्क को मिलाया जाता है जिससे जूस मे मिली हुई अशुद्धियाँ ऊपर आ जाती है जिसको छानकर निकाल दिया जाता है। फिर जूस को 120–122 डिग्री सेल्सियस तक लगातार उबालकर गाढ़ा किया जाता है, गाढ़ा होने पर इसे भट्टी से नीचे उतार लकड़ी की एक बड़ी ट्रे में डाल दिया जाता है। शक्कर बनाने के लिए इसे लगातार बड़े चमचे से हिलाकर ठंडा किया जाता है जब यह ठोस रूप मे आने लगे तो इसको लगातार रगड़कर पाउडर/दानेदार रूप मे बनाया जाता है। फिर इसमें अदरक पाउडर, सौंफ पाउडर, आंवला पाउडर आदि मिलाकर औषधीय शक्कर तैयार की जाती है। धूप में सुखाने के बाद इसे छानकर, पैक करके बाज़ार में बेचा जाता है। इस प्रकार शक्कर का मूल्य संवर्धन करके किसान भाई अधिक आय ले सकते है। इसे बनाने की लागत 50–60 रुपये प्रति किलोग्राम तक आती है और बाजार मे यह 90–100 रुपये प्रति किलोग्राम तक बिक जाता है।

चोकलेटी गुड़

इस विधि में गुड़ बनाते समय अशुद्धियाँ निकलने के लिए इसमे शुकलाई नामक वनस्पति के श्लेष्मक अर्क को मिलाया जाता है जिससे जूस मे मिली हुई अशुद्धियाँ ऊपर आ जाती है जिसको छानकर निकाल दिया जाता है। फिर जूस को 120–122 डिग्री सेल्सियस तक लगातार उबालकर गाढ़ा किया जाता है, गाढ़ा होने पर इसे भट्टी से नीचे उतार लकड़ी की एक बड़ी ट्रे में डाल दिया जाता है। फिर इसमें 81% गुड़ के अनुपात में 10% कोकोआ पाउडर, 6% डार्क चोकलेट मिश्रण, कुछ सूखे मेवे जैसे बादाम, काजू, मूंगफली आदि मिलाकर चोकलेटी गुड़ बनाया जाता है, फिर इसको छोटे छोटे टुकडों में बनाकर पैक करके बाज़ार में बेचा जाता है। इसे बनाने की लागत 8–10 रुपये प्रति 50 ग्राम तक आती है और बाजार मे यह 20–25 रुपये तक बिक जाता है।

ऑर्गेनिक गुड़/शक्कर

ऑर्गेनिक गुड़ बनाने के लिए जिस गन्ने का इस्तेमाल किया जाता है, वह ऑर्गेनिक तरीके से उगाया जाता है यानी गन्ने के खेत में किसी भी प्रकार के रासायनिक उर्वरक या कीटनाशक का उपयोग नहीं किया जाता है। इसके बदले बायो–उर्वरक या गोबर की खाद का उपयोग किया जाता है, ताकि रसायन मुक्त उत्पाद प्राप्त किए जा सकें। इसके लिए किसानों को अपने खेतों के लिए ऑर्गेनिक सर्टिफिकेशन भी लेना पड़ेगा, जिससे आपके उत्पाद के ऑर्गेनिक होने की पुष्टि होती हो। ऑर्गेनिक गुड़ बनाने के लिए आपके खेतों के गन्नों का ऑर्गेनिक होना ज़रूरी है। गन्ने के उन्हीं खेतों को ऑर्गेनिक सर्टिफिकेशन मिलता है जिनमें लगातार तीन वर्षों तक ऑर्गेनिक यानी जैविक तरीके से खेती की गई हो। ऑर्गेनिक सर्टिफिकेट पाने के लिए आपका जैविक खेती करना सबसे बड़ी अनिवार्यता है। ऑर्गेनिक गुड़ सामान्य गुड़ से लगभग दो गुने भाव पर बिकता है।

ऑर्गेनिक सर्टिफिकेशन लेने के लिए कृषि और प्रसंस्कृत खाद्य उत्पाद निर्यात विकास प्राधिकरण (APEDA) या

नेशनल सेंटर फॉर ऑर्गेनिक फार्मिंग (NCOF) से संपर्क कर सकते हैं। ऑर्गेनिक सर्टिफिकेशन, व्यक्तिगत आधार पर 1 से 25 किसानों को तथा सामूहिक आधार पर 25 से 2500 तक की संख्या में किसानों को दिया जाता है। ऑर्गेनिक गुड़ बेचने के लिए आपको नगर निगम, नगर पंचायत या ग्राम पंचायत जैसे स्थानीय निकायों से ट्रेड लाइसेंस लेना होगा तथा सूक्ष्म, लघु और मध्यम उद्यम (MSME) के पास भी रजिस्ट्रेशन कराना होगा। यदि आप बड़े स्तर पर इस बिज़नेस को करना चाहते हैं, तो भारतीय खाद्य सुरक्षा और मानक प्राधिकरण (FSSAI) और अंतरराष्ट्रीय मानकीकरण संगठन (ISO) सर्टिफिकेशन लेना भी ज़रूरी होगा।

राज्य सरकारें, ग्रामीण क्षेत्रों में छोटे उद्योगों को प्रोत्साहित करने के लिए खादी ग्रामोद्योग के तहत योजनाएं संचालित करती हैं। आप इनका भी लाभ ले सकते हैं। भारतीय गन्ना अनुसंधान संस्थान, लखनऊ से प्रशिक्षण ले सकतें हैं, इस प्रशिक्षण कार्यक्रम में आपको बिज़नेस से जुड़ी सारी बारीकियां बताई जाती हैं। हर गाँव में अगर किसान एक स्वंय सहायता समूह बनाकर, सरकारी मदद लेकर, एक मूल्य संवर्धित गुड़ बनाने का उद्योग लगाये तो किसान अपने बचे हुए गन्ने से गुड़ बनाकर मूल्य संवर्धन करके अधिक आय अर्जित कर सकते हैं।

अधिक जानकारी के लिए भारतीय गन्ना अनुसंधान संस्थान, लखनऊ, उत्तर प्रदेश से, फोनः 0522–2480726 फैक्सः 0522–2480748, ई मेलः iisrlko@sancharnet.in पर संपर्क कर सकते हैं, या हेड, खाद्य प्रक्रिया एवँ प्रौद्योगिकी विभाग, प्रौद्योगिकी कालेज, जी.बी. पंत, कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय पन्तनगर, उत्तराखंड –263145।

अधिक जानकारी के लिए टीएनएयु के फोन न. 0422–6611272; फैक्सः 0422–6611455; ई. मेलः processing@tnau.ac.in पर संपर्क कर सकते हैं।

मशरूम के मूल्य संवर्धित उत्पाद : सेहत एवं रोजगार

फूलकुमारी[1] एवं मो मुस्तफा[2]
[1]कृषि विज्ञान केन्द्र, कुरारा, हमीरपुर
[2]प्रसार निदेशालय बांदा कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, बांदा

मशरूम एक पौष्टिक, स्वास्थ्यवर्धक एवं औषधीय गुणों से युक्त रोगरोधक सुपाच्य खाद्य पदार्थ है। चीन के लोग इसे महौषधि सदृश्य मानते हैं जो जीवन में अदूभुत शक्ति का संचार करती हैं। रोम निवासी मशरूम को ईश्वर का आहार मानते हैं। यह पोषक गुणों से भरपूर शाकाहारी जनसंख्या के लिए महत्वपूर्ण विकल्प है तथा पौष्टिकता की दृष्टि से शाकाहारी एवं मांसाहारी भोजन के बीच का स्थान रखता है। मशरूम में उत्तम स्वास्थ्य के लिए सभी पोषक तत्व जैसे– प्रोटीन, कार्बोहाइड्रेट, विटामिन (बी1–12, सी, डी, के), रेशा, तथा खनिज लवण जैसे– पोटेशियम, फॉस्फोरस, सल्फर, कैल्शियम, लोहा, तांबा, आयोडीन, जिंक और एंटीऑक्सीडेंट प्रचुर मात्रा में पाए जाते हैं। इसके साथ–साथ नियासीन, पेंटोथेनिक तथा फोलिक अम्ल एवं आवश्यक विटामिन पाये जाते हैं। यह औषधीय रूप में भी उपयोगी है। मुख्यतः हृदय रोग, बेरी–बेरी, बच्चों का सूखा रोग, चर्म रोग तथा मधुमेह के रोगियों के लिए इसका सेवन उत्तम है। मशरूम की एक और विशेषता यह है कि पकने के बाद भी इसकी पौष्टिकता नष्ट नहीं होती तथा फलों, सब्जियों व दालों की अपेक्षा अधिक उपयोगी है। मशरूम की प्रोटीन में शरीर के लिए आवश्यक सभी अमीनो अम्ल, मेथियोनिन, आइसोल्यूसिन, लाइसिन, थायमिन, ट्रिप्टोफेन, वैलीन, हिस्टीडिन और आर्जीनिन आदि की प्राप्ति हो जाती है, जो दालों आदि में प्रचुर मात्रा में नहीं पाए जाते हैं। मशरूम प्रोटीन में लाइसिन नामक अमीनों अम्ल अधिक मात्रा में होता है जबकि गेहूँ, चावल आदि अनाजों में इसकी मात्रा बहुत कम होती है, यह अमीनो अम्ल मानव के सन्तुलित भोजन के लिए आवश्यक होता है। भारतीय भोजन में मुख्यतः गेहूँ, चावल, मक्का, सब्जी शामिल होता है, जिसमें प्रोटीन की मात्रा बहुत कम होती है। अतः यदि भारतीय भोजन में मशरुम का व्यंजन शामिल कर लिया जाय तो प्रोटीन का अंतर कम हो जाएगा तथा यह भोजन स्वास्थ्यवर्धक भी हो जाएगा, इसे सभी आयु वर्ग के लोग प्रयोग कर सकते हैं। यह एक सुपाच्य भोज्य पदार्थ है जिसमें प्रोटीन की मात्रा पर्याप्त होती है। साथ ही फाइबर (रेशा) विटामिन एवं खनिज लवण भी पाया जाता है।

भारतीय मशरूम उद्योग अभी भी ताजे मशरूम पर निर्भर करती है इसलिए अब यह जरूरी हो जाता है कि मूल्यवर्धक उत्पाद पर बल दिया जाए। यद्यपि मशरूम में नमी ज्यादा होती है इसलिए खराब होने की संभावना ज्यादा होती है। प्रभावी मूल्यवर्धक उत्पाद बनाने के लिए इस क्षेत्र में वैज्ञानिक एवं उद्यमी किसानों को ध्यान देने की अत्यन्त जरूरत है। मशरूम के मूल्यवर्धक उत्पाद न केवल पोस्ट हार्वेस्ट नुकसान को ही नहीं कम करेगा बल्कि सभी मशरूम व्यवसायियों को अधिक से अधिक लाभ पहुँचायेगा। आकर्षक और उच्च गुणवता की पैकेजिंग पर भी ध्यान देने की जरूरत है जो कि आज तक अनछुआ क्षेत्र रहा है। मशरूम के विभिन्न मूल्यवर्धक उत्पाद बना सकते हैं। उद्यमी किसान, मशरूम से निम्नलिखित मूल्यवर्धक उत्पाद बनाकर आर्थिक स्तर ऊँचा कर सकते है;

1. मशरूम सूप पाउडर
2. मशरूम आधारित बिस्किट
3. मशरूम नगेट्स
4. मशरूम नूडल
5. मशरूम पापड़
6. मशरूम कैंडिज
7. मशरूम करी
8. मशरूम मुरब्बा
9. मशरूम चिप्स
10. मशरूम केचअप
11. मशरूम अचार

मशरूम से सूप पाउडर, बिस्किट एवं अनेक व्यंजन तैयार किये जा सकते हैं। मशरूम सूप पाउडर पंच सितारा होटलों की शान है। देश के अनेक भागों में मशरूम सूप पाउडर का निर्माण 50 ग्राम या अन्य पैकिंग में हो रहा है। मशरूम पाउडर से मशरुम बड़ी व पापड़ बनाये जा रहे हैं। मशरूम के अनेक व्यंजन जैसे मशरूम टमाटर सूप, मशरूम सलाद,

मशरूम पुलाव, मशरूम चीले, मशरूम नूडल्स, मशरूम अचार, मशरूम चटनी, मशरूम नीबू–अचार आदि बनाये जा सकते हैं एवं इनका दैनिक भोजन में समावेश किया जा सकता है। भारतवर्ष जैसे देशों में जहाँ प्रोटीन की अत्यधिक कमी है मशरूम का इस्तेमाल प्रोटीन की कमी को दूर करने का कारगर उपाय है।

मशरूम पाउडर

मशरूम को सुखाना: मशरूम को 05 प्रतिशत पोटैशियम मेटा बाई सल्फाइट व 0.2 प्रतिशत साइट्रिक अम्ल के घोल में रात भर रखने के बाद किसी साफ–सुथरी चटाई पर रखकर धूप में सूखा लेना चाहिए। धूल, गंदगी व कीड़े–मकोड़ो से बचाने के लिए पतले कपड़े से ढककर सुखाना चाहिए। अच्छी तरह सूख जाने पर पॉलीथीन के थैलों में पैक कर लेना चाहिए। सूखे मशरूम को पीसकर पाउडर भी बनाया जा सकता है जिसका प्रयोग सूप बनाने में किया जा सकता है।

दूसरी विधि–मशरूम को एक मिनट के लिए ब्लान्च कर 0. 2 प्रतिशत पोटैशियम मेटाबाई सल्फाइट एवं 5 ग्राम प्रति लीटर साइट्रिक एसिड के घोल में 10 मिनट तक उपचारित करें एवं सुखा लें। अच्छी तरह सूख जाने पर पॉलिथिन के थैलों में पैक कर सूखे स्थान पर भंडारित करें।

मशरूम का सूप पाउडर

सामग्री: मशरूम पाउडर–15 ग्राम, कॉर्न फ्लॉर–05 ग्राम, दूध पाउडर– 50 ग्राम, रिफाइन्ड तेल –05 ग्राम, नमक–10 ग्राम, जीरा पाउडर–02 ग्राम, काली मिर्च पाउडर–02 ग्राम, चीनी–10 ग्राम, अजिनोमोटो–02 ग्राम।

बनाने की विधि: बटन/ओयस्टर मशरूम का पाउडर लें। इसमें दी गई आवश्यक सामग्री को अच्छी तरह मिला दें एवं पॉलिथिन के थैलों में पैक कर सूखे स्थान पर भंडारित करें।

मशरूम पापड़

सामग्री: मशरूम का आटा–250 ग्राम, मूंग का आटा–500 ग्राम, उडद का आटा–250 ग्राम, खडा जीरा–50 ग्राम, काली मिर्च पाउडर–एक चम्मच, खाने का तेल–50 ग्राम, नमक स्वादानुसार।

बनाने की विधि : मशरूम पापड बनाने के लिये मशरूम को सुखाकर बारीक पीसकर आटा बना लेते हैं। इस आटे में

मूंग–उडद का आटा या दोनों को आधा–आधा अनुपात में लेकर मशरुम के आटे के साथ 4:1 के अनुपात में मिलाकर पापड बनाने के लिये उपयोग करते है। उपयुक्त सामग्री को मिलाकर आटे को पानी डालकर गुथ लेते हैं। अब इससे छोटी–छोटी गोली बनाकर तेल लगाकर पतला बेलकर छत मे सुखा लेते हैं। इसे वायुरोधी डिब्बे में रख कर लम्बे समय तक इस्तेमाल कर सकते है।

मशरूम बिस्कुट

सामग्री: मैदा–500 ग्राम, मशरूम पाउडर–10 ग्राम, चीनी–120 ग्राम, घी– 250 ग्राम, बेकिग पाउडर –1/4 ग्राम, वनिला एसेंस।

बनाने की विधि: कुड़कुड़े मशरूम बिस्किट बनाने के लिए सर्वप्रथम सभी सामग्री को मिक्सी में बारीक पीस लें एवं महीन छलनी से छान लें। घी एवं चीनी पाउडर को अच्छी तरह आटा गुथने वाली मशीन में 5–7 मिनट तक मिला लें ताकि मिश्रण एकसार हो जाये। अब पानी छोड़कर बाकी सभी सामग्री को आटा गूथने वाली मशीन में सूखा ही 20–25 मिनट मिलायें, फिर 500 मिली. पानी डालकर 10–15 मिनट तक मिलायें। अब गुथे आटे को भींगे कपड़े से ढंक कर 10 मिनट के लिए छोड़ दें।

अब आटे को 125 सेमी. मोटाई में बेल लें तथा स्टील के फर्मा से मनचाहे आकर में काट लें। इन टुकड़ों को स्टील ट्रे में रखकर ऑवन में 180°C पर 20–25 मिनट बेक करें। अब ट्रे को

ऑवन से बाहर निकाल कर ठंडा होने के लिए छोड़ दें। इन्हें अब प्रयोग करें या पैक कर भंडारित करें। विस्किट में प्रयोग होने वाली सामग्री में चीनी–मीठा, घी–मुलायम तथा अमोनियम बायक्रोमेट–कुरकुरा बनाता है।

मशरूम बड़ी

सामग्रीः उड़द दाल पाउडर, मशरूम पाउडर नमक 2 प्रतिशत, लाल मिर्च पाउडर 1 प्रतिशत, सौंफ– 1 चम्मच, काली मिर्च 1 चम्मच।

बनाने की विधिः मशरूम बड़ी तैयार करने के लिए मशरूम पाउडर, उड़द दाल बेसन को अच्छी तरह मिलाकर आवश्यकतानुसार पानी डालकर मिलायें। मशाले एवं नमक भी डाल दें। अच्छी तरह गूथ कर आटा तैयार कर गोल–गोल. गोला बनाकर स्टील ट्रे में डालकर धूप में सूखा लें। अच्छी तरह सूखने पर पैक कर सूखे तथा वायुरोधी पात्र में भंडारित करें। इसे तल कर स्नेक्स के रूप में प्रयोग कर सकते हैं या सब्जी बनाकर प्रयोग कर सकते है।

मशरूम सॉस

सामग्रीः मशरूम–1 किलोग्राम, नमक–10 ग्राम, चीनी–250 ग्राम, एसीटिक एसिड–15 मिली, सोडियम बेंजोएट–1 ग्राम, प्याज–2 सोंठ, लहसुन–1, अदरक–30 ग्राम, कालीमिर्च पाउडर–1 चम्मच, लाल मिर्च पाउडर–1 चम्मच, अरारोट–20 ग्राम जावित्री–1 ग्राम।

बनाने की विधिः मशरूम को धो लें व नमक डालकर 12 घंटों के लिए छोड़ दें। दूसरे दिन मशरूम में सिरका मिलाकर एक सप्ताह तक छोड़ दें। इस नमकीन व फूले हुए मशरूम को पीस लें। मशाला एवं सिरका मिलाकर तब तक पकायें जब तक कि उसकी मात्रा एक तिहाई न हो जाए। केचप को गर्म–गर्म ही बोतल में भर कर सील कर दें।

मशरूम मुरब्बा

सामग्रीः बटन मशरूम–1 किग्रा, चीनी–1.5 किग्रा, पोटेशियम मेटा बाई सल्फाइट, साइट्रिक अम्ल।

बनाने की विधिः मशरूम को साफ पानी से धुलकर काटें वाली चम्मच से गोद लेते हैं। इसके बाद गोदे हुए मशरूम को साफ कर 0.05 प्रतिशत के.एम.एस. घोल में 10 मिनट के लिए ब्लॉच करते हैं। अब मशरूम को ठंडा कर लें एवं मशरूम के वजन की दोगुनी चीनी लें तथा बर्तन में मशरूम एवं आधी चीनी लेकर बारी–बारी से एक–दूसरे की तह लगाकर 24 घंटे के लिए अलग रख देते हैं, जिससे मशरूम का फालतू पानी, चीनी का 40 प्रतिशत घोल बना देता है। दूसरे दिन मशरूम को निकालकर आग पर चढ़ाकर आधा बची चीनी डाल दें। चीनी घुल जाने के बाद गदगी को छानकर हटा दें एवं इसमें मशरूम को डालकर पकायें। 5–10 मिनट बाद चासनी पतला हो जाता है। अब मशरूम को निकालकर चासनी को 5 मिनट पकायें और मशरूम को डालकर 24 घंटे के लिए छोड़ दें। यह प्रक्रिया पुनः तीसरे दिन भी दोहराये, जब तक की चीनी की सान्द्रण 65–68 ब्रिक्स ना पहुँच जाए। चासनी शहद जैसी गाढ़ी हो जाने पर 0.1 प्रतिशत साइट्रिक अम्ल मिलाकर आग से उतर लें। इसके बाद उत्पाद ठंडा होने पर उपयुक्त बर्तन में भरकर भंडारित कर देते हैं।

मशरूम अचार

सामग्रीः मशरूम–1 किलोग्राम, पीसी राई–30 ग्राम, हल्दी पाउडर–25 ग्राम, लाल मिर्च पाउडर–10 ग्राम, जीरा पाउडर–15 ग्राम, सौंफ पाउडर–15 ग्राम, कलोंजी–10 ग्राम, अजवाइन–10 ग्रामे, गरम मसाला–10 ग्राम, सरसों का तेल 200 मिली. नमक 100 ग्राम, एसिटिक एसिड 2.5 मिली., सोडियम बेंजोएट– 1 ग्राम।

बनाने की विधिः बटन मशरूम को साफ पानी से धुलकर टुकड़ों में काट लें एवं 0.05 प्रतिशत के.एम.एस. के घोल में 5 मिनट ब्लॉच करें, फिर ठंडे पानी में 2–3 बार घो लें। अब इसमें 10 प्रतिशत नमक डालकर रात भर छोड़ दें। अगले दिन मशरूम जो पानी छोड़ेगा उसे हटा लें एवं नमक, तेल, हल्दी एवं सभी मसालों को मिला दें। अन्त में एसिटिक एसिड मिलायें।

दूसरी विधिः

सामग्री– मशरूम–250 ग्राम, जीरा पाउडर–2 चम्मच, मेंथी पाउडर–1/2 चम्मच, हल्दी पाउडर–1 चम्मच, सरसों पाउडर–1 चम्मच, लाल मिर्च पाउडर–1 चम्मच, सिरका या एसिटिक एसिड–100 मि.ली., नमक–400 ग्राम, सरसों तेल–200 मि.ली.।

बनाने की विधिः ताजे मशरूम को स्वच्छ जल से अच्छी तरह धोयें। आवश्यकतानुसार आकार के टुकड़ों में काटे और निचोड़े। अब इसे 100 मि.ली. सरसों तेल में इतना तले कि मशरूम का 3/4 भाग पानी सूख जाये। तले मशरूम को अलग बर्तन में रखें। इसके बाद बचे तेल में सभी मसाला अच्छी तरह भूनें एवं तले मशरूम को मसालें के साथ मिलाकर 15 मिनट तक अच्छी तरह पकायें एवं नमक मिलाकर ठंढा करके स्वच्छ काँच के बर्तन में भंडारित करें।

तीसरी विधि

सामग्रीः मशरूम–250 ग्राम, हल्दी पाउडर–1 चम्मच, सरसों पाउडर–1 चम्मच, लाल मिर्च पाउडर–1 चम्मच, नमक–100 ग्राम, हींग–एक चुटकी, तिल का तेल–100 मि.ली.।

बनाने की विधिः मशरूम को 10 मिनट तक पानी में उबालकर 5–6 घंटे धूप में सुखायें। अब तेल मसाला एवं मशरूम को एक साथ मिलाकर सूखे जार में भरें। जार को 2–3 घंटे प्रतिदिन (20 दिनों तक) धूप में सुखायें, तब कमरे के तापक्रम पर भंडारित करें।

चौथी विधि

सामग्रीः मशरूम–250 ग्राम, जीरा पाउडर–1 चम्मच, मेंथी पाउडर–1 चम्मच, धनिया पाउडर–1 चम्मच, हल्दी पाउडर–1 चम्मच, सरसों पाउडर–1 चम्मच, हरा मिर्च–5 पीस, सिरका–50 मि.ली. या एसिटिक एसिड–5 मि.ली., नमक–100 ग्राम, सरसों तेल–50 मि.ली.।

बनाने की विधिः ताजे मशरूम को काटकर पानी से अच्छी तरह धोकर हल्का निचोड़ें। धीमी आंच पर स्टील के बर्तन में ढंककर 50 मि.ली. सरसों के तेल में अच्छी तरह भूनकर रखें। सभी मसाला एवं नमक को अच्छी तरह मिलायें एवं मिर्च के टुकड़ों को भूनें। इसके बाद सभी मसाला एवं मिर्च को एक साथ मिलायें एवं ठंडा करके जार में भरें और भंडारित करें।

पाँचवी विधि

सामग्री : मशरूम–250 ग्राम, खड़ा मसाला–3 ग्राम, जीरा पाउडर, मेंथी पाउडर, धनिया पाउडर, हल्दी पाउडर, सरसों पाउडर, हरी मिर्च, सिरका–100 मि.ली. या एसिटिक एसिड–10 मि.ली., नमक–50 ग्राम, सरसों तेल–500 मि.ली, हींग–स्वादानुसार।

बनाने की विधिः मशरूम को अच्छी तरह साफ करके काट लें। इसके बाद एक बर्तन में तेल गरम कर मशरूम को नमक के साथ 20–30 मिनट तक पकायें। जीरा, मेथी एवं धनिया को हल्का भूनकर पीस लें। इसे पिसे हुए सरसों एवं हल्दी में मिला लें। हरी मिर्च की लम्बाई में काटकर तेल में हल्का भुन दें। मसला पाउडर एवं पकाये मशरूम को मिर्च में अच्छी तरह मिलायें एवं आग से हटा लें। सिरका मिलाकर बोतल में भर दें। इसके बाद अचार के ऊपर बाकी बचा तेल (गर्म कर ठंढा किया हुआ) डाल दें।

मशरूम जैम

सामग्रीः मशरूम–1 किलोग्राम, पैक्टिन पाउडर–1 प्रतिशत, चीनी–1 किलोग्राम, सिट्रिक एसिड–1 प्रतिशत, कांच का जार।

बनाने की विधिः मशरूम को साफ कर उबाल लें और पेस्ट बना लें। अब इस पेस्ट में चीनी और पैक्टिन पाउडर मिलाकर तेज आंच पर चलाते हुए पकाएं। जब यह गाढ़ा होने लगे तो इसमें सिट्रिक एसिड मिलाकर बर्तन में चिपकाने से बचें और चलाते रहें ताकि कुल घुलन शील ठोस 68 बिक्स तक पहुँच जाए। तैयार जैम की कुछ बुँदे प्लेट पर रख कर ठंडा होने दें, यदि प्लेट पर बुँदे थक्के के रूप में फिसले तो जैम तैयार समझे। अब तैयार जैम को साफ जार में गरम–गरम भर लें और ठंडा होने पर पिघले हुए मोम से सील कर दें अब जार को साफ, ठंडे और सूखे स्थान पर भंडारित करें।

मशरूम केचप

सामग्रीः खुम्भी 500 ग्राम, नमक 12 ग्राम, इलायची (पिसी) 2 ग्राम, जावित्री 2 ग्राम, सिरका या ग्लेसियल एसिटिक एसिड 500 मि.ली. दाल चीनी (पिसी) 1 ग्राम, सौंठ 2 ग्राम, काली मिर्च 2 ग्राम, लौंग पिसी 2 ग्राम, लाल मिर्च 2 ग्राम।

बनाने की विधिः मशरूम की टोपियों को एक गीले कपड़े से साफ कर लें। नमक छिड़कने के बाद मशरूम को एक चीनी मिट्टी के बर्तन में 12 घंटे के लिए रख दें। सिरके में युक्तियों कई दिन के लिए संचित रह सकती है। सिरके में भिगी या नमक लगे मशरूम को पीसकर गाढ़ा घोल बनाए और मसाले मिला दें। इस घोल को केचप जैसा गाढ़ा होने तक आँच पर रखें। महक बढ़ाने के लिए थोड़ा सा मीट–सत्

या मोनोसोडियमग्लुटामेंट भी मिला सकते हैं। गर्म–गर्म बोतलों में भरकर कार्क लगा और उबलते पानी में 30 मिनट तक बोतलें विसंक्रमित करें। बोतलें ठंडी करके शुष्क जगह पर रखें। इसे इसी तरह या सैंडविच और आमलेट के साथ प्रयोग कर सकते हैं।

मशरूम की मीठी चटनी

सामग्रीः मशरूम–1 किलो, चीनी कुछ ग्राम, लहसुन–10 ग्राम, मिले जुले मसाले–30 ग्राम (इलायची, दालचीनी), प्याज–50 ग्राम, हरी मिर्च–10 ग्राम, सिरका–80 मिली, तिल का तेल–50 मिली, काली मिर्च साबुत–2 चम्मच।

बनाने की विधिः मशरूम धोकर, लंबाई में काट लें। प्याज, हरी मिर्च, लहसुन और अदरक महीन काट लें। कढाई में तेल गर्म करके प्याज दो मिनट तक भूने। अब अदरक, लहसुन, हरी मिर्च को इसमें डालकर दो मिनट के लिए पकाएं, बारीक कटी हुई खुम्भीयाँ और आधा कप पानी डालकर, नरम होने तक पकाएं। तत्पश्चात् चीनी मिला दें और चीनी घुलने तक पकाएं। नमक, लाल मिर्च पाउडर और सिरका मिला दें और 5–7 मिनट तक पका लें। अंत में भुने हुए पिसे मसाले मिलाकर लगभग एक मिनट तक पकाएं। ठंडा करके, विसंक्रमित बोतलों में संचित कर लें।

मशरूम चिप्स

सामग्री : मशरुम, गरम मसाला, लाल मिर्च पाउडर, नमक, 0.1 प्रतिशत साइट्रिक अम्ल, पोटेशियम मेटा बाई सल्फाइट।

बनाने की विधिः ताजा बटन मशरूम को साफ कर 2 मिमी मोटी गोलाई में फॉके काटें एवं 2 प्रतिशत नमक के घोल में बलान्च करें। 0.1 प्रतिशत साइट्रिक अम्ल, 1.5 प्रतिशत नमक के घोल में रात भर इसे छोड़ दें। अब इसे निकालकर ड्रायर में 60° सेंटीग्रेड ताप पर 8 घंटे के लिए सुखा लें। सूखे चिप्स को तल लें ऊपर से भूनकर पीसा हुआ मसाला एवं लाल मिर्च पाउडर बुरक दें एवं आकर्षक पॉली बैग में सील कर दें।

मशरूम नूडल्स

सामग्रीः मशरूम पाउडर–20 ग्राम, गेहूँ का आटा–40 ग्राम, आलू पाउडर–20 ग्राम, व स्वीट कॉर्न के आटे–20 ग्राम, बैंकिग पाउडर–0.2 प्रतिशत तथा रिफाइंड तेल–20 मि.ली.।

बनाने की विधिः मशरूम को नूडल्स बनाने के लिए मशरूम के पाउडर (20 ग्राम), गेहूँ का आटा–40 ग्राम) आलू के पाउडर (20 ग्राम) व स्वीट कॉर्न के आटे (20 ग्राम) को छानने के बाद अच्छी तरह मिलाया जाता है। मिली हुई सामग्री में 0.2 प्रतिशत बैंकिग पाउडर

तथा 20 मि.ली. रिफाइंड तेल मिलाया जाता है। पानी डालकर इस सामग्री को अच्छी तरह गूथ लेने के बाद 20–30 मिनट तक छोड़ दिया जाता है। गूथे आटे के मिश्रण को सेविया बनाने वाली मशीन, जिसकी छन्नी के छिद्र 3 मि. मी. के हो। जिसमें डालकर सेवियां बनायी जाती हैं। इन्हें 3–4 मिनट तक स्टीमिंग उपरान्त धूप में अच्छी तरह सुखाकर सीलबंद डिब्बों में रखा जाता है। खाने के समय नूडल्स को उबलते पानी, जिसमें एक चम्मच तेल हो, में 3 मिनट तक पकाया जाता है। ठंडा करने को उपरांत इन्हें अन्य सब्जियों के साथ मिलाकर उपयोग किया जासकता है। पकाने के लिये बर्तन में एक बड़ा चम्मच तेल डालकर गरम करके प्याज मौसमी सब्जियां, नमक स्वादानुसार, लाल मिर्च, सोया सॉस तथा सिरका इत्यादि मिलाया जाता है। इस मिश्रण में उबाली हुई नूडल्स को मिलाकर टमाटर की सॉस के साथ परोसा जाता है।

मशरूम कैन्डी

सामग्रीः मशरूम– 1 किग्रा, चीनी– 500 ग्राम, पोटैशियम मेटा बाई सल्फाइट।

बनाने की विधि : ताजा साफ बटन मशरूम को ऊर्ध्वाधर दो भाग में काटकर 0.05 प्रतिशत के.एम.एम. के घोल मे 5 मिनट ब्लांच करें । आधा घंटा पानी निथरने के लिए छोड़ दें। अब प्रति किलों ब्लान्च मशरूम की दर से 500 ग्राम चीनी लें। चीनी को तीन भाग में बाँट ले। प्रथम दिन ब्लान्च मशरूम को एक भाग चीनी से ढककर 24 घंटे के लिए छोड़ दें। दूसरे दिन दूसरे हिस्से से मशरूम को ढंक दें। तीसरे दिन मशरूम को घोल से निकालकर चीनी के घोल को बाकी बचे चीनी के साथ 0.1 प्रतिशत साइट्रिक एसिड मिलाकर उबालेंगे, जब चीनी का सान्द्रण 70 ब्रिक्स पहुँच जाय या शहद जैसा गाढ़ा हो जाए तो मशरूम को चाशनी में डाल दें एवं पुनः 5 मिनट तक पकायें एवं 72 ब्रिक्स सान्द्रण ले आयें। ठंडा होने पर मशरूम को चाशनी से निकाल कर आधा घंटे के लिए छोड़ दें ताकि अतिरिक्त चाशनी निकल जाए। अब इसे ड्रायर में 60° ताप पर 10 घंटे के लिए सुखा लें ताकि ये क्रिस्पी हो जाए। क्रिस्पी कैन्डी को पॉलीप्रोपलीन बैग में सीलबंद कर दें। इसे 8 माह तक भंडारित किया जा सकता है।

शाकाहारी परिवारों की प्रोटीन की जरूरत को पूरा करने के लिए प्रोटीन से भरपूर मशरूम से बनने वाले नाना प्रकार के

व्यंजन तैयार करना भी महिलाओं के लिए एक अनुकूल व्यवसाय है। आज के समय में जबकि कामकाजी महिलाओं के लिए घर में तरह–तरह के व्यंजन तैयार करना संभव नहीं है, तो इस दशा में पोषक तत्वों से भरपूर मशरूम के व्यंजन बनाकर उनकी आपूर्ति करना एक अच्छा व्यवसाय हो सकता है। मशरूम से पकौड़ा, सब्जी, सूप, पिज्जा, बिस्कुट, पापड़, सलाद, अचार, चटनी के साथ–साथ कई दक्षिण भारतीय व्यंजन भी बनाये पाउडर, मशरूम पापड़ और मशरूम का अचार तैयार करने का काम कुटीर उद्योग स्तर पर किया जा सकता है। मशरूम का सेवन हमारे शरीर को ऊर्जावान बनाये रखता है एवं शरीर की रोगों के प्रति लड़ने की क्षमता को भी बढ़ाता है।

क्या हमारी थाली सुरक्षित हैं?

रमेश चन्द[1], अनुज कुमार[1], पूनम जसरोटिया[1] एवं महा सिंह[2]
[1]भाकृअनुप–भारतीय गेहूँ एवं जौ अनुसंधान संस्थान, करनाल
[2]कृषि विज्ञान केन्द्र, चौधरी चरण सिंह, हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय क्षेत्रीय केन्द्र, करनाल

भारत ने पिछले कुछ वर्षों में कृषि में रिकॉर्ड उत्पादन की सफलता की कहानी लिखी है। पिछले एक दशक में रिकॉर्ड तोड़ खाद्यान्न उत्पादन दर्ज किया गया था। 1966–67 में 74.23 मिलियन टन से, 2019–20 में देश का उत्पादन बढ़कर 296.65 मिलियन टन हो गया। वर्ष 2009, 2014 और 2015 में तीन साल के सूखे ने भी वास्तव में उत्पादन को कम नहीं किया। सरकार ने गर्व के साथ निष्कर्ष निकाला कि देश न केवल आत्मनिर्भर है, बल्कि निर्यात करने के लिए पर्याप्त है। इसलिए, यह परेशान करने वाला था कि देश में पिछले दो दशकों में किसानों की आत्म–हत्याओं की संख्या और उतनी ही अधिक संख्या में किसान विरोध दर्ज किए गए थे। 1991 और 2011 के बीच, 14 मिलियन से अधिक आर्थिक रूप से तनावग्रस्त किसानों ने खेती छोड़ दी एवं युवा किसान इससे पहरेज रखने लगे।

कई बार देश में प्याज, आलू व टमाटर का किसानों द्वारा इतना उत्पादन हो जाता है कि किसान को उसका न केवल उचित मूल्य नहीं मिलता बल्कि अपनी फसल का खर्च भी निकालने में भी असमर्थ हो जाते है। इस हालत में किसान अपनी फसल को सड़कों या खेत में ही डंप कर रहे होते हैं। इस स्थिति को ध्यान में रखकर सरकार ने किसानों के लिये 2022 तक किसानों की आय दुगनी करने का लक्ष्य रखा तथा प्रसंस्करण की ओर ध्यान दिया गया।

देश की आत्मनिर्भरता का दावा

एक देश को आत्मनिर्भर तभी कहा जा सकता है जब वह अपनी घरेलू जरूरतों को पूरा करने के लिए पर्याप्त उत्पादन करें। खाद्य एवं कृषि संगठन ने आत्मनिर्भरता के तीन स्तर बनाए हैं; 80 प्रतिशत से नीचे, जो खाद्य घाटे को दर्शाता है; 80 और 120 प्रतिशत के बीच, आत्मनिर्भरता का संकेत; और, 120 प्रतिशत से ऊपर, जिसका अर्थ है अधिशेष। भारत आत्मनिर्भरता दिखाता है, और दूसरे समूह में शामिल हो जाता है जिसमें चीन, संयुक्त गणराज्य तंजानिया और बोलीविया शामिल हैं।

देश 270 मिलियन भूखे लोगों का घर है, जो दुनिया में सबसे ज्यादा है। ऑक्साफैम के खाद्य उपलब्धता सूचकांक में भारत 97वें और 2018 ग्लोबल हंगर इंडेक्स में 103वें स्थान पर है। सरकार के अपने आंकड़े बताते हैं कि देश आत्मनिर्भर नहीं है। नीति आयोग के सदस्य रमेश चंद ने वर्ष 2012 से 2017 तक केंद्रीय कृषि मंत्रालय के एक कार्यकारी समूह का हिस्सा थे तक उन्होनें मांग और आपूर्ति

संतुलन पर एक विस्तृत रिपोर्ट दी थी, इस रिपोर्ट में 2016–17 में 257.70 मिलियन टन की मांग की भविष्यवाणी की थी। अगर सरकार इससे अधिक उत्पादन करती है तो सरकार अधिशेष उत्पादन का दावा कर सकती है। उस वर्ष देश ने 275.11 मिलियन टन का उत्पादन किया। यह निर्धारित मांग से कुछ ही मिलियन टन अधिक था, जो सूखे के दौरान मांग को पूरा करने के लिए पर्याप्त नहीं था। भारत में जनसख्या दर भी दिन–प्रतिदिन बढ़ती जा रही है जो हमारे सामने एक चुनौती है। भारत में विगत तीन दशक से रसायनिक खादों का उपयोग लगातार बंद रहा है। वर्ष 1965–66 में रासायनिक खाद की खपत 784 हज़ार टन थी। जो कि वर्ष 2019–20 में लगभग 37.46 गुणा बढ़कर 29369 हजार टन हो गई।

कम उत्पादन व निर्यात

कृषि मंत्रालय के आंकड़ों से पता चलता है कि देश ने 2015–16 में 20.4 मिलियन टन और 2017–18 में 22.3 मिलियन टन कृषि उपज का निर्यात किया। इसने 2015–16 में 8.1 मिलियन टन और 2017–18 में 9.4 मिलियन टन का आयात किया। देखने में तो सब कुछ ठीक लगता है, लेकिन देश खाद्यान्न का बड़े पैमाने पर आयात करता रहा है। खाद्यान्न आयात यह दर्शाता है कि कृषि प्रधान देश में खाद्य उत्पादन कितना अपर्याप्त है। 2015–16 में, आयातित कृषि उत्पाद में खाद्यान्न की हिस्सेदारी 79 प्रतिशत थी; अगले वर्ष यह आंकड़ा 78 प्रतिशत था।

आर्थिक सर्वेक्षण 2018 की वार्षिक रिपोर्ट में कहा गया है कि खाद्यान्न की शुद्ध उपलब्धता प्रति व्यक्ति प्रतिदिन 487 ग्राम है। बहुत पहले 1961 में, खाद्यान्न की प्रति व्यक्ति उपलब्धता 468.7 ग्राम थी, जबकि 1971 में यह 468.8 ग्राम

थी। 1981 में यह घटकर 454.8 ग्राम हो गया। 1991 में शुद्ध उपलब्धता बढ़कर 510 ग्राम प्रति व्यक्ति प्रति दिन हो गई, लेकिन उस समय की यह बहुत अच्छी बढ़ोत्तरी थी जिसको विगत वर्षो में छुआ नहीं जा सका। हमारे देश में प्रति व्यक्ति प्रतिदिन कुल खाद्यान उपलब्धता 1966–67 में 408 ग्राम थी जोकि बढकर 512 ग्राम हो गयी। हमारे केन्द्रीय भंडारण में वर्ष 1991 में कुल खाद्यान 19.13 मिलियन टन था जो वर्ष 2020 में लगभग तीन गुना बढ़कर 56.84 मिलियन टन हो गया।

वर्ष 1966 में, प्रति व्यक्ति खाद्यान्न उपलब्धता प्रति वर्ष 149 किलोग्राम और 2020 में 187.1 किलोग्राम थी। 1903 और 1908 के बीच, खाद्यान्न की शुद्ध उपलब्धता 177.3 किलोग्राम थी। ये ऐतिहासिक रूप से कम आंकड़े भारत में ब्रिटिश शासन के समय की याद दिलाते हैं, जिसमें समान खाद्य उपलब्धता देखी गई थी। इसके विपरीत, 2015 में, चीन की प्रति व्यक्ति खाद्यान्न उपलब्धता 450 किलोग्राम, बांग्लादेश में 200 किलोग्राम और अमेरिका में 1,100 किलोग्राम भारत से अधिक थी।

पौष्टिक रूप से भूखा

भारत में पिछले कुछ वर्षों में भोजन की उपलब्धता में सुधार नहीं हुआ, इसलिए पोषण का सेवन निराशाजनक रहा। 2011–12 में, ग्रामीण भारत में रहने वाले लोगों के वास्तविक और अनुशंसित आहार ऊर्जा सेवन में 30 प्रतिशत का अंतर था। उस वर्ष शहरी क्षेत्रों में यह अंतर 20 प्रतिशत था। सरकार और अधिकांश शिक्षाविद अल्पपोषण को उपभोग की टोकरी के विविधीकरण के लिए जिम्मेदार ठहराते हैं। यह सच नहीं है, "लेकिन देश के अर्थशास्त्री कहते हैं कि खाद्यान्न अवशोषण में गिरावट लोगों की क्रय शक्ति में लगातार गिरावट के कारण है।

1993–94 और 2011–12 के बीच, निम्न आय वर्ग के बीच औसत कैलोरी की मात्रा में वृद्धि हुई। हालांकि, अमीर घरों में कैलोरी की मात्रा में गिरावट आई थी। डॉ रमेश चंद, सदस्य निति आयोग के अनुसार, गरीबों के बीच कैलोरी की खपत में वृद्धि भोजन की बेहतर पहुंच को दर्शाती है। वह अमीरों के बीच कैलोरी की मात्रा में गिरावट का श्रेय भोजन की बदलती आदतों और स्वास्थ्य जागरूकता में वृद्धि को देते हैं।

प्रद्युम्न कुमार, सेवानिवृत्त अर्थशास्त्र के प्रोफेसर, भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली ने अनाज की कमी और अनुपलब्धता को गंभीर कुपोषण से जोड़ा है। "तीन–चौथाई पोषण अनाज और दालों से आता है। अनाज की खपत में गिरावट ने बागवानी और पशुधन उत्पादों की खपत में वृद्धि की पर्याप्त भरपाई नहीं की, "वे कहते हैं, पोषण की कमी और भूख के सामने यह चिंताजनक है कि देश का ध्यान खेती से हटकर आयात की ओर हो गया है।''

हम जल्द ही एक शुद्ध निर्यातक देश बन सकते हैं

देश निश्चित रूप से खाद्यान्न उत्पादन में अधिशेष नहीं है। जब तक हम अपनी भूख की समस्या का समाधान नहीं कर लेते, तब तक हम खाद्यान्न में अधिशेष होने का दावा नहीं कर सकते। विदेश में प्रगतिशील देशों की नीति है कि वह पहले अपने लोगों और पशुओं को खिलाते है और फिर उसका निर्यात करें। हम शुद्ध निर्यातक देश होने का दावा करते हैं। यह सच नहीं है। यदि हम अधिशेष उत्पादन के वर्षों के दौरान लोगों के बीच समान रूप से खाद्यान्न वितरित करते हैं, तो हम घाटे में साबित होंगे। अधिशेष में उत्पादन करने के बजाय, हम वास्तव में आत्मनिर्भर होने के लिए संघर्ष कर रहे हैं। पंजाब, हरियाणा, महाराष्ट्र, कर्नाटक और उत्तर प्रदेश जैसे राज्यों में अधिशेष उत्पादन होता है, लेकिन खराब प्रबंधन कई लोगों को भूखा छोड़ देता है। हमारे पास अतिरिक्त उत्पादन के प्रबंधन के लिए आवश्यक भंडारण, कोल्ड स्टोरेज और परिवहन सुविधाओं जैसी बुनियादी ढांचा नहीं हैं। ये राज्य जितना अधिक उत्पादन करते हैं, उतना ही सड़ना होता है। अगर यह स्थिति को जल्द ही सुधारा जाये, तो हम एक जल्द ही शुद्ध निर्यातक देश बन जायेगें। भारत सरकार ने वर्ष 2021 में खाद्यान्न उत्पादन को शीध्र ही एक प्रदेश से दूसरे प्रदेश में भेजने के लिए रेलमार्ग द्वारा किसानों को 50 प्रतिशत छूट देकर एक अच्छी व्यवस्था की हैं ताकि हमारे किसान अपनी फसल का उचित दाम ले सकें।

हम खाद्य आत्मनिर्भर हैं और खाद्य अधिशेष देश बनने की ओर बढ़ रहे हैं। वितरण की समस्याओं के कारण भूख और कुपोषण विद्यमान है। साथ ही, कुछ क्षेत्रों में लोगों के पास पर्याप्त क्रय शक्ति नहीं है। इसलिए वे पौष्टिक भोजन नहीं खरीद सकते। भारत खाद्यान्न उत्पादन में अधिशेष है। हम आत्मनिर्भर होने के बावजूद दालों का आयात करते हैं क्योंकि हमने कुछ देशों के साथ अनुबंध पर हस्ताक्षर किए हैं। इसे तोड़ने से नकारात्मक प्रभाव पड़ सकता है। इसलिए, कृषि उत्पादों के आयात में वृद्धि के बावजूद, हम शुद्ध कृषि–निर्यातक देश हैं।

खाने की टोकरी में बदलाव से पोषण में कमी

हमारी खाद्यान्न टोकरी की उपलब्धता मिश्रित बैग है। हम गेहूँ और चावल जैसी वस्तुओं में अधिशेष हैं, लेकिन दालों और खाद्य तेलों का आयात करना पड़ता है। हमारे लिए यह देखना महत्वपूर्ण है कि हम क्या निर्यात कर रहे हैं। हम चावल का निर्यात करते हैं, एक ऐसी फसल जिसे सिंचाई के दौरान बहुत अधिक पानी की आवश्यकता होती है। हमें बाजरा जैसे जल–कुशल मोटे अनाज के निर्यात के बारे में सोचना चाहिए। क्या निर्यात करना है, यह तय करते हुए हम अपने पारिस्थितिक पदचिह्न बढ़ा सकते हैं। आज फसल का अधिशेष उत्पादन बाद के वर्षों में समान उत्पादन की गारंटी नहीं देता है।

खाद्यान्न की कई परिभाषाएँ हैं। कुछ के अनुसार इसमें केवल गेहूँ और चावल शामिल हैं। दूसरों का कहना है कि अनाज और दालें खाद्यान्न हैं। जब हम खाद्यान्न उपलब्धता पर चर्चा करते हैं, तो हम अन्य महत्वपूर्ण बागवानी उत्पादनों को छूट देते हैं। अगर हम समग्र भोजन को देखें, जिसमें अनाज, सब्जियां, फल, मोटे अनाज, दूध, मांस, अंडे और मछली शामिल हैं, तो प्रति व्यक्ति उपलब्धता बहुत अधिक है। वर्तमान में हम खाद्यान्न से अधिक फल और सब्जियों का उत्पादन करते हैं। हम भी अब अधिक उपभोग करते हैं। हम खाद्य तेलों और दालों के आयात पर अत्यधिक निर्भर हैं। हमारे खाद्य तेलों का अच्छा 60 प्रतिशत और हमारी एक तिहाई दालों का आयात किया जाता है। हमने हाल ही में दालों में आत्मनिर्भरता हासिल की है। लोगों की पहुंच और सामर्थ्य भी महत्वपूर्ण कारक हैं। सरकार की सार्वजनिक वितरण प्रणाली (पीडीएस) एक सार्वभौमिक कार्यक्रम था। इससे कैलोरी की मात्रा बढ़ाने में मदद मिली। लेकिन जब पीडीएस को लक्षित कार्यक्रम में बदल दिया गया तो भोजन पहुंच से बाहर हो गया।

पिछले कुछ वर्षों में, अनाज की खपत और व्यय में गिरावट आई है। यह दर्शाता है कि हमारी थाली या खाने की टोकरी में विविधता आ रही है। लोग अनाज से दूर जा रहे हैं। उच्च आय वर्ग कम खा रहा है, और पोषण खो रहा है। खाद्य पदार्थों से ऊर्जा को अवशोषित करने के लिए न्यूनतम ऊर्जा आवश्यकताओं और बढ़ी हुई शारीरिक गतिविधियों के महत्व के बारे में जागरूकता पैदा करना महत्वपूर्ण है।

आज हमें जीरो बजट और प्राकृतिक खेती की ओर अग्रसर हो रहे हैं जिससे न केवल भूमि की उपजाऊ शक्ति बनी रहेगी। खेती में रासायनिक खाद व कीटनाशक का उपयोग भी कम हो जायेगें ताकि हमारी थाली में पोषण की गुणवत्ता बढ़ सके।

कदन्न : पोषण से भरपूर स्वास्थ्यवर्धक अनाज

आलोक कुमार सिंह
आचार्य नरेन्द्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय कुमारगंज, अयोध्या

भारत में कदन्न फसलों में ज्वार (सोरघम), बाजरा (पर्ल मिलेट), रागी (फिंगर मिलेट), कंगनी (फॉक्सटेल मिलेट), कुटकी (लिटिल मिलेट), चीना (प्रोसो मिलेट), कोदो (कोडोमिलेट), सांवां (बार्नयार्ड मिलेट) तथा भूराशीर्ष कदन्न (ब्राउनटॉप मिलेट) आदि की खेती की जाती है। इसे मोटा अनाज भी कहा जाता है क्योंकि इनके उत्पादन में ज्यादा मशक्कत नहीं करनी पड़ती। यह अनाज कम पानी और कम उपजाऊ भूमि में भी उग जाते हैं। कदन्न प्रमुख खाद्य फसलों के अंतर्गत आते हैं तथा देश के विविध कृषि–पारिस्थितिक क्षेत्रों में इनकी खेती की जाती है। यह विशेषकर बारानी तथा पहाड़ी क्षेत्रों में वर्षा आधारित खेती के लिए उपयुक्त है। बहुत ही कम निवेश के साथ इनकी खेती की जा सकती है। ये फसलें जलवायु अनुकूल, कठोर परिस्थितियों में जीवनक्षम तथा बारानी फसलें हैं, जो कि खाद्य एवं पोषण सुरक्षा में अत्यधिक योगदान देती हैं। सामान्यतः कम वर्षा वाले क्षेत्रों में इनकी खेती किए जाने के कारण टिकाऊ कृषि एवं खाद्य सुरक्षा में इनका अत्यधिक महत्व है। ज्यादा नहीं, आज से सिर्फ तीन दशक पहले हमारे खाने की परंपरा बिल्कुल अलग थी। हम कदन्न/मोटा अनाज खाने वाले लोग थे। लेकिन, 1960 के दशक में आयी हरित क्रांति के दौरान हमने गेहूँ और चावल को अपनी थाली में सजा लिया और कदन्न अनाज को खुद से दूर कर दिया। जिस अनाज को हमारी कई पीढियां खाते आ रही थी, उससे हमने मुंह मोड़ लिया और आज अब इस पोषक आहार की पूरी दुनिया में मांग है। केंद्र सरकार भी मोटे अनाज की खेती के लिए किसानों को प्रोत्साहित करने पर बल देना शुरू कर दी है। भारत सरकार द्वारा इन्हें पौष्टिक अनाज/न्यूट्री सिरियल्स की संज्ञा दी गई है।

प्रमुख कदन्न फसलें/न्यूट्री सिरियल्स (सुपर फूड)

ज्वार

फाइबर से भरपूर ज्वार दुनिया भर में उगाया जानेवाला पांचवां सबसे महत्वपूर्ण अनाज है। वजन कम करने और कब्ज को दूर करके पाचन क्रिया को दुरुस्त रखने के लिए ज्वार बढ़िया विकल्प है। इसमें मौजूद कैल्शियम हड्डियों की मजबूती देने का काम करता है, जबकि कॉपर और आयरन शरीर में रेड ब्लड सेल्स की संख्या बढ़ाने और खून की कमी यानि अनीमिया को दूर करने में सहायक होते हैं। गर्भवती महिलाओं और डिलिवरी के बाद के दिनों के लिए इसका सेवन फायदेमंद है। इसके अलावा इसमें पोटैशियम और फॉस्फोरस की भी अच्छी मात्रा होती है। ज्वार का उपयोग बेबी फूड बनाने में भी होता है। ज्वार मुख्यतः बच्चों के भोजन में इस्तेमाल किया जाने वाला अनाज है। इसमें कार्बोहाइड्रेट, प्रोटीन, लौह तत्व मुख्य रूप से जाए जाते हैं। यह अनाज पाचन में हल्का होता है। पोषक तत्वों से भरपूर इस अनाज को देहाती भोजन में रोटी के रूप में इस्तेमाल किया जाता है।

बाजरा

बाजरा उत्तर भारत में, विशेषकर ठंड में इस्तेमाल किया जाता है। इसमें प्रोटीन, लौह तत्व, कैल्शियम, कार्बोहाइड्रेट आदि अच्छी मात्रा में पाए जाते हैं। इसमें कुछ मात्रा में कैरोटीन (विटामिन ए) भी पाया जाता है। प्रोटीन से भरपूर बाजरा हमारी हड्डियों को मजबूत बनाता है। फाइबर की अधिकता के कारण यह पाचन क्रिया में सहायक होता है और वजन कम करने में भी मदद मिलती है। इसमें मौजूद कैरोटीन हमारी आँखों के लिए फायदेमंद होता है। इसमें एंटी–ऑक्सिडेंट्स की भी अच्छी मात्रा होती है, जो नींद लाने और पीरियड्स के दर्द को कम करने में मदद करते हैं। यह कैंसररोधी भी है व कोलेस्टेरॉल के लेवल को रोकने में मदद करता है। अफ्रीका मूल के इस अनाज में अमीनो एसिड, कैल्शियम, जिंक, आयरन, मैग्नीशियम, फॉस्फोरस, पोटैशियम और विटामिन बी 6, सी, ई जैसे कई विटामिन और मिनरल्स की भरपूर मात्रा पाई जाती है। प्रति 100 ग्राम बाजरे में लगभग 11.6 ग्राम प्रोटीन, 67.5 ग्राम कार्बोहाइड्रेट, 132 मिलीग्राम कैरोटीन पाया जाता है। बाजरे की सबसे बड़ी खासियत यह है कि इसके सेवन से कैंसर वाले टॉक्सिन नहीं बनते हैं। बाजरे में कुछ अल्प मात्रा में फाइटिक एसिड, पोलीफिनोल, जैसे कुछ पोषण विरोधी तत्व भी होते हैं। बाजरे को पानी में भिगोकर, अंकुरित करके, माल्टिंग की विधि द्वारा इन पोषा विरोधी तत्वों को कम किया जा सकता है।

रागी

रागी (मडुआ) उच्च पोषण वाला मोटा अनाज है। रागी मुख्यतः भारतीय मूल का अनाज है। इसमें कैल्शियम की मात्रा अन्य अनाजों की अपेक्षा ज्यादा होती है। कैल्शियम हमारी हड्डियों को मजबूत रखने तथा मांसपेशियों को ताकतवर बनाने में मदद करता है। प्रति 100 ग्राम रागी में 344 मिलीग्राम कैल्शियम होता है यानी कि यह कैल्शियम से भरपूर है। रागी में लौह तत्व भी अच्छी मात्रा में पाया जाता है, जो रक्त का मुख्य घटक है। रागी के आटे से हम रोटी, चिल्ला, इडली बना सकते हैं। रागी की खीर भी बनती है। छोटे बच्चों को (विशेषकर दो वर्ष से छोटे) पारंपरिक तौर पर रागी की लप्सी बनाकर खिलाई जाती है। मधुमेह के रोगियों के लिए वह ज्यादा लाभदायक होता है। इसमें मौजूद एंटी–ऑक्सिडेंट्स नींद की परेशानी और डिप्रेशन से निकलने में भी मदद करते है।

कोदो

इसे प्राचीन अन्न भी कहा जाता है। कोदो में कुछ मात्रा में वसा तथा प्रोटीन भी होता है। इसका 'ग्लाइसेमिक इंडेक्स' कम होने के कारण मधुमेह के रोगियों को चावल के स्थान पर उपयोग करने के लिए कहा जाता है। इसकी फसल मुख्यतः छत्तीसगढ़ में होती है। वहां के वनवासियों का यह मुख्य भोजन है।

पोषण से भरपूर कदन्न

कदन्नों को पौष्टिक धान्य भी कहा जाता है, ये खाद्य तथा पोषण सुरक्षा में काफी योगदान करते हैं। कदन्न फसलें सीमांत (शुष्क) पर्यावरण में अच्छा प्रदर्शन करती हैं तथा ज्यादा सूक्ष्म पोषक तत्वों एवं कम रसाइसेमिक सूचकांक के साथ पौष्टिक गुणों में श्रेष्ठ होती हैं।

कदन्न जलवायु लचीली फसलें भी हैं। इनमें अद्वितीय पौष्टिक गुण विशेषकर जटिल कार्बोहाइड्रेट, पथ्य रेशे की प्रचुरता के साथ–साथ पौष्टिक–औषधीय गुणयुक्त विशिष्ट फिनॉलिक योगिक तथा फाइटो रसायन भी पाए जाते हैं। कदन्न भारत में कुपोषण की समस्या को दूर करने के लिए आवश्यक आयरन, जिंक, कैल्शियम तथा अन्य पोषक तत्वों के प्राकृतिक स्रोत भी हैं।

कदन्न के स्वास्थ्य लाभ

- ग्लूटेन संवेदी लोगों को गेहूँ के आटे का सेवन नहीं करने की सलाह दी जाती है और कदन्न, ग्लूटेनरहित होने के कारण ऐसे लोगों हेतु सुरक्षित अनाज है। सीलिएक रोगियों के लिए ग्लूटेन मुक्त आहार वैकल्पिक नहीं है, बल्कि इसे आवश्यक पोषण चिकित्सा माना गया है।
- गठिया के रोगी दवा के बिना शोथ (इनफ्लमेशन) का प्रबंधन कर सकते हैं। ऐसे लोगों के लिए शोथ को नियंत्रित करने व उसकी रोकथाम करने में कदन्न प्रकृति का दिया हुआ वरदान है। कदन्नों में इस रोग के निवारण हेतु सक्षम ग्लूटेनमुक्त प्रोटीन पाया जाता है।
- टाइप–2 मधुमेह रोगियों के लिए कदन्न, चावल का अच्छा विकल्प है। कदन्नों में मौजूद रेशे की उच्च मात्रा पाचन को धीमा करती है तथा रक्त प्रवाह में शर्करा को धीमी गति से छोड़ती है। ये मधुमेह रोगियों को रक्त शर्करा की खतरनाक स्थितियों–ग्लूकोसोरिया से बचाने में सहायता करते हैं। कदन्न विटामिन 'बी' का भी अच्छा स्रोत है, शरीर द्वारा कार्बोहाइड्रेट के पाचन के लिए इसका उपयोग किया जाता है।
- शारीरिक भार (मोटापा) कम करने तथा समग्र स्वास्थ्य हेतु गेहूँ के आटे, सफेद चावल या पैक किए हुए स्नैक्स के स्थान पर कंदन अथवा अन्य साबुत अनाज खाने की सलाह दी जाती है। कदन्नों में रेशे प्रचूर मात्रा में पाए जाते हैं तथा इनमें चिपचिपाहट, जल धारण, जल अवशोषण जैसी अनुपम भौतिक तथा रसायनिक विशेषताएं होती हैं, ये शारीरिक क्रिया व्यवहार को निर्धारित करती हैं।
- पशुओं के प्रोटीन में संतृप्त वसा अम्ल उच्च मात्रा में पाए जाते हैं, जबकि कदन्न वसा–मुक्त प्रोटीन प्रदान करते हैं। इनमें उपस्थित अमीनो अम्ल एवं ट्रिप्टोफेन भूख को नियमित करते हैं, जिससे मोटापे का नियंत्रण होता है।
- कदन्न, माइग्रेन व हृदयाघात के प्रभाव को कम करने में सक्षम मैग्नीशियम के बहुत अच्छे स्रोत हैं। कदन्नों में कोलेस्ट्रॉल कम करने में सहायक फाइटिक अम्लयुक्त फाइटो रसायन प्रचूर मात्रा में पाए जाते हैं। इनमें उपस्थित टैनिन भी कोलेस्ट्रॉल कम करने में लाभदायक है।
- कदन्न पथ्य रेशे का मुख्य स्रोत है तथा परिष्कृत अनाज में केवल भ्रूणपोष की अपेक्षा इनमें बीजाणु (जर्म), भ्रूणपोष इंडोस्पर्म तथा चोकर (ब्रॉन) में पाए जाते हैं। इसके अलावा साबुत अनाज या आंशिक रूप से डिहल कदन्न कई विटामिनों, खनिजों तथा फाइटो–रसायनों के मुख्य स्रोत होते हैं, जिनमें प्रति–कैंसर गुण पाए जाते हैं।

- कदन्न किण्वन योग्य कार्बोहाइड्रेट (प्रतिरोधी स्टार्च) के समृद्ध स्रोत हैं, जिनका आतों के जीवाणुओं द्वारा लघु–श्रृंखला वसीय अम्लों में परिवर्तन किया जाता है और ये पेट के कैंसर से रक्षा करने में सहायता करते हैं। ज्वार में उपस्थित 3–डिऑक्सी एथॉक्सिनिन (3–डीएक्सए) के संबंध में यह माना जाता है कि ये पेट की कैंसर कोशिकाओं के प्रसार की रोकथाम करते हैं। यह पाया गया कि कदन्न कैंसर की शुरुआत व प्रसार की रोकथाम में प्रभावी हो सकते हैं।
- कदन्नों में रेशे बहुतायत से पाए जाते हैं तथा इनका सेवन कब्ज को कम करता है। प्रतिदिन लगभग दो से तीन बार साबुत अनाज /कदन्न तथा करीब पांच बार फल व सब्जियों का सेवन करके पर्याप्त पथ्य रेशे प्राप्त किए जा सकते हैं।

कदन्न अनाजों की ऊपज को पुनर्जीवित करने की आवश्यकता

पोषण सुरक्षा हेतु

कदन्न अनाज गेहूँ और चावल की तुलना में सस्ते होने के साथ–साथ उच्च प्रोटीन, फाइबर, विटामिन तथा आयरन आदि की उपस्थिति के चलते पोषण हेतु बेहतर आहार होते हैं। मोटे अनाजों में कैल्शियम और मैग्नीशियम की प्रचुरता होती है। जैसे– रागी में सभी खाद्यान्नों की तुलना में कैल्शियम की मात्रा सबसे अधिक होती है। इसमें लोहे की उच्च मात्रा महिलाओं की प्रजनन आयु और शिशुओं में एनीमिया के उच्च प्रसार को रोकने में सक्षम है। एक अनुमान के अनुसार 40% छोटे बच्चों (स्कूल जाने के पूर्व) में आयरन की कमी के कारण रक्तहीनता (एनीमिक) से प्रभावित हैं। इसके अलावा विटामिन 'ए' की कमी के कारण प्रतिवर्ष 250 से 500 बच्चों के अंधे हो जाने का अनुमान है। बाजरा तथा अन्य कदन्न के उपभोग से विश्व से रक्तहीनता की समस्या को प्रभावी रूप से दूर किया जा सकता है। रागी, कैल्शियम (300–350 मि.ग्रा. 1100 ग्राम) का प्रमुख स्रोत है तथा अन्य लघु कदन्न फॉस्फोरस व आयरन के अच्छे स्रोत हैं। इनमें लेसीथिन की मात्रा ज्यादा पाई जाती है, जो तंत्रिका तंत्र को मजबूती प्रदान करने हेतु उत्तम होती है। इनमें नियासिन, बी तथा फॉलिक अम्ल एवं कैल्शियम, आयरन, पोटेशियम, मैग्नीशियम तथा जिंक की उच्च मात्रा पाई जाती है।

जलवायु अनुकूलन हेतु

ये कठोर एवं सूखा प्रतिरोधी फसलें हैं जिनका वृद्धि काल (70–100 दिन) गेहूँ या चावल (120–150 दिन) की फसल की तुलना में कम होता है, इसके अलावा मोटे अनाजों (350–500मिमी) को गेहूँ या चावल (600–1,200मिमी) की फसल की तुलना में कम जल की आवश्यकता होती है। ये गर्म तथा शुष्क जलवायु में जीवन निर्वाह करने में सक्षम हैं तथा जलवायु परिवर्तन का सामना करने में महत्वपूर्ण सिद्ध होंगे।

कृषक के लिए उत्तम

इनसे कृषकों की उपज में तीन गुना वृद्धि हो सकती है। इनके विविध उपयोग (खाद्य, चारा, ईंधन) हैं तथा सामान्यतः सूखे के समय जोखिम प्रबंधन नीति के अंतर्गत ये फसलें ही किसानों का साथ देंगी।

उद्यमिता के लिए उत्तम

भाकृअनुप–भारतीय कदन्न अनुसंधान के संस्थान ने कदन्नों पर कई खाद्य हे प्रौद्योगिकियां विकसित की हैं तथा कई स्टार्टअप एवं उद्यमी इन प्रौद्योगिकियों के माध्यम से कदन्नों के प्रचार–प्रसार एवं अपने व्यवसाय को आगे बढ़ाने में संलग्न हैं।

उपभोक्ता के लिए उत्तम

कदन्न हमारी पोषण तथा स्वास्थ्य संबंधी समस्याओं (आयरन, जिंक, फॉलिक अम्ल, कैल्शियम तथा अन्य की कमी) को दूर करने में सहायता कर सकते हैं।

जीवन शैली संबंधी विकारों के प्रबंधन हेतु

कदन्नों के अनेक स्वास्थ्य लाभ हैं। अध्ययनों से यह सिद्ध होता है कि कदन्नों के सेवन से हृदय रोगों का खतरा कम होता है, मधुमेह की रोकथाम होती है, पाचन तंत्र अच्छा होता है, कैंसर का खतरा कम होता है, शरीर विषैले पदार्थों से मुक्त होता है, ऊर्जा का स्तर बढ़ता है तथा मांसपेशियां व तंत्रिका तंत्र मजबूत होता है। इसके अलावा मेटाबॉलिक सिंड्रोम, पार्किंसन्स रोग जैसे कई अपक्षयी रोगों की रोकथाम होती है।

वर्तमान समय में खाद्य एवं पोषण सुरक्षा तथा जीवन शैली संबंधी रोगों का सामना करने हेतु कदन्न अत्यधिक महत्वपूर्ण हैं। आज विविध प्रकार के प्रसंस्करण हेतु उपयुक्त कदन्नों की कई किस्में उपलब्ध हैं। इसके अलावा कदन्नों के स्वास्थ्य लाभ संबंधी वैज्ञानिक आंकड़े भी मौजूद हैं। हम दैनिक आहार में पौष्टिकता से भरपूर कदन्नों को शामिल करके जीवन शैली संबंधी रोगों/विकारों का सामना करने के लिए अपनी प्रतिरक्षा शक्ति

बढ़ा सकते हैं। अतः आज कदन्नों का उपयोग वैकल्पिक नहीं, बल्कि आवश्यक खाद्य के रूप में करने की आवश्यकता है।

कदन्न / मोटे अनाज की खेती की मांग

मोटे अनाज कभी गरीबी के प्रतीक माने जाते थे। लेकिन, सेहत को लेकर बढ़ती चिंता ने लोगों का ध्यान इस ओर खींचा है। अब यह अमीरों की पसंद बन गया है। स्वास्थ्य के लिहाज से अच्छा होने की वजह से ही मोटे अनाजों ने गेहूँ की हैसियत कम कर दी है। प्रधानमंत्री तक को इसके बारे में बात करनी पड़ रही है। पीएम नरेंद्र मोदी ने कहा, 'मोटे अनाज की डिमांड पहले ही दुनिया में बहुत अधिक थी, अब कोरोना के बाद ये इम्यूनिटी बूस्टर के रूप में बहुत प्रसिद्ध हो चुका है।

केंद्र सरकार मोटे अनाज की खेती पर जोर दे रही है क्योंकि बढ़ती आबादी के लिए पोषणयुक्त भोजन उपलब्ध कराने में यही अनाज सक्षम हो सकते हैं। कदन्न अनाज पोषण का सबसे बेहतरीन जरिया हैं। सरकार इसके पोषक गुणों को देखते हुए इसे मिड डे मील स्कीम और सार्वजनिक वितरण प्रणाली में भी शामिल कर रही है। अप्रैल 2018 में केंद्रीय कृषि मंत्रालय द्वारा मोटे अनाजों को उनके "उच्च पोषक मूल्य" और "मधुमेह विरोधी गुणों" के कारण "पोषक तत्त्वों" के रूप में घोषित किया गया था। वर्ष 2018 को **नेशनल ईयर ऑफ मिलेट्स** के रूप में मनाया गया। खाद्य और कृषि संगठन ने 2023 को अंतरराष्ट्रीय मोटा अनाज वर्ष घोषित करने को मंजूरी दी है। ताकि दुनिया भर में इन पोषक अनाजों को थाली में वापसी के लिए जागरूकता बढ़ाई जा सके।

वैसे तो मोटे आनाज की आवश्यकता प्रत्येक व्यक्ति को है परंतु गर्भवती महिलाओं व उनके शिशुओं के लिए बेहद जरूरी बताया जाता है। आहार विशेषज्ञों की माने तो गर्भावस्था और स्तनपान के दौरान महिलाओं में कैल्शियम की कमी होने से बच्चों की हड्डियाँ कमजोर हो जाती हैं। इसके अलावा गर्भावस्था के दौरान अपर्याप्त कैल्शियम लेने से मां का स्वास्थ्य कमजोर हो जाता है। इस दौरान माँ की हड्डियों के कैल्शियम का इस्तेमाल भ्रूण के विकास और दुग्ध के निर्माण में होने लगता है। कैल्शियम की कमी के कारण माँ की संचरण प्रणाली पर बुरा असर पड़ता है और उच्च रक्तचाप की समस्या पैदा होती है। मोटे अनाज के सेवन से माँ व शिशुओं की सेहत बेहतर बनी रहती है। आहार में कदन्नों को शामिल करके बच्चों में रक्ताल्पता की रोकथाम की जा सकती है।

तालिका 1: गेहूँ ,चावल की तुलना में कदन्न अनाजों का पोषक मान (प्रति 100 ग्राम)

कदन्न अनाज	प्रोटीन (ग्राम)	कार्बो हाइड्रेट (ग्राम)	वसा (ग्राम)	ऊर्जा (किलो कैलारी)	रेशा (ग्राम)	कैल्शियम (मि.ग्रा.)	फास्फोरस (मि.ग्रा.)	मैग्नीशियम (मि.ग्रा.)	जिंक (मि. ग्रा.)	आयरन (मि. ग्रा.)	थायमिन (मि.ग्रा.)	राइबो फ्लेविन (मि.ग्रा.)	नियासिन (मि.ग्रा.)	फोलिक अम्ल (मि.ग्रा.)
ज्वार	09.97	67.68	1.73	334	10.2	27.6	274	133	1.9	3.9	0.35	0.14	2.1	39.4
रागी	07.16	66.82	1.92	320	11.2	364.0	210	146	2.5	4.6	0.37	0.17	1.3	34.7
कोदो	08.92	66.19	2.55	331	06.4	15.3	101	122	1.6	2.3	0.29	0.20	1.5	39.5
चीना	12.50	70.40	1.10	341	–	14.0	206	153	1.4	0.8	0.41	0.28	4.5	–
कगंनी	12.30	60.10	4.30	331	–	31.0	188	81	2.4	2.8	0.59	0.11	3.2	15.0
कुटकी	8.92	65.55	3.89	346	7.7	16.1	130	91	1.8	1.2	0.26	0.05	1.3	36.2
सांवां	06.20	65.55	2.20	307	–	20.0	280	82	3.0	5.0	0.33	0.10	4.2	–
गेहूँ	10.59	64.72	1.47	321	11.2	39.4	315	125	2.8	3.9	0.46	0.15	2.7	30.1
चावल	07.94	78.24	0.52	356	02.8	07.5	96	19	1.2	0.6	0.05	0.05	1.7	9.32

स्रोत –न्यूट्रीटिव वैलयू ऑफ इंडियन फूड्स– डा. सी. गोपालन, राष्ट्रीय पोषण संस्थान, हैदराबाद (2018)

पशुपालन और वीगेनिज्म

शालिनी शुक्ला
रानी लक्ष्मीबाई केंद्रीय कृषि विश्वविद्यालय, झाँसी

आजकल जिस जोर शोर से वीगेनिज्म को बढ़ावा दिया जा रहा है क्या कभी किसी ने किसानों की अवस्था के बारे में सोचा है।, जिनकी आजीविका कहीं तो अधिकाशंतः तो कहीं पूर्णतः पशुपालन पर ही निर्भर है। विशेषकर सूखे इलाकों जैसे बुंदेलखंड क्षेत्र जहां पानी की कमी को देखते हुए बकरी व भेड़ पालने पर ध्यान दिया जाता है।

एक तरफ जहां हम किसानों की आय दुगनी करने की बात कर रहे हैं और इसी सम्बंध में विविध खेती के सन्दर्भ में पशुपालन के लिए उन्हें प्रेरित करते हैं। वहीं दूसरी ओर वीगेजिज्म का बढ़ता बोलबाला। जी, मैं शाकाहार के विरुद्ध नहीं हूँ। अपितु मैं स्वयं शाकाहारी हूँ पर इसके साथ ही एक कृषि स्नातक भी हूँ और हमारा मुद्दा यह नहीं है कि शाकाहार अपनाएं या मांसाहार परन्तु यह है कि इन नवीन प्रयोगों से एक कृषक के जीवन व जीविका पर क्या प्रभाव पड़ेगा। हमारे देश भारत की अर्थव्यवस्था की रीढ़ आज भी कृषि ही है और यह निश्चय ही गर्व की बात है क्योंकि कोरोना आपदा के समय जब सभी चीजें ठप्प हो गई थी और जीडीपी धरातल को छूने मजबूर हो रही थी। तब कृषि ही एक मात्र ऐसा क्षेत्र था। जिसमे 3.4 की वृद्धि देखने को मिली। आज के महाविनाशकारी समय में भी कृषि ही है जो निरंतर चल रही है। जिस देश में शुद्ध दूध की चाय से दिन शुरू होता है और घी/छाछ/मक्खन भोजन का एक अभिन्न अंग है वहां वीगेनिज्म कहां तक सही है? क्या इससे हमारा डेयरी सेक्टर प्रभावित नहीं होगा?

मैं मानती हूँ कि अधिकाशं तौर पर पशुओं को दुःख सहना पड़ता है, मैं स्वयं भी पशु प्रेमी हूँ। और सड़क किनारे पॉलीथीन निगलते गाय–बैलों को दिखते मेरा हृदय द्रवित हो उठता है, किन्तु फिर भी मैं यह प्रश्न पूछती हूँ क्योंकि हम दुनिया में सबसे बड़े दुग्ध उत्पादक हैं अर्थात् यह फसलों के बाद सबसे ज्यादा प्रचलित खेती है। पंजाब की साहीवाल, राजस्थान की थारपारकर, बनारस की गंगातीरी, मध्य प्रदेश का कड़कनाथ, भदावर क्षेत्र की भदावरी, बंगाल की हिलसा, असम का घुँघरू (स्वाइन) इत्यादि ऐसे अनेकों दृष्टान्त हैं जो पशुपालन उद्योग और कृषक की आजीविका का पुरजोर समर्थन करते हैं।

- **पशुपालन में कमी:** पशुओं के रख–रखाव में बहुत खर्च आता है ऐसे में यदि निस्वार्थ भाव से भी रखना चाहें तो आर्थिक रूप से असम्भव होगा।
- **सड़कों पर आवारा पशुओं में वृद्धि:** अभी जब हमारे यहाँ लोग जानवरों को विशेषकर गायों को दूध न देने पर सड़क पर मरने के लिए छोड़ देते हैं तो सोचिये क्या जब दूध/मुनाफे का भी स्वार्थ रहेगा। तब सड़कों पर आये दिन पशु पॉलीथीन खाते, भूखे और आक्रामक नहीं होगे ?
- **हिडन हंगर:** हालाँकि ये अभी भी प्रचलन में है परन्तु जब पूर्ण रूप से पशु उत्पादों का त्याग कर दिया जायेगा तो यह और भी अधिक विकराल साबित हो सकता है। फिर कहाँ से पूरा होगा हमारा पोषण सुरक्षा का मिशन।
- **अन्य क्षेत्र पर प्रभाव:** गेहूँ/धान आदि के स्ट्रॉ का भूसा बनाया जाता है, कुछ फसलों से 'साइलेज' व कुछ से 'हे' बनाते हैं। अब विचार कीजिये कि जिस देश में पशुओं की सबसे अधिक जसंख्या है वहाँ उनके भोजन में भी कितने उद्योगों का योगदान होगा, फिर जब पशु ही नहीं तो उन उद्योगों का क्या होगा? एक तो ऐसे ही जब से मशीनों से फसलों की कटाई होने लगी है तब से फसल अवशेष जलाने की तादाद भी बढ़ी है, कुछ हद तक यह भूसे आदि के कारण कम है वरना यह सिर्फ दिल्ली की नहीं बल्कि पूरे देश की समस्या होगी और तब हर दिन आक्सीजन सिलिंडर चाहिए होगा।
- गौरतलब है कि भारत का भविष्य 'प्रसंस्करण क्षेत्र' (प्रोसेसिंग सेक्टर) है, जो की मूलतः जानवरों पर ही निर्भर है। जिसको बहुत अर्थिक क्षति पहुंचेगी और उद्यमियों को निराश होना पड़ेगा दरअसल यह बहुत ही भयावह होगा क्योंकि हमारी अर्थव्यवस्था अपनी पटरी से उतर चुकी होगी और हमारे देश की पहचान जो कृषि व कृषि उत्पादों से है वह समाप्त हो जाएगी। इससे सिर्फ न भोजन शैली प्रभावित बल्कि इसके साथ ही साथ अन्य उत्पाद व उनका व्यापार भी प्रभावित होगा, फिर चाहे वो चोंगतांगी की पश्मीना शाल हो या भेड़ों के बाल की खूबसूरत दरी/धुरियां, सब पर वीगेनिज्म की मार का असर देखने को मिलेगा।

अब सवाल यह है कि अगर इन सब को स्वीकार कर भी लिया जाए तो क्या हमारे पशु जिनकी रक्षा हमारा मुख्य उद्देश्य था, जिनके लिए हमने सारी व्यवस्था बदल दी क्या वे सुरक्षित व खुशहाल रह पाएगें? क्या आपको नही लगता कि हमारी कला और संस्कृति के साथ वे भी लुप्त हो जायेंगे? अन्तः बात यहीं खत्म करना चाहूंगी कि पशु–पक्षी मात्र हमारे जीवन और जीविका का अंग ही नही अपितु प्रकृति की देन भी हैं, हमारे जीवन का अभिप्राय तभी संभव है जब सामंजस्य बना रहे जिसके लिए हमें प्रयास करने की आवश्यकता है न कि किसी पर वीगेनिज्म थोपने की।

बचेगी तभी कला और संस्कृति।

जब बनेगा सामंजस्य और होगी उन्नति।।

पशुपालन से प्राप्त पंचगव्य एवं अन्य उत्पाद

खुशबु राज एवं नेहा सिंह
भाकृअनुप–राष्ट्रीय डेरी अनुसंधान संस्थान, करनाल

पंचगव्य/पंचकाव्या देशी गाय द्वारा उत्पादित उत्पादों एवं कुछ अन्य सामग्री को निश्चित अनुपात में मिश्रित कर बनाया जाता है। जिसमें तीन प्रत्यक्ष घटक दुध, मुत्र, गोबर एवं दो व्युत्पन्न उत्पाद दही एवं घी को निर्धारित अनुपात में मिलाया जाता है। गाय से प्राप्त पांच उत्पादों को मिलाने पर ही इसे पंचगव्य नाम दिया गया है, इन पांच उत्पादों में यीस्ट, केला, मुंगफली का केक, नारियल पानी मिलाकर किण्वन की क्रिया द्वारा औषधी का रुप दिया जाता है। पंचगव्य का संस्कृत में शाब्दिक अर्थ होता है, "पांच उत्पादों का मिश्रण'। पुराने लेखन से भी यह जानकारी प्राप्त हुई है कि भारतीय ग्रामीण समुदाय द्वारा इसका उपयोग सदियों से प्राकृतिक औषधि के रुप में मनुष्यों एवं पशुओं में किया जा रहा है। इसको उपैथी भी कहा जाता है इसके अलावा इसका उपयोग कृषि कार्यो में उर्वरकों और कीटनाशकों के रुप में भी किया जाता है।

तालिका 1 : पंचगव्य के भौतिक रासायनिक एवं जैविक गुण

रासायनिक गुण	मात्रा	जैविक गुण	मात्रा
नाइट्रोजन	229 पीपीएम	फंगस	38800/मिली.
फॉस्फोरस	232 पीपीएम	जीवाणु	1880000/मिली.
सोडियम	90	लेक्टोबैसीलस	2260000/मिली.
कैल्शियम	25	एनारोब्स	10000/मिली.
वृद्धिकारक		एसीड फोरमर	360/मिली.
हार्मोन	8.5/3.5	मिथिनोजन	250/मिली.

इस प्रकार तालिका से पता चलता है कि पंचगव्य में औसतन सभी प्रमुख एवं सूक्ष्म पोषक तत्व, वृद्धिकारक हार्मोन होते है जो कि फसलों की वृद्धि में सहायक होते है, इसके अलावा किण्वन करने वाले सूक्ष्मजीव यीस्ट, *लेक्टोबेसील्स* इत्यादि भी फसलों की वृद्धि में सहायक होते है।इसके अलावा *लेक्टोबैसीलस* कार्बनिक अम्ल, हाइड्रोजन एवं एंटीबायोटिक भी उत्पन्न करता है जो रोगजनक सूक्ष्मजीवों को नष्ट करता है।

तालिका 2 : पंचगव्य बनाने में उपयोग होने वाले गाय से उत्पाद एवं अन्य समाग्री

देशी गाय का गोबर	0.5
देशी गाय का मूत्र	1.0
देशी गाय का घी	1.0
देशी गाय का दुध	3.0
देशी गाय का दही	2.0
पानी, यीस्ट, गुड़	2.5
नारियल, पानी, केला	2.5

पंचगव्य के उत्पादों की उपयोगिता

दुग्ध– देशी गाय के दूध में विशेष एवं अद्वितीय पोषण गुण होते है जो किसी भी अन्य प्रकार के खाद्य पदार्थो से इसे अलग पदार्थों से इसे अलग करता है। काली गाय का दूध सांस की बीमारियों और फेफड़ों के रोगों के इलाज के लिए इस्तेमाल किया जाता है। जबकि सफेद गाय का दूध यकृत रोगों में फायदेमंद होता है। माना जाता है कि काली गाय के दूध में अनंत औषधीय गुण होते है, जो विभिन्न शारीरिक एवं मानसिक रोगों के लिए कारगर होते है। गाय का दूध सम्पूर्ण तरीके से सरलता से पच जाता है इसलिए सभी शारीरिक कोशिकाओं, अंगो को संतुलित पोषण देता है एवं यह हड्डियों की उम्र बढ़ाने के लिए सबसे महत्वपूर्ण खाद्य पदार्थ है। यह कैल्शियम, फास्फोरस प्रदान करता है जो मिलकर हाइड्रोक्सीएफटाइट बनाता है जो कि हड्डियों का एक एकीकृत तत्व है जिससे हड्डियों को अच्छी संरचना एवं शक्ति मिलती है। इसके अलावा दूध में उपस्थित कैल्शियम वृहदान्त कोशिकाओं की रक्षा में मदद करता है एवं माइग्रेन/सिरदर्द के लिए भी असरदायक होता है। दूध में उपस्थित राइवोक्लेविन एवं विटामिन बी–12 लाल रक्त कोशिकाओं के निर्माण में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाते है।

दही– दूध से व्युत्पन्न एक उत्पाद है जो विश्व के सबसे अधिक उपयोग होने वाला पौष्टिक खाद्य पदार्थ है यह बुढापे के लक्षणों में कमी लाता है, इसके अलावा यह दस्त, पेचिस

कोलाइटिस इत्यादि में भी मरीजों को राहत पहुँचाता है एवं प्रतिरक्षा तंत्र भी मजबूत बनता है, दही का उपभोग योनि संक्रमण एवं उच्च रक्त चाप जैसी बीमारियों में भी लाभकारी होता है। सीमन की गुणवत्ता एवं मात्रा भी दही के सेवन से बढ़ती है।

घी– घी एक पीले रंग का उत्पाद है जो कि गाय को प्रदान किए गए खाद्य पदार्थ एंव उसके उम्र पर निर्भर करता है। यह शारीरिक एवं मानसिक रुप से शरीर को मजबूती प्रदान करता है। शारीरिक अशुद्धियां भी घी की सहायता से दूर होती हैं। इसके अलावा सजगता, प्रतिरक्षात्मकता, आयु, आंखों की रोशनी, माँसपेशियां एवं टेन्डन के स्वास्थ्य को भी बनाएं रखने में घी सहायक होता है।

गोबर– यह एण्टीसेप्टिक, ऐन्टीबैक्टीरियल एवं कवकनाशी जैसे कार्य करता है, गाय के गोबर एवं पानी को मिलाकर बने हुए विलयन को कपड़े या छन्नी की सहायता से धनकर जो सत्व प्राप्त होता है उसका उपयोग गंभीर त्वचीय रोगों (एक्जिमा, गैंग्रीन, सेरासिस) में ओइन्टमेंट के रुप में किया जाता है। गाय के गोबर से बने हुए कण्डों को जलाकर उत्पन्न धुआँ भी मच्छरों को दूर करने में सहायक होता है।

गाय का मूत्र– गौमूत्र में 95 प्रतिशत पानी, 2.5 यूरिया, 2.5 प्रतिशत खनिज तत्व, लवण हार्मोन एवं एन्जाइम होते है। यह एक क्षारीय प्रकृति का कड़वा तरल हैं। कार्बोलिक एसिड की उपस्थिति की वजह से गौमूत्र साफ एवं शुद्ध माना जाता है गौमूत्र में फास्फेट, पोटाश, नाइट्रोजन, यूरिक एसिड, सोडियम क्लोराइड, कैल्शियम, लेक्टोज विटामिन, ए,बी,सी,डी,ई, एन्जाइम हिपयूरिक एसीड, क्रिएटिनन इत्यादि पाए जाते है। जो इसे औषधीय गुण प्रदान करते है। गाभिन गाय के मूत्र में अधिक मात्रा में पाचक रस होते है। अपाचन, कोन्सटिपेशन, घाव इत्यादि में भी गौमूत्र लाभकारी होता है। मेडोहर अर्क गौमूत्र से बनाया जाता है, जो कि मोटापे के इलाज में उपयोगी है। यह टीकाकरण के प्रभाव को भी बढ़ावा है, इसके द्वारा इन्टरल्यूकिन 1 एवं 2, मेक्रोफेज की सक्रियता भी बढ़ती है जिससे संक्रमण कम होता है।

पंचगव्य बनाने की विधि– लगभग 5 किलो ग्राम ताजा देशी गाय के गोबर में 500 ग्राम गाय का घी अच्छी तरह मिलाकर प्लास्टिक या मिट्टी के बने बर्तन में चार से पांच दिनों तक रखा जाता है। इस मिश्रण को प्रतिदिन दिन में दो बार हिलाया जाना चाहिए (लोहे के बर्तन उपयोग में न लाएं) पांचवे दिन इस मिश्रण में गौमूत्र, दूध, एवं गुड़ को पानी या गन्ने के रस के साथ केला मिलाकर अंत में नारियल पानी मिलाना चाहिए। तत्पश्चात् 15 दिनों तक इस मिश्रण को रख देना चाहिए इस मिश्रण को भी प्रतिदिन दिन में दो बार अवश्य हिलाएं इससे मिश्रण में आक्सीजन का संचार अच्छी तरह होता है। इस प्रकार 19–20 दिनों में पंचगव्य मिश्रण तैयार हो जाता है। इस मिश्रण को मसलीन कपडे से ढक देना चाहिए। उपयोग में करने से पहले प्रत्येक बार इस मिश्रण को अच्छी तरह मिलाना चाहिए।

पंचगव्य का भण्डारण/संग्रह– सामान्यतः इसे चौड़े मुँह के मिट्टी के बर्तन में या क्रांक्रीट टैंक में खुली जगह पर ढककर रखा जाता है, प्रतिदिन में दो बार अवश्य हिलाएं एवं उपयोग में लाने से पहले इसे आवश्यकतानुसार पतला करें।

उपयोग की अवधि– सामान्यतः 15 दिन में एक बार इसका उपयोग लाभकारी होता है।

पशुओं में पंचगव्य का उपयोग

- शुकरों की आयु एंव वजन के आधार पर पंचगण्य को 10–15 मि.ली. प्रति शुकरए पीने के पानी में मिलाया जाता है इस प्रकार पंचगण्य का नियमित सेवन शुकरों को स्वास्थ्य एवं रोगों से मुक्त रखता है इनकी खाद्य कनवरसन क्षमता भी बढ़ जाती है, जिससे खाद्य पदार्थों पर खर्चा कम होता है।
- बकरी एवं भेड़ों में 10–20 मि.ली. प्रति पशु देने से इनकी विकास दर बढ़ती है।

- गाय में पंचगव्य को खाद्य पदार्थ एवं पीने के पानी में 100 प्रति गाय प्रतिदिन के हिसाब से मिलाया जाए तब गाय के स्वास्थ्य में बढ़ोत्तरी के साथ–साथ दूध उत्पादन में बढ़ोत्तरी एवं दूध में वसा व सौलिड नोटफैट की मात्रा भी बढ़ती है। साथ ही साथ गायों की गर्भधारण क्षमता भी बढ़ जाती है, एवं पशुओं की त्वचा चमकदार दिखाई देती है।
- यदि पंचगव्य को ताजा देशी गाय के गोबर के साथ मत्सय पालने वाले तालाबों व जलाशय में डाला जाए तो तालाबों में शैवाल, प्लेन्टोंन, खरपतवार इत्यादि की संख्या में वृद्धि होती है जिससे मछलियों को भोजन आसानी से एवं पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध हो जाता है।
- एंटीबायोटिक एंव ग्रोथप्रमोटर के रुप में चूजों के दानों में भी पंचगव्य का उपयोग कर सकते है।
- पंचगव्य का नियमित उपयोग पशुओं के प्रतिरक्षा तंत्र को भी मजबूत बनाता है।
- इन उत्पादों के अलावा देशी गाय के गोबर में पीली मिट्टी मिलाकर गमले, हवन टिकिया, मच्छर नाशक कुण्डली, इत्यादि भी बनाये जा रहे हैं यह गमले नर्सरी में पॉलीथिन के बहुत अच्छे पर्याय है जिनका उपयोग कर हम पॉलीथिन का उपयोग कम कर सकते हैं इसी प्रकार गाय के गोबर से बनी उपलों का उपयोग दाह संस्कार के समय उपयोग होने वाली पेड़ की लकड़ियों के स्थान पर कर सकते हैं इस प्रकार यह सब आय के साधन उपलब्ध कराने के साथ साथ पर्यावरण संरक्षण में भी सहायक है।

कृषि कार्यों में पंचगव्य का उपयोग

- खेती में मुख्यतः 3 प्रतिशत की सान्द्रता वाला पंचगव्य विलयन तैयार कर फसलों पर छिड़काव किया जाता है (3 लीटर पंचगव्य को 100 लीटर पानी में मिलाइए)।
- इसके अलावा सिंचाई में उपयुक्त होने वाले पानी में लगभग 50 लीटर पंचगव्य को मिलाकर लगभग एक हेक्टर की भूमि की सिंचाई में इसका उपयोग होता है।
- फसलों के बीजों को लगाने से पहले यदि उन्हें 3 प्रतिशत पंचगव्य विलयन से उपचारित कर बोया जाए तो पैदावार में बढ़ोत्तरी होती है। बीजों को लगभग 20 मिनट का समय पर्याप्त होता है। हल्दी, अदरक, के राइजोम, गन्ने का प्रकंद इत्यादि को 30 मिनट तक पंचगव्य विलयन में भिगोया जाता है।
- सामान्यतः 200 मि.ली. पंचगव्य विलयन को 10 लीटर पानी में अच्छी तरह मिलाकर फसलों, पेड़ों पर छिड़काव किया जाना चाहिए जबकि मृदा में उपयोग के लिए 1000 मि.ली. पंचगण्य को 10 लीटर पानी में अच्छी तरह मिलाकर उपयोग किया जाता है।
- इस प्रकार पंचगव्य को उर्वरक एवं कीटनाशी के रुप में उपयोग होता है।
- पंचगव्य से छिड़काव की गई पत्तियां बड़ी एवं चमकदार होती है एवं प्रकाश संश्लेषण की क्रिया अधिक सक्रिय होती है।
- तनों में इसका उपयोग करने से अधिक शाखाओं का विकास होता है एवं वृक्षों से अधिक फल प्राप्त होते है।
- जबकि जड़ों की विकास दर बढ़ जाती है एवं वह भूमि के अधिक गहराई में जाती है जिससे वह अधिक पोषक तत्व व पानी अवशोषित कर पाती है।

किसानों का सम्मानः पीएम किसान

आनन्द कुमार ठाकुर
गाँवः पटसारा, जिला : मुजफ्फरपुर (बिहार)

छोटे, मझोले तथा सीमांत किसान भारतीय कृषि की धूरी हैं। देश में ऐसे किसानो की आबादी लगभग 12 करोड़ है जिनके पास जमीन बहुत थोड़ी है तथा उनकी क्रय क्षमता भी बहुत कम है। हमारे देश में इन किसानों के लिए समय–समय पर अनेक योजनाओं का सूत्रपात किया गया ताकि इनको लाभ पहुंचाया जा सके और इनकी आर्थिक और सामाजिक बेहतरी हो सके। बढ़ती जनसंख्या तथा लगातार परिवारों में विभाजन होने की वजह से बड़े किसान छोटे होते चले गए और उनके जोत का आकार भी धीरे धीरे छोटा होता चला गया और वह आर्थिक दृष्टिकोण से बहुत लाभदायक नहीं रहा। पूरे देश के परिपेक्ष्य में अगर देखें तो जो बड़े किसान थे वे छोटे हो गए और जो छोटे थे वे और छोटे या यूँ कहें तो सीमांत किसान हो गए। जो सीमांत किसान थे वे भूमिहीन हो गए और आज जीविकोपार्जन के लिए मजदूरी करने पर विवश हैं। आज ग्रामीण इलाकों से इन मजदूरों का शहरों की ओर निरंतर पलायन हो रहा है। जो किसान गांवों में रह रहे है और जिनकी जोत बहुत छोटी है उनके खेती आर्थिक रूप से व्यवहार्य नहीं रह गयी है। गांव में रहने वाले ये सभी किसान अपनी जोत को आर्थिक रूप से लाभदायक बनाने के लिए लगातार प्रयास कर रहे हैं ताकि उनकी दशा सुधर सके और वे भी एक अच्छा जीवन व्यतीत कर सकें।

पीएम किसान सम्मान निधि योजना पूरी तरह से केंद्र सरकार की योजना है। इस योजना का शत–प्रतिशत अनुदान केंद्र सरकार द्वारा दिया जाता है। यह योजना पूरे देश में दिसंबर 2018 से प्रभावी है। किसानों को खेती के लिए वित्तीय सहायता प्रदान करने के लिए प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी द्वारा प्रधानमंत्री किसान सम्मान निधि योजना की शुरुआत की गयी है। इस योजना के अंतर्गत किसानों को हर साल 6000 रूपये तक दिए जाते है। ये 6000 रूपये रूपये किसानों की 3 किस्तों में 4 महीने बाद दी जाती है। प्रत्येक किस्त 2000 रूपये की होती है। जो सीधे लाभार्थी के बैंक खाते में ट्रांसफर कर दी जाती है। पीएम किसान योजना की क़िस्त का पैसा लाभार्थी के बैंक खाते के अलावा किसी अन्य व्यक्ति के खाते में या किसी अन्य तरिके से नहीं दिया जाएगा। हाल ही में पीएम किसान कि यह 10 वीं किस्त जारी की गई। इस योजना की पहली किस्त 1 अप्रैल से 31 जुलाई, 1 अगस्त से 30 नवंबर की दूसरी किस्त तथा तीसरी किस्त 1 दिसंबर से 31 मार्च के बीच आती है। भारत सरकार ने 24 फरवरी 2019 को इस योजना की पहली किस्त जारी की थी। तब से लेकर अब तक 10 किस्तें जारी की जा चुकी है। 1 जनवरी 2022 को माननीय प्रधान मंत्री श्री नरेन्द्र मोदी जी ने इस योजना की 10 वीं क़िस्त 10 करोड़ किसानों के लिए 20000 करोड़ की राशि जारी की।

इस योजना से किसान के परिवार में पति, पत्नी तथा उनके नाबालिक बच्चे सभी लाभान्वित हो सकते हैं। इस तरह के परिवारों के पहचान की जिम्मेवारी केंद्र सरकार की है। इस योजना का लाभ लेने के लिए किसान के नाम खेती की जमीन होनी चाहिए। यह योजना पूरे परिवार के लिए है ना कि व्यक्तिगत है । यदि किसी परिवार में 2 सदस्य पति पत्नी इसका लाभ ले रहे हैं भले ही दोनों के नाम पर अलग–अलग जमीन हो तो भी यह गलत है। अर्थात पूरे परिवार से परिवार के मुखिया को ही इस योजना का लाभ मिल सकता है। यहां पर यह भी बताना उचित होगा कि यदि कोई किसान खेती कर रहा है परंतु उसके नाम पर जमीन नहीं है अर्थात वह बटाई या अनुबंध आधारित खेती करता है तो उसको इस योजना का लाभ नहीं मिलेगा। यदि किसी किसान की जमीन पुश्तैनी है और अब भी यह उसके बाप या दादा के नाम पर है तो भी इस योजना का लाभ उस किसान को नहीं मिलेगा अर्थात इस योजना का लाभ लेने के लिए किसान के नाम पर जमीन होना आवश्यक है। इस योजना का लाभ किसी भी सरकारी कर्मचारी चाहे वह कार्यरत हो या सेवानिवृत्त हो उसको नहीं मिल सकता है। योजना का लाभ लेने के लिए स्थानों को स्थानीय स्तर पर पटवारी अथवा राजस्व अधिकारी या इस योजना से संबंधित नोडल अधिकारी से संपर्क करना होगा। इस योजना का फायदा उठाने के लिए संबंधित किसान को पीएम किसान पोर्टल पर अपना पंजीकरण कराना होगा। उसके बाद ही उसको इस योजना का लाभ मिलेगा। यदि किसान खुद रजिस्ट्रेशन नहीं कर पा रहा है तो वह वह किसी भी कॉमन सर्विस सेंटर पर जाकर एक निर्धारित शुल्क अदा कर अपना रजिस्ट्रेशन करा सकता है और इस योजना से जुड़ सकता है। यदि किसी किसान भाई ने अब तक इस योजना के लिए अपना पंजीकरण नहीं किया है या इस योजना के बारे में अभी तक उनको पता नहीं है तो वह इस योजना के हेल्पलाइन नंबर या टोल फ्री नंबर पर संपर्क कर सकता है और अपना नाम पंजीकरण कराकर के इस योजना से लाभ ले सकता है।

सरकार द्वारा पीएम किसान योजना की किस्तों का भुगतान करने के बाद भी लाभार्थियों के खाते में किस्तों का पैसा नहीं

पहुँच पाता है। लाभार्थी किसानों की किस्तों का पैसा अटक जाता है। ऐसा क्यों होता है क्या आप जानते है ? आपकी जानकारी के लिए बता दें यदि किसानों द्वारा दर्ज की गयी जानकारियों में किसी भी प्रकार की सूचना में त्रुटि पायी जाती है तो ऐसी स्थिति में किसानों की पीएम किसान योजना की किस्त का पैसा रोक दिया जाता है। यदि आधार कार्ड, बैंक डिटेल्स या अन्य किसी सूचना में त्रुटि पायी जाती है तो किसानों की क़िस्त को रोका जा सकता है। अगर किसान के नाम की स्पेलिंग में भी त्रुटि है तब भी किस्त का पैसा रोका जा सकता है।

पीएम किसान योजना के ऑनलाइन पंजीकरण के लिए प्रत्येक किसानों को निम्नलिखित दस्तावेज की स्कैन कॉपी अपलोड करने की आवश्यकता है इसके लिए पीएम किसान के वेबसाइट पर जाकर के अपना पंजीकरण करने के बाद निम्नलिखित दस्तावेजों को अपलोड करना आवश्यक है इन दस्तावेजों में मुख्य रूप से

1. आधार कार्ड
2. आधार नामांकन संख्या
3. आईडी प्रूफ (जिसमें मुख्य रुप से ड्राइविंग लाइसेंस तथा वोटर आईडी शामिल है)
4. बैंक खाता संख्या
5. पता प्रमाण पत्र
6. मोबाइल नंबर
7. हेक्टेयर में खेत का आकार
8. सर्वेक्षण संख्या
9. खसरा नंबर

पीएम किसान सम्मान निधि योजना के कुछ हेल्पलाइन नंबर भी जारी किए गए हैं जो मुख्य रूप से इस प्रकार हैं
टोल फ्री नंबर 18001155266
हेल्पलाइन नंबर : 0120– 6025109, 011– 24300606
लैंडलाइन नंबर : 011–23381092, 23382401

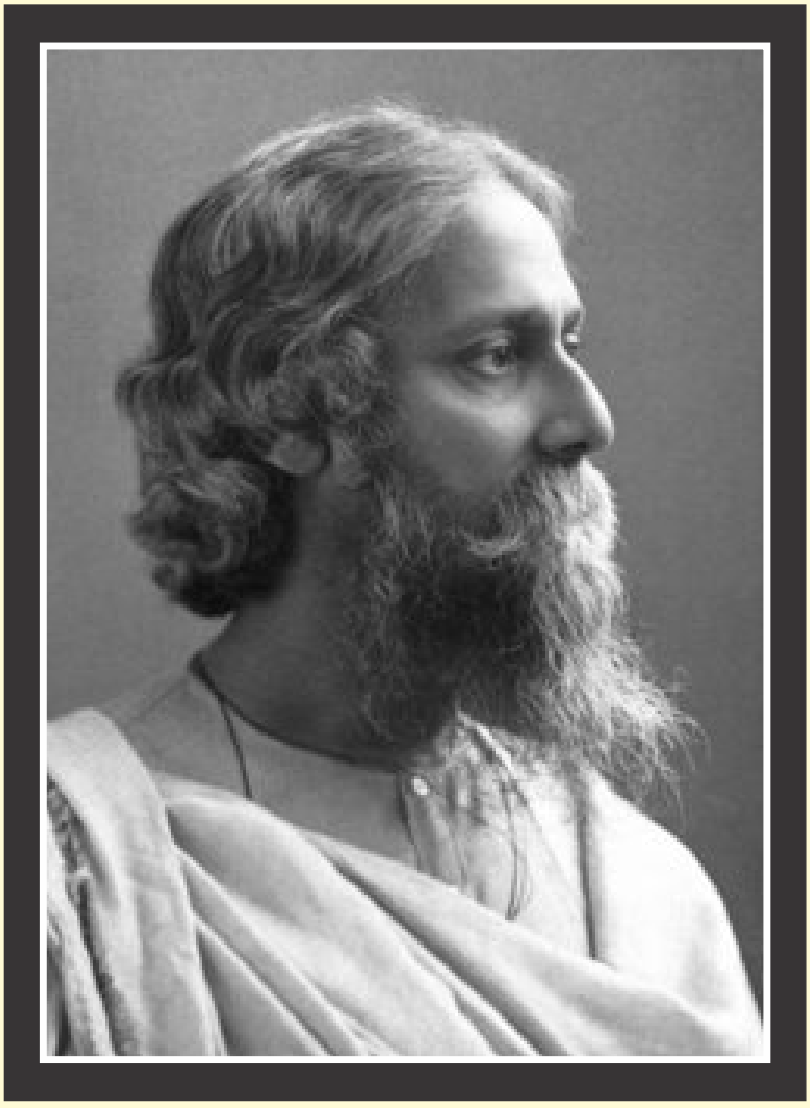

आस्था वो पक्षी है जो सुबह अंधेरा होने पर भी उजाले को महसूस करती है।

- रविन्द्रनाथ टैगोर -

राजभाषा
खण्ड

हिन्दी कार्यक्रमों पर रिपोर्ट

भाकृअनुप–भारतीय गेहूँ एवं जौ अनुसंधान संस्थान, करनाल में वर्ष 2021 के दौरान हिन्दी अनुभाग द्वारा अनेकों कार्यक्रम आयोजित किये गए जिनका संक्षिप्त विवरण नीचे दिया जा रहा है।

राजभाषा कार्यान्वयन समिति की तिमाही बैठकें

संस्थान की राजभाशा कार्यान्वयन समिति की चारों तिमाही बैठकें समय पर ऑनलाइन तथा ऑफ लाईन आयोजित की गयी। जिनमें संस्थान के द्वारा राजभाषा हिन्दी की प्रगति पर चर्चा की गई। संस्थान की कार्यान्वयन समिति द्वारा सुझाये गये अधिकतम मुद्दों पर प्रगति सराहनीय रही तथा बैठक की कार्यवाही समय पर जारी की गई।

नगर राजभाषा कार्यान्वयन समिति की बैठकें

भाकृअनुप–राष्ट्रीय डेरी अनुसंधान संस्थान, करनाल में नराकास की 73वीं छमाही समीक्षा बैठक का आयोजन दिनांक 14 जून, 2021 को हुआ जिसमें संस्थान के निदेशक डॉ. ज्ञानेन्द्र प्रताप सिंह, नामित राजभाशा अधिकारी डॉ. अनुज कुमार एवं डॉ. रविन्द्र कुमार ने भाग लिया।

दिनांक 22 नवम्बर, 2021 को 74वीं छमाही समीक्षा बैठक का आयोजन भाकृअनुप–राष्ट्रीय डेरी अनुसंधान संस्थान, करनाल में हुआ जिसमें संस्थान के नामित राजभाषा अधिकारी डॉ. अनुज कुमार एवं डॉ. रविन्द्र कुमार ने भाग लिया।

राजभाषा उत्सव एवं हिन्दी पखवाड़ा

भाकृअनुप–भारतीय गेहूँ एवं जौ अनुसंधान संस्थान, करनाल में प्रत्येक वर्ष की भांति वर्ष 2021 में भी 14 सितम्बर से 30 सितम्बर 2021 के दौरान **राजभाषा उत्सव एवं हिन्दी पखवाड़ा** का आयोजन किया गया। इस दौरान विभिन्न वर्ग के अधिकारियों व कर्मचारियों के लिए सात प्रतियोगिताओं का आयोजन किया गया जिसमें संस्थान के सभी अधिकारियों व कर्मचारियों ने बढ़–चढ़कर भाग लिया। दिनांक 14 सितम्बर, 2021 को संस्थान में हिन्दी दिवस का आयोजन किया गया।

उत्कृष्ट कर्मचारी पुरस्कार 2021

पुरस्कार व सम्मान

प्रत्येक वर्ष की भांति वर्ष 2021 में भी राजभाषा हिन्दी में अधिकतर कार्य करने वाले कर्मचारियों को उत्कृष्ट कर्मचारी पुरस्कार से नवाजा गया। सभी वर्गों के लिए इस प्रतियोगिता के आयोजन का मुख्य उद्देश्य हिन्दी में कामकाज को बढ़ाया देना है।

कर्मचारी	पदनाम	अनुभाग	प्राप्त स्थान
श्री सुनील कुमार धीमन	सहायक	प्रशासनिक, अनुभाग	प्रथम
डा. मंगल सिंह	मुख्य तकनीकी अधिकारी	सामाजिक अनुभाग	द्वितीय
श्री सुनील कुमार जाखड़	प्रवर श्रेणी लिपिक	प्रशासनिक, अनुभाग	तृतीय
श्री नरेश कुमार	प्रवर श्रेणी लिपिक	प्रशासनिक, अनुभाग	प्रोत्साहन

वार्षिक नराकास राजभाषा पुरस्कार करनाल

भाकृअनुप–भारतीय गेहूँ एवं जौ अनुसंधान संस्थान, करनाल को वर्ष 2020–21 के दौरान राजभाषा हिन्दी में उल्लेखनीय कार्यों के लिए शोध संस्थानों की श्रेणी में द्वितीय पुरस्कार प्राप्त हुआ।

श्रेणी	पत्रिका	पुरस्कार
हिन्दी गृह पत्रिका	गेहूँ एवं जौ स्वार्णिमा, अंक–ग्यारहवां वर्ष, 2020	प्रथम
हिन्दी वार्षिक प्रतिवेदन	वार्षिक प्रतिवेदन, वर्ष–2019	प्रथम
उत्कृष्ट हिन्दी समाचार पत्रक/न्यूज बुलेटिन	गेहूँ एवं जौ संदेश छमाही हिन्दी पत्रिका अंक–1, वर्ष 9	प्रथम
उत्कृष्ट तकनीकी हिन्दी बुकलेट/प्रशिक्षण पुस्तिका	भारत में गेहूँ की अनुमोदित किस्में एवं उनकी विशेषताओं की सन्दर्भ	प्रथम
उत्कृष्ट हिन्दी फोल्डर	जलवायु परिवर्तन का कृषि पर प्रभाव	प्रथम

नराकास राजभाषा प्रकाशन पुरस्कार

नराकास राजभाषा प्रकाशन पुरस्कार दिनांक 22 नवम्बर, 2021 को आयोजित 74वी नराकास समीक्षा बैठक में संस्थान के हिन्दी प्रकाशनों को पुरस्कृत किया गया जिसका उल्लेख आगे तालिका में दिया गया है।

गेहूँ एवं स्वर्णिमा उत्कृष्ट लेख पुरस्कार

गेहूँ एवं स्वर्णिमा के अंक बारहवां में प्रकाशित लेखों में ''पर्वतीय क्षेत्रों में महिला कृशक सशक्तिकरण मुदे एवं संभावनाएं'' (कुशाग्रा जोशी एवं निर्मल चंद्रा), ''न्यूट्री किचन गार्डनः पोषण सुरक्षा का आधार'' (फूल कुमारी, मो.मुस्तफाएवं अनन्त कुमार) को उत्कृष्ट लेख पुरस्कार से सम्मानित किया गया है। इस प्रतियोगिता में चयनित दो लेखों के लिए 3000 रूपये प्रति लेख की नगद राशि दी जाती है।

मुख्य अतिथि

केनरा बैंक अंचल कार्यालय, करनाल द्वारा दिनांक 14 सितम्बर, 2021 को हिन्दी दिवस का आयोजन किया गया। जिसमें डॉ. अनुज कुमार प्रधान वैज्ञानिक एवं नामित राजभाषा अधिकारी ने मुख्य अतिथि के तौर पर भाग लिया।

कार्यशालाओं का आयोजन

भाकृअनुप–भारतीय गेहूँ एवं जौ अनुसंधान संस्थान, करनाल में विभिन्न रूप से कार्यशालाओं का आयोजन किया गया।

''फसल स्वास्थ्य शिवर'' विषय पर एक दिवसीय कार्यशाला का आयोजन संस्थान में 23 जनवरी, 2021 को नगला रोडान गांव में किया गया। संस्थान के बढ़ते कदम विषय पर प्रस्तुतीकरण दिया गया।

• **''महिला किसान दिवस''** विषय पर एक दिवसीय कार्यशाला का आयोजन संस्थान में 15 अक्तूबर, 2021 को किया गया।

• **''कृषि शिक्षा दिवस''** विषय पर एक दिवसीय कार्यशाला का आयोजन संस्थान में 03 दिसम्बर, 2021 को किया गया।

• **''विश्व मृदा दिवस''** विषय पर एक दिवसीय कार्यशाला का आयोजन संस्थान में 05 दिसम्बर, 2021 को किया गया।

भाकृअनुप–भारतीय गेहूँ एवं जौ अनुसंधान संस्थान, करनाल में 14 सितम्बर से 30 सितम्बर 2021 के दौरान **राजभाषा उत्सव एवं हिन्दी पखवाड़ा** का आयोजन किया गया। जिसमें संस्थान के अधिकरियों एवं कर्मचारियों को पुरस्कृत किया गया।

प्रतियोगिता का नाम	वर्ग	विजेता का नाम	प्राप्त स्थान
हिन्दी सुलेख	कुशल सहायक	श्रीमती सुमन थापा	प्रथम
कर्मचारी वर्ग		श्री अमन कुमार	द्वितीय
		श्री बीरू राम	तृतीय
		श्री लखविंदर सिंह	प्रोत्साहन
		श्री देशराज	प्रोत्साहन
खुला मंच	तकनीकी वर्ग	डा. मंगल सिंह	प्रथम
		श्री राम कुमार सिंह	द्वितीय
		श्री सुरेन्द्र सिंह	तृतीय
		श्री ओम प्रकाश टुटेजा	प्रोत्साहन
		डा. रमेश चन्द	प्रोत्साहन
टिप्पणी एवं मसौदा लेखन	प्रशासनिक वर्ग	श्री सुनील कुमार	प्रथम

		श्री नरेश कुमार	द्वितीय
आशु भाषण	वैज्ञानिक वर्ग	डा. ज्ञानेन्द्र सिंह	प्रथम
		डा. सुनील कुमार	द्वितीय
		डा. रविन्द्र कुमार	तृतीय
		डा. उमेश कांबले	प्रोत्साहन
		डा. राजकुमार	प्रोत्साहन
नराकास स्तर (सभी के लिए)	निबंध लेखन	श्री अमित कुमार भारतीय खाद्य निगम मंडल कार्यालय, करनाल	प्रथम
		डा.सुनील कुमार भाकृअनुप–भारतीय गेहूँ एवं जौ अनुसंधान संस्थान, करनाल	प्रथम
		डा. रविन्द्र कुमार भाकृअनुप–भारतीय गेहूँ एवं जौ अनुसंधान संस्थान, करनाल	द्वितीय
		डा. मगल सिंह भाकृअनुप–भारतीय गेहूँ एवं जौ अनुसंधान संस्थान, करनाल	द्वितीय
		डा. उत्तम कुमार भाकृअनुप–राष्ट्रीय डेयरी अनुसंधान संस्थान, करनाल	तृतीय
		श्रीमती सोनिका यादव भाकृअनुप–राष्ट्रीय डेयरी अनुसंधान संस्थान, करनाल	तृतीय
		श्री मुकेश कुमार तोमर दूरदर्शन, करनाल	प्रोत्साहन
		श्री राम कुमार सिंह भाकृअनुप–भारतीय गेहूँ एवं जौ अनुसंधान संस्थान, करनाल	प्रोत्साहन
		श्रीमती निष्ठा भाकृअनुप–राष्ट्रीय डेयरी अनुसंधान संस्थान, करनाल	प्रोत्साहन
		श्रीमती पूनम सलूजा एमएसएमई विकास संस्थान, करनाल	प्रोत्साहन
		श्री अंकित कुमार सिंह भाकृअनुप–भारतीय गेहूँ एवं जौ अनुसंधान संस्थान, करनाल	प्रमाणपत्र
		श्रीमती पूजा रानी भाकृअनुप–गन्ना प्रजनन संस्थान क्षेत्रीय केन्द्र, करनाल	प्रमाणपत्र
		श्री सूरजभान मीना भाकृअनुप–राष्ट्रीय डेयरी अनुसंधान संस्थान, करनाल	प्रमाणपत्र
कविता पाठ	एसआरएफ	श्रीमती कावेरी	प्रथम
		श्री ऋषि गंगवार	द्वितीय
		श्री विकास जून	तृतीय
		श्रीमती सुषमा	तृतीय
		श्री गुरू दयाल	प्रमाणपत्र
		श्रीमती नीशु राघव	प्रमाणपत्र
		श्रीमती किरण	प्रमाणपत्र
		श्री विनीत	प्रमाणपत्र
		सुश्री पूजा वर्मा	प्रमाणपत्र
		श्रीमती अंतिम कुंडु	प्रमाणपत्र

राजभाषा उत्सव एवं हिन्दी पखवाड़ा 14–30 सितम्बर, 2021 के अन्तर्गत गतिविधियों की झलक

मिट्टी करें पुकार

मैं मृतिका मैं वसुंधरा।
हृदय में जीवन मूल भरा।।
हुँ जननी मानव जीवन की।
हुँ प्रसाविनी जग के कण–कण की।।

मुझमें माँ की पहचान निहित।
है मेरा धर्म सदा रहित।।
पत्थर की चोट सहकर भी।
फलों का दान करू नियमित।।

क्यों आज विकल मेरा यह रूप।
श्रंगार मेरा क्यों हुआ कुरूप ।।
मेरी हरियाली मेरा तत्व।
क्युं तु इसको कर रहा है नष्ट।।

रोती हूँ मै, करती हाहाकार ।
जब डाले मानव विषैले उपचार ।।
मैं थी निर्मल, हुई ज्वलन्त अंगार ।
अस्तित्व मेरा करें चीख–पुकार।।

सावधान हो जा ऐ मानव।
कितना मुझे तड़पाएगा ।।
आह! धरती कितना देती है ।
यह बात न अब कह पाएगा ।।

–विकास जुन–
भाकृअनुप–भारतीय गेहूँ एवं जौ अनुसंधान संस्थान, करनाल

काँटों पर तुम भी चलो

काँटों पर तुम भी चलो,
अगर है चाहत उजियारे की,
तो बनकर के दीपक जलो,
खिलना है यदि फूल बनकर,
तो काँटों पर तुम भी चलो,

इस जीवन की डगर में,
न जाने कितने मोड़ मिलेंगे,
पग–पग पे ये बाधाएं रास्ता रोकेंगी,
कितने ही तूफान मिलेंगे,
है सूरज बनना इस जग का,
तो मत संघर्षों से पीछे हटो,
खिलना है.....

फूलों की सौरभ पाने को,
काँटों को पल–पल चुनना होगा,
मन–वचन कर्म को सम्बल बनाकर,
यह युद्ध लड़ना होगा,
दुनिया जय – जयकार करेगी,
उन्नति के शिखर तुम चढ़ो
खिलना है.....

उदय सूर्य का निश्चित है,
चाहे कितना भी हो कृष्ण आकाश,
स्वर्ण अक्षरों से लिखना है तुम्हें,
गौरवमय विश्व इतिहास,
है सपनो को हकीकत में बदलना,
लीक से हटके तुम चलो,
खिलना है.....

–प्रीतम कुमारी–
कीट विज्ञान विभाग
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्विद्यालय, हिसार

मैं अंकित हूँ
हर हार में, विराम में
जीवन समर संग्राम में
मैं अंकित हूँ।

हर प्रीत में और मीत में
जीवन के हर संगीत में
मै अंकित हूँ।

इस राम में उस श्याम में
जीवन के अन्त, विश्राम में
मै अंकित हूँ।

हर राग में, हर द्वेष में
जीवन सकल अभिशेष में
मैं अंकित हूँ।

– अंकित कुमार सिंह –
भाकृअनुप–भारतीय गेहूँ एवं जौ अनुसंधान संस्थान, करनाल

गेहूँ एवं जौ स्वर्णिमा
को चौदहवां अंक (वर्ष 2022) में

''कृषि में सफलता की कहानियाँ'' पर आधारित होगा।

गेहूँ एवं जौ स्वर्णिमा
के बारहवां अंक (वर्ष 2020) में

इन दो आलेखों को उत्कृष्ट लेख पुरस्कार देकर सम्मानित किया गया।

1. पर्वतीय क्षेत्रों में महिला कृषक सशक्तिकरण मुद्दे एवं संभावनाएं
   कुशाग्रा जोशी एवं निर्मल चंद्रा
2. न्यूट्री किचन गार्डनः पोषण सुरक्षा का आधार
   फूल कुमारी, मो.मुस्तफा एवं अनन्त कुमार

इन दो आलेखों को प्रशंसा पत्र देकर सम्मानित किया गया।

1. गेहूँ उत्पादन के साथ जैव पोषक तत्वों की प्रचूरता के लिए प्रजनन
   भूदेव सिंह त्यागी, आशीष ओझा, ज्ञानेंद्र सिंह, गोपालारेड्डी के एवं ज्ञान्नेद्र प्रताप सिंह
2. कटाई उपरान्त खाद्य प्रसंस्करण द्वारा महिला सशक्तिकरण
   इन्दू रावत एवं निशा वर्मा

कृपया अपने लेख 30 सितम्बर, 2022 तक भेजे
aunjp2001@gmail.com / anuj.kumar1@icar.gov.in
dwrrajhasha@gmail.com पर kurti Dev10/16 में तथा फोटो JPEG प्रारूप में भेजें।

बेटी बचाओ बेटी पढ़ाओ

Agrisearch with a human touch

स्वच्छ भारत
एक कदम स्वच्छता की ओर

आज़ादी का अमृत महोत्सव

भाकृअनुप
ICAR

भाकृअनुप–भारतीय गेहूँ एवं जौ अनुसंधान संस्थान

करनाल–132001, भारत

ICAR-Indian Institute of Wheat and Barley Research

Karnal-132001, India

AARONMedia
098964 33255